शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 32 | जनवरी-मार्च 2016 | 200.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090237

डॉ॰ हरिशरण वर्मा
एफ-120, सेक्टर 10
डी॰एल॰एफ॰ (के॰एल॰ मेहता स्कूल के पास)
फरीदाबाद (हरियाणा)

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल 07838090237

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन :
व्यक्तिगत : पाँच हज़ार रुपए
संस्थागत : पाँच हज़ार रुपए
वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए
यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
डॉ॰ आर॰पी॰ सिंह, पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय एवं पूर्व प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ॰प्र॰)
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, निदेशक केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के॰एम॰मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
डॉ॰ बाबूराम, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
डॉ॰ रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
डॉ॰ दामोदर खड़से, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा॰)
प्रो॰ शंकर बुंदेले, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती
डॉ॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
डॉ॰ पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
डॉ॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ हरेराम पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
डॉ॰ श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं॰वि॰, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शाहबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ संतोषकुमार गौड़, एसोसिएट प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ घनश्याम अरोरा, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)
डॉ॰ सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना॰ महा॰, मेरठ
डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, सहायक प्राध्यापक अँग्रेजी, शासकीय महाराजा पी॰जी॰ महा॰, छतरपुर (म॰प्र॰)

 ISSN 0975-735X

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ॰ रामानंद शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

डॉ॰ मधुलिका तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल॰आर॰ पी॰जी॰ कॉलिज, साहिबाबाद
गाज़ियाबाद (उ॰प्र॰)

श्री हरिराम 'पथिक'
स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं॰ 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ वंदना सेमल्टे
टी॰एफ॰ 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाज़ियाबाद 201001

डॉ॰ मनमोहन शुक्ल
147, मायापुरी, आवास योजना
झूँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
पुराना माधवनगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ॰प्र॰)

प्राचार्या
आर॰बी॰डी॰ महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

डॉ॰ सुधारानी सिंह
सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ॰प्र॰)

डॉ॰ प्रेमव्रत तिवारी
सरस्वती सदन, बेतियाहाता, गोरखपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ पूनम भारद्वाज
17 प्रेम विहार, मुजफ़्फ़रनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना
द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाजियाबाद 201001

डॉ॰ वंदना श्रीवास्तव
के 83 सी आशियाना, लखनऊ 226012
09415917170

डॉ॰ अर्चना वालिया
286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ॰ सुचित्राा मलिक
37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

सुरेंद्रकुमार जैन
हिंदी विभाग,
स॰ भगतसिंह राजकीय स्नातकोत्तर महा॰,
रुद्रपुर (नैनीताल)

मध्य प्रदेश

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र
14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)

डॉ॰ स्मृति शुक्ला
ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड, जबलपुर (म॰प्र॰)

डॉ॰ सुरेंद्र यादव
301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत)
इंदौर 452018

डॉ॰ ज्योतिसिंह
213 अनूपनगर
सी॰एच॰एल॰ अपोलो हास्पिटल के सामने
ए॰बी॰ रोड, इंदौर 452008 (म॰प्र॰)
09926300355

डॉ॰ चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09425944773

डॉ॰ वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोड्रम रोड
इंदौर (म॰प्र॰) 452001
09926477787

डॉ॰ पुष्पा शाक्य
110, सुंदर नगर मेन, सुकलिया, इंदौर (म॰प्र॰)
09827281203

डॉ॰ चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी, इंदौर (म॰प्र॰) 452001

डॉ॰ पंकज विरमाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग, इंदौर क्रिश्चियन कालेज
इंदौर (म॰प्र॰) 452001

प्राचार्य,
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म॰प्र॰)

डॉ॰ निशा तिवारी
650 नैपियर टाउन,
भानवारथल वाटर टैंक के पीछे
जबलपुर 482001 (म॰प्र॰) मो॰ 09425386234

पंजाब/ हरियाणा

श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईंदास ए॰एस॰सी॰ सी॰से॰ स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ॰ विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ॰ विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए, गुड़गाँव (हरियाणा) 122001

कविता यादव
पुत्री श्री सुनिलकुमार,
ग्राम व पोस्ट पालावास
जिला रेवाड़ी (हरियाणा) 123035

डॉ॰ राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि॰) 125053
मो॰ 09896789100

डॉ॰ पुष्पा अंतिल
203, टॉवर-9, फ्रेस्को
निर्वाणा, सेक्टर 50, गुड़गाँव (हरि॰) 122018
मो॰ 096547444800

प्राचार्य
राजकीय महाविद्यालय, सिधरावली (गुड़गाँव)

प्राचार्य
द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, न्यू रेलवे रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

प्राचार्य
हरद्वारीलाल राजकीय महाविद्यालय,
तावडू (मेवात)

डॉ॰ ऋषिपाल
ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी-विभाग, बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

प्राचार्य
बाबू अनंतराम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा)

महाराष्ट्र

डॉ॰ मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा॰)

ISSN 0975-735X

डॉ॰ लियाक़त मियाँ भाई शेख़
अखिलेश नगर, प्लाट क्र॰ 11
नए बस स्टेंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा॰
09423933402

डॉ॰ शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख़
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको,
अहमदनगर 414003
09850119687

प्रो॰ शेख़ मुहम्मद शाकिर शेख़ बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ़ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा॰)
09423017017

प्रा. डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार
मु॰पो॰ जुनवणे,
तह॰ जि॰ धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा॰)

डॉ॰ मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी,
नासिक 422004 (महा॰)
09822991516

डॉ॰ शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट,
नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक (महा॰) 422013

प्रा. डॉ॰ संजय विक्रम ढोढरे
7, मोतीरामनगर, वाडीभोकर रोड,
देवपुर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा॰) 414003
09822941330

डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अँग्रेज़ी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज,
अकोला (महा॰)

प्रा॰ दत्तात्राय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं॰ 13
पाटील अली, ओतूर
तह॰ जुन्नर, ज़िला पुणे (महा॰) 412409
09860229544

डॉ॰ मजीद मुनीर शेख़
ग्राम व पो॰ साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह॰ अंबड
ज़िला जालना (महा॰) 431212
09765944586

डॉ॰ भरत त्रयंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो॰ व तह॰ अकोले
ज़िला अहमदनगर (महा॰) 422601
09423164521

डॉ॰ पोपट विट्ठल कोटमे
फ्लैट नं॰ 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर,
नासिक (महा॰) 422006
09850760866

डॉ॰ श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लाट क्र॰ 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफ़िस
नागपुर 440014 (महा॰)

सुश्री शारदा बी॰ जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लेट क्र॰ 402
प्लाट नं॰ 26, सर्व क्र॰ 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)
08805616654

प्रा॰ (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड, कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा॰)
09011449636

डॉ॰ एस॰एन॰ देवरे
प्लाट नं॰ 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा॰) 424002

प्रो॰ डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल
प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड, पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह॰ साक्री,
ज़िला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा॰ उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागड़े
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
ज़िला नासिक (महा॰)

प्रा. करुणा दत्तात्राय अहिरे
व्ही॰यू॰ पाटिल कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह॰ साक्री,
ज़िला धुले 424304

प्रा॰ डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील
मु॰पो॰ मोराणे (प्र॰ल॰)
तह॰ ज़िला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ अश्फाक सिकलगर
जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा॰ डॉ॰ महेंद्रसिंह रघुवंशी
सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास,
नंदुरबार 425412

डॉ॰ रेखा वसंत पाटील
सीतामाई नगर, चालिसगाँव
ज़िला जलगाँव (महा॰) 424101

प्रा॰ डॉ॰ योगेश गोकुळ पाटिल
प्लॉट नं॰ 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपुर,
धुले 424002

प्रा॰ डॉ॰ मंजू तरड़ेजा (सिंघाणी)
ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमारनगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा॰ डॉ॰ चंद्रमादेवी पाटील
59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ॰ संजयकुमार नंदलाल शर्मा
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख
बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

ISSN 0975-735X

डॉ॰ देवकीनंदन महाजन
1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ॰ कल्पना राजेंद्र पाटील
38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि॰ नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर
फ्लेट नं॰ 12, एस नं॰ 137/2
वारजे मलवाडी,
पुणे 411058
08087612123

प्रा॰ डॉ॰ रामचंद्र माली
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
क॰वा॰वि॰ महाविद्यालय,
नवापुर, ज़िला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ॰ सुषमा कोंडे
81/ए, प्लाट नं॰ 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्राचार्य
विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा॰) 424001

डॉ॰ हेमलता कांचनकर
43 नंदनवन कालोनी (कैंट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपड़े
द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं॰ 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं॰ 73, दूध डेयरी,
पुणे-411046

सुश्री भारती मधुकर पाटील
मु॰पो॰ सावलदे, तहसील शिरपूर
ज़िला धुले (महा॰)

प्रा॰ शिंदे नवनाथ सर्जेराव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड,
सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

सुश्री मीनल वार्वे
बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

प्रो॰ अमानुल्लाह मो॰ शेख़
श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई॰टी॰आई॰ कालेज के पास
पो॰ मुकिन्दपुर, तह॰ नेवासा
ज़िला अहमदनगर (महा॰)

श्री शेख शिराज हसन
पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा॰)
मो॰ 09011444059

प्रा॰ ईश्वर पदमसिंग ठाकुर
जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर,
तहसील यावल (जलगाँव)

प्रो॰ दीपक विश्वासराव पाटील
मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील ज़िला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा॰) 424002
099923811609

डॉ॰ अनिता मधुकर अंतरे
मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो॰ लोनी बी के, तालुका रहाता,
ज़िला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ॰ विट्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे
'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
ज़िला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

डॉ॰ उर्मिला मानसिंह गायकवाड
प्लॉट नं॰ 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग,
फ्लैट नं॰ 303 रावेत निकट डी-मार्ट,
पुणे 412101
मो॰ 07620225839

डॉ॰ एफ॰एम॰ शाह
द्वारा श्री टी॰एम॰ धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी॰बी॰ टोली
गोंदिया (महा॰) 441614
मो॰ 07620042772

डॉ॰ शैला पांडुरंग चव्हाण
फ्लेट नं॰ 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे,
सिंघाड़ा तालाब,
नासिक (महा॰) 422001
मो॰ 09850827138

प्राचार्य
कला, वाणिज्य व कंप्यूटर
एप्लीकेशन महिला महा॰
डोंगर कठोरे, यावल, ज़िला जलगाँव (महा॰)

प्रा॰ पुरुषोत्तम कुंदे
हिंदी विभाग, न्यू आर्ट्स कामर्स एंड साइंस कालेज
शेवगाँव (अहमदनगर) 414502 महाराष्ट्र
09850947267

डॉ॰ सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर महाविद्यालय
संगमनेर (महाराष्ट्र)

रूपाली नामदेवराव रिंगे
द्वारा बालाजी संभाजी कदम
फ्लैट नं॰ 12, साईं श्रद्धा रेसिडेंसी, प्लॉट नं॰ 78
सी॰डी॰सी॰ पूर्णनगर, चिंचवड, पुणे 411019 महाराष्ट्र
09420848635, 07276268922

गुजरात

श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर
201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी, बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

कर्नाटक

डॉ॰ जुबैदा हाशिम मुल्लाँ
बैतुल हाशमी, म॰नं॰ 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

तमिलनाडु

Dr. V. Jayalakshmi
Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Perumbakkam, Chennai-600100

 ISSN 0975-735X

संपादकीय

कबिरा खड़ा बजार में

'कबिरा' अब बाज़ार में खड़ा होकर सबकी ख़ैर नहीं माँगता। वह अपने काम का पैसा माँगता है। यह कोई मेरा ही अनुभव नहीं है, साहित्य के क्षेत्र में काम करनेवाले मेरे जैसे अन्य व्यक्तियों का भी यही अनुभव होगा। कई लोग नहीं कहते, मैं कह रहा हूँ। कह ही नहीं रहा हूँ, बल्कि लिखित रूप में काग़ज़ पर अंकित भी कर रहा हूँ ताकि समकालीन साहित्य के साथ-साथ मेरा यह दस्तावेज़ भी सुरक्षित हो जाए और आनेवाली पीढ़ियाँ यह समझ सकें कि समाज में बाज़ार का वर्चस्व किस तरह कबीर को बिकाऊ माल बना देता है और जो बिकाऊ माल बनने के लिए तैयार नहीं होता, उसे 'बाज़ार' किस तरह कबाड़ी के गोदाम में फेंक देता है।

बाज़ार में खड़े होकर भी कबीर के मन में ख़ैर, नेकी, भलाई, शुभकामना थी, उसका संबंध मानवीय सरोकारों तथा समाज के नैतिक मूल्यों से था। यह मानवीय सरोकार और नैतिक मूल्य अब नहीं रहे हैं। बाज़ार की वर्तमान व्यवस्था में अब इनकी कोई संभावना नहीं रही है। मेरा मित्र व्यापारी की आँखों में धूल झोंककर नक़ली नोट चलाने में सफल हो जाता है तो अपने इस काम पर ख़ुश होकर डींग मारता है कि उसने व्यापारी को किस चालाकी से मूर्ख बनाया। व्यापारी अपने ग्राहक को डुप्लीकेट माल भिड़ाकर उससे असली की क़ीमत वसूल कर लेता है तो यह सोचकर प्रसन्न होता है कि उसने चुटकी बजाते ग्राहक से कितना फ़ालतू पैसा हड़प लिया।

'कबीर' जब बाज़ार में खड़े थे, तब घर और बाज़ार के नैतिक मूल्यों में कोई अंतर नहीं था। दोनों के संबंध मानवीयता पर टिके थे। तब बाज़ार लाभ कमाने का माध्यम नहीं था, आजीविका कमाने का माध्यम था। बिल्कुल वैसे ही जैसे और बहुत से व्यवसाय होते हैं। तब यह संभव था, संभव भी और स्वाभाविक भी, कि कबीर बाज़ार के बीच खड़े होकर सबकी ख़ैर माँगते दिखाई दें और पूर्ण रूप से निष्पक्ष रहकर अपने-बेगाने में अंतर न करें। वह समय अब नहीं है। अब कबीर को 'अपने लोगों' की ख़ेमाबंदी करते और विरोधी पक्ष के ख़ेमे को उखाड़ने के षड्यंत्र में फँसा हुआ देखा जा सकता है। इस कला का प्रदर्शन करते हुए भी देखा जा सकता है कि दूसरों को पीछे धकेलकर उन्हें अनदेखा करके स्वयं बाज़ार में सबसे आगे कैसे पहुँचा जा सकता है।

आप मानें या न मानें, लेकिन सच यही है कि बाज़ार की भौतिकवादी सभ्यता ने जो सबसे घातक आक्रमण किया, वह मानवीय सरोकारों और नैतिक मूल्यों पर ही किया है।

यह आक्रमण मानव-जीवन के हर क्षेत्र में हुआ है। साहित्य व्यवसाय बन गया और रिश्ते-नाते तक व्यावसायिक हो गए। कृषियुग की सभ्यता औद्योगिक युग की सभ्यता के मुक़ाबले में हार गई। इसे तो हारना ही था, क्योंकि औद्योगिक विकास मानव-समाज की उन्नति का अगला चरण था और उसे रोका नहीं जा सकता था। रोकना तो दूर की बात है, पुरानी कृषि-प्रणाली को एक दिन स्वयं भी औद्योगिक स्तर पर व्यवस्थित हो जाना था। भारत का

कृषि-समाज आज इस प्रक्रिया से गुज़र रहा है। पर जो बात मैं कहना चाहता हूँ, वह यह है कि विकास की गति में उन चीज़ों को बचा लेना क्यों संभव नहीं हुआ, उन्हें बचाए रखने का प्रयास क्यों नहीं किया जा सका, जो अच्छी थीं, मानवीय मूल्यों का आधार थीं, नैतिक और सांस्कृतिक पहचान रखनेवाली थीं? बेकार और समय के अनुकूल न रहनेवाली चीज़ों के साथ उन्हें भी विकास के पहिए के नीचे क्यों रौंद जाने दिया गया? आँधी आती है तो वृक्ष के सूखे या पीले पड़ गए कमज़ोर पत्तों को झटककर नीचे गिरा देती है। हरे पत्ते ज्यों-के-त्यों शाखाओं पर बने रहते हैं, पर यहाँ ऐसा नहीं हुआ। औद्योगिक विकास की आँधी में बेकार हो गई मान्यताएँ ही नहीं, वे परंपराएँ भी तिनकों की तरह उड़ गईं, जिन्हें सुरक्षित रखा जाना चाहिए था।

मेरा कहना है कि ख़तरा बाज़ार ने नहीं, बाज़ार की मानसिकता ने पैदा किया था। मानव-समाज मूल्यों को छोड़ता गया और लाभ पर केंद्रित हो गया। अधिक-से-अधिक लाभ कैसे मिल सकता है, कहाँ से मिल सकता है, इसे पाने की विधि क्या हो? लाभ पाने के लिए यदि कोई अनैतिक कार्य भी करना पड़े तो उसे करने में कोई बुराई नहीं है। बाज़ार लाभ पर टिका है और लाभ के इच्छुक लोगों की मानसिकता यही होती है। भारत के पूर्ववर्ती नैतिक समाज में यह कहावत प्रचलित थी कि व्यापार की वस्तुओं में लाभ इतना रहना चाहिए, जितना आटे में नमक। नैतिक समाज जब बाज़ारवादी सभ्यता से प्रभावित हुआ तो यह सोच बदल गई। अब व्यापारी नमक की चुटकी बराबर वस्तु पर लाभ इतना कमाना चाहता है, जितना परात-भर आटा।

बाज़ार ने हमारे सोच को बदला और इस बदलाव का सबसे दुखद पहलू यह है कि मानव-सेवा के वे क्षेत्र भी, जो किसी भी दृष्टिकोण से व्यापारिक मानसिकता या बाज़ार की भौतिकवादी सभ्यता से नहीं जोड़े जा सकते थे, पूर्ण रूप से व्यावसायिक बन गए। उदाहरण के लिए आप राजनीति के वर्तमान संदर्भों को लीजिए। चर्चा आरंभ होते ही सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि क्या राजनीति में आनेवाले लोग वास्तव में जनसेवा की भावना से इस क्षेत्र में आते हैं? इस प्रश्न का उत्तर सौ प्रतिशत लोगों का यही होगा कि नहीं। वे स्वार्थ-सिद्धि के लिए आते हैं। सुख-सुविधा पाने के लिए आते हैं। क्योंकि राजनीति ऐसा क्षेत्र बन गया है, जो सबसे ज़्यादा सुख-सुविधाओं की संभावनाओं वाला है।

ये राजनेता जनसाधारण को समाज-सेवा का आश्वासन देते हैं। निष्ठापूर्वक और निस्वार्थ-भाव से कार्य करने की सौगंध लेते हैं, किंतु जन-समर्थन पाकर जब वे सफल हो जाते हैं, संसद या विधानसभाओं में जनता का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं तो उनकी प्राथमिकताएँ बदल जाती हैं। वे नैतिक और मानवीय मूल्य बहुत पीछे छूट जाते हैं, जिनका प्रदर्शन वे अपनी सफलता से पूर्व अथवा संघर्ष के दौरान करते आए थे। यह स्थिति केवल राजनीति में ही नहीं, समाज के सभी क्षेत्रों में है। धर्म हो, शिक्षा हो, साहित्य हो, आज सभी व्यावसायिक मानसिकता के घेरे में आ गए हैं, किंतु व्यावसायिक मानसिकता को छिपाने के लिए जिस आवरण का सहारा लिया जाता है, उसे वे अवश्य ही ओढ़े रहते हैं। आधुनिक समाज आज नेताओं के इसी दोगलेपन में जी रहा है। नैतिक मूल्य और मानव-प्रेम केवल दिखावा करने के लिए रह गए हैं, उन बुराइयों को छिपाने के लिए रह गए हैं, जिन्हें समाज भोग तो रहा है, पर वैचारिक स्तर पर स्वीकार नहीं कर रहा है।

महिलाओं का शब्दों में सबसे अधिक सम्मान करने और उनके उत्पीड़न के विरुद्ध सबसे प्रबल आवाज़ उठानेवाला व्यक्ति अवसर पाते ही उनके विरुद्ध घिनोने अपराध कर बैठता है, किंतु

 ISSN 0975-735X

अपने उन आदर्शों का प्रदर्शन फिर भी जारी रखता है, जो उसने दिखावे के लिए अपना रखे थे।

कबीर अब बाज़ार में खड़ा सबकी ख़ैर नहीं माँगता, वह भलाई का प्रदर्शन करते हुए अपनी अधिक-से-अधिक क़ीमत माँगता है। पहला 'कबीरा' आश्वस्त था कि उसके पास जो सामग्री है, उस पर किसी प्रकार के सुंदर लेबिल लगाने की आवश्यकता नहीं है, उसे विज्ञापित करने की ज़रूरत नहीं है। उसकी चर्चा स्वयं करने और दूसरों से करवाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह दमकता हुआ सोना है और ग्राहक निश्चित रूप से उसकी ओर स्वयं खिंचते चले आएँगे। आते भी थे, परखते भी थे और बिना किसी पक्ष-पात तथा भेद-भाव के उसकी सराहना भी करते थे। अब वे दिन नहीं रहे हैं। अब बाज़ार की सभ्यता और उसकी प्राथमिकताएँ बदल गई हैं, मान्यताएँ परिवर्तित हो गई हैं। अब कबीर साहब को बाज़ार के बीच खड़े होकर डुगडुगी पीटनी पड़ती है। अपनी सामग्री को, चाहे वह कितनी ही स्तरीय क्यों न हो, विज्ञापित करना होता है। उसके गुण स्वयं बताने होते हैं, और अपने गुट के लोगों को इस अभियान पर लगाना होता है कि अपना माल अच्छी-से-अच्छी क़ीमत पर बेचा जा सके।

साहित्य के क्षेत्र में अब एकमुखी प्रतिभा के व्यक्ति को वह सफलता मिलनेवाली नहीं है, जिसका वह अधिकारी है। उसे चतुर्मुखी होना चाहिए। विश्लेषण करता हूँ तो मुझे लगता है कि उच्चस्तरीय साहित्य का सर्जन करने वाली प्रतिभाएँ प्राय: एकपक्षीय होती हैं, बहुपक्षीय नहीं होतीं। वे अपना पूरा समय सोच, विचार, अध्ययन और लेखन में व्यय करती हैं। उनका प्रयास होता है कि उनकी लेखनी से अच्छी-से-अच्छी चीज़ निकले। लेखन, अध्ययन, विचार, चिंतन आदि की प्रक्रिया में उन्हें किसी और बात का न तो ध्यान आता है और न उनका दिमाग़ किसी अन्य दिशा में काम करना पसंद करता है। पसंद करने या न करने की बात भी अर्थहीन है, क्योंकि वे चाहें भी तो ऐसा नहीं कर पाएँगे। प्रकृति उन्हें रचनात्मक प्रतिभा देकर तो भेजती है, किंतु व्यावसायिक दृष्टिकोण देकर नहीं। उनका मस्तिष्क एकपक्षीय होता है। ऐसे लोग निष्ठा और ईमानदारी के साथ लेखन-कार्य में व्यस्त रहते हैं, पर बाज़ार में अपने नाम और काम को प्रिय बनाने में विफल हो जाते हैं। इनकी तुलना में ऐसे साहित्यकार, जो दोपक्षीय प्रतिभा के धनी हैं, अर्थात् जिनमें लेखन की क्षमता भी है और स्वयं को बेचने की कला भी जो जानते हैं, वे बाज़ार में सफल हो जाते हैं। लेखन की क्षमता इन रचनाकारों में भले ही अन्य रचनाकारों की तुलना में कम हो, किंतु अपने-आपको विज्ञापित करने, अपने कार्य को चर्चा में लाने तथा अपने लिए बाज़ार बनाने में इनकी व्यावसायिक बुद्धि बहुत अच्छी तरह काम करती है।

गुटबाज़ी, जोड़-तोड़, ख़ेमाबंदी और लाभदायक संस्थानों से संपर्क, इन सब पक्षों पर भी उनकी जितनी प्रतिभा व्यय होती है, उतनी लेखन-कार्य में नहीं होती। अब प्रसिद्धि मिलती नहीं, प्रसिद्धि कमाई जाती है। किसी चीज़ को कमाने में जिस चतुरता या कलाकारी की आवश्यकता है, उसे विस्तार से बताने की ज़रूरत नहीं है। हमने बाज़ार के स्वभाव को समझनेवाले कितने ही 'कबीरों' को दस-दस वर्ष पुरानी और बार-बार दोहराई जानेवाली कविताओं को मंच पर पढ़ते, श्रोताओं की वाह-वाही लूटते तथा नोटों को अपने ब्रीफ़केस में भरते देखा है। आपने भी देखा होगा, किंतु यदि किसी के मन में उनके प्रति ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो रही हो तो मैं इसका समर्थन नहीं करूँगा, क्योंकि ईर्ष्या करनेवाला उन गुणों का धनी नहीं है, जिनके वे हैं। वह लिख सकता है, बेच नहीं सकता तो इसमें दोष किसका है? अच्छे-से-अच्छा और गुणवत्ता में उच्च स्तर

का उत्पाद यदि आपके पास है, तो भी उसे पाने के लिए अधिक लोग आपके पास नहीं आएँगे। आप को ही ग्राहकों के बीच जाना होगा और जाना ही नहीं होगा स्वयं को सर्वश्रेष्ठ उत्पादक के रूप में स्थापित भी करना होगा। इसके लिए क्या-क्या विधियाँ अपनानी होती हैं, यह मैं भी जानता हूँ और आप भी जानते हैं, किंतु उन विधियों को क्रियात्मक रूप इसलिए नहीं दे पाते हैं, क्योंकि वे सब कार्य करने की प्रवृत्ति हममें नहीं है।

मान लीजिए कि आप एकपक्षीय प्रतिभा वाले साहित्यकार हैं। आपमें अच्छे-से-अच्छा लिखने की क्षमता है, किंतु उसे और स्वयं अपने-आपको लोकप्रिय बनाने की चतुराई नहीं है तो आप बाज़ार में खड़े होकर सबकी ख़ैर माँगा कीजिए और उन लोगों को देखा कीजिए, जो अपने नाम और काम की क़ीमत वसूल करना जानते हैं।

कुछ मूल प्रश्न अपने-आपसे कीजिए। स्वयं से पूछिए कि क्या आपने अपना कोई ऐसा गुट तैयार किया है, जिसकी पहुँच उन प्रभावशाली लोगों तक हो, जिनके हाथ में साहित्य के बाज़ार की नकेल रहती है? क्या आपने प्रचार-प्रसार के लिए ऐसी संस्था से संपर्क साधा है, जो आपको जल्दी-जल्दी और समय-समय पर बाज़ार की शक्तियों के सामने प्रस्तुत करती रहे? क्या आपने ऐसे सुप्रसिद्ध समीक्षकों और समालोचकों को मोहित करने के लिए योजनाबद्ध तरीक़े से कार्य किया है, जो अपनी लेखनी से आपको आगे बढ़ाने में सहायक हो सकते हों? क्या आपने किसी ऐसे प्रभावशाली ग्रुप का सहयोग लेने में सफलता प्राप्त कर ली है, जो पहले से साहित्य के बाज़ार में अग्रणीय है? यह सब कार्य करने के लिए आपने कितना समय और कितना धन व्यय किया है? यदि इन सब प्रश्नों का उत्तर आपके पास नकारात्मक है तो स्वीकार कर लीजिए कि आपमें लेखन की क्षमता कितनी भी हो, किंतु बाज़ार की जो अनिवार्यताएँ हैं, उन्हें पूरा करने की क्षमता आपमें नहीं है। आपका मस्तिष्क एकपक्षीय है, दोपक्षीय नहीं है। आप लिख सकते हैं, बेच नहीं सकते और जब बेच नहीं सकते तो बाज़ार के बीच ख़ाली हाथ सबके लिए ख़ैर माँगने के अतिरिक्त आप कर ही क्या सकते हैं?

यह व्यवसाय की दुनिया है, बाज़ार की दुनिया है। बाज़ार हमारे मुहल्ले में है, मुहल्ले के हर गली-कूचे में है, उस कमरे में है, जहाँ बैठकर ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं। टी॰वी॰ की उद्घोषिका हर डेढ़-दो मिनट के बाद लंबा कामर्शियल ब्रेक ले रही है। मैं इस ब्रेक को सहने और स्वीकार करने के लिए बाध्य हूँ। बार-बार दृष्टि के सामने आनेवाले उन विज्ञापनों को देखने के लिए बाध्य हूँ, जिन्हें महिलाओं की आकर्षक देहों से सजाया गया है। यह कामर्शियल ब्रेक टी॰वी॰ चैनलों के कार्यक्रमों पर ही नहीं लगा है, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन और समाज की पूरी व्यवस्था पर लगा हुआ है। हम सब एक लंबे कामर्शियल ब्रेक से गुज़र रहे हैं। इस लंबी होती जा रही कामर्शियल ब्रेक की अवधि से यदि थोड़ा समय बचा रह गया है, तो हम यदि साहित्यकार हैं, तब उसे अपनी सृजनात्मक गतिविधियों पर लगा सकते हैं। शेष समय तो हमें उस कामर्शियल ब्रेक का हिस्सा ही बना रहना है, जिसके हममें से ज़्यादातर लोग चाहे-अनचाहे दर्शक हैं।

विशुद्ध साहित्य-सेवा और शुद्ध समाज-सेवा या जनसेवा का अब कोई अर्थ नहीं रहा है। बाज़ार की संस्कृति ने मान्य नैतिक व्यवस्था पर कैसा भरपूर हमला किया है, इसे समझने के लिए कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो आपके सामने खुला न हो। बाज़ार की अनिवार्यताएँ अपने लिए एक नई नैतिक कसौटी निर्मित करने के लिए संघर्षरत है। जैसे-जैसे बाज़ार बढ़ रहा है, पहले जैसे

 ISSN 0975-735X

समाजसेवक और जनसेवक लुप्त होते जा रहे हैं, बिल्कुल ऐसे ही जैसे जीव-जंतुओं की कुछ प्रजातियाँ अपना अस्तित्व विलीन करती जा रही हैं। निकट भविष्य में वह समय भी आएगा, जब समाजसेवक या जनसेवक को सेवाकर्मी कहना अधिक बेहतर समझा जाएगा, क्योंकि कर्म के बदले में कुछ-न-कुछ प्राप्त करने का जो भाव है, वो सेवक में नहीं है।

ये परिवर्तन अकारण नहीं हुआ है। यह विस्तार पाते जा रहे बाज़ार की उस संस्कृति से निकला है, जिसका सामना हम सब इस समय कर रहे हैं। ऐसे में साहित्य-सेवा में लगे बहुत से लोग यदि साहित्यकर्मी बनते जा रहे हैं, तो इसमें किसी को कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। किंतु 'सेवक' से 'कर्मी' बनने का जो रुझान है, वह निस्संदेह चिंताजनक है। सेवा में समर्पण का भाव रहता है, किंतु कर्मी की श्रेणी में आते ही व्यक्ति सेवा से अधिक प्राप्ति की भावना से जुड़ जाता है। प्राप्ति की भावना उसे काम की गुणवत्ता पर ध्यान देने से रोकती है, अधिक-से-अधिक प्राप्त करने की लालसा पैदा करती है।

देश में इतने कवि-सम्मेलन पहले कभी नहीं होते थे, जितने अब होते है। इन्हें अब बड़े उद्योग की तरह चलाया जा रहा है। यहाँ तीन पक्ष उपस्थित हैं। एक पक्ष निवेशकर्त्ताओं का है, दूसरा व्यवस्थापकों का और तीसरा मंच पर पसंद किए जानेवाले कवियों का। इन तीनों पक्षों में ग़ज़ब का तालमेल है। आयोजक और निवेशक कभी राजनीतिक कारणों से, कभी सामाजिक कारणों से और कभी किन्हीं अन्य कारणों से समय-समय पर ये आयोजन करते रहते हैं। केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा गठित साहित्यिक संस्थाओं की ओर से भी विशेष अवसरों पर ऐसे कार्यक्रम आयोजित किए जाते रहते हैं। आप इनके रूप-स्वरूप पर दृष्टि डालेंगे और परदे के पीछे की इनकी सच्चाई को परखने की कोशिश करेंगे तो ज्ञात होगा कि ऐसे कार्यक्रम साहित्य-सेवा की भावना से आयोजित नहीं होते, अपितु बाज़ार की अनिवार्यताओं के आधार पर चलाए जाते हैं। इनमें साहित्य का मापदंड नहीं वरन् बाज़ार का मापदंड लागू होता है।

कवि-सम्मेलनों का व्यवसाय उसी तरह योजनाबद्ध ढंग से चलता है, जिस प्रकार कोई उद्योग-धंधा चलाया जाता है। मंचों पर अच्छा प्रदर्शन कर सकनेवाले खिलाड़ी अपनी समर्थक टीम का चयन करते हुए इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देते हैं कि टीम में ऐसा कोई अवांछित तत्त्व न आने पाए, जो उनकी लोकप्रियता के लिए ख़तरा बन सकता हो। टीम का मुखिया निरंतर कवि-सम्मेलनों के उन बड़े-बड़े आयोजकों के संपर्क में रहता है, जो समय-समय पर ऐसे कार्यक्रम कराते रहते हैं। मंच पर किस प्रकार का साहित्य प्रस्तुत किया जाता है, इस पर कोई टिप्पणी करना बेकार है, क्योंकि इनका हाल हर प्रतिभाशाली साहित्य-प्रेमी भली प्रकार जानता है।

ठीक ऐसी ही स्थिति पत्र-पत्रिकाओं की भी है। अधिकांश राष्ट्रीय एवं प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के संपादक भली प्रकार जानते हैं कि किसे सामने लाना है और किसे अनदेखा करना है। किन-किन नामों को आगे बढ़ाना है, किन-किन को पीछे धकेलना है। किस ग्रुप का समर्थन करना है, किसका विरोध। सबके अपने-अपने ग्रुप हैं, जिनके नाम पहले से निश्चित हैं, उन्हीं को बार-बार दोहराया जाता रहता है। इस बाज़ार में भी बाहर के लोग प्रवेश नहीं कर पाते। वही प्रवेश कर पाते हैं, जिनके पास पहले के दिग्गजों की सिफ़ारिश हो या जिन्होंने इन ऊँची दुकानों पर पहुँच बनाने का रास्ता खोज लिया हो।

फ़िल्म-उद्योग का हाल इससे भी बुरा है। सभी बड़े दुकानदारों के जाँचे-परखे और बरते

हुए ग्राहक तय हैं। इंडस्ट्री के ग्लैमर और पैसे की चमक-दमक के आकर्षण से प्रभावित कितने ही युवा, युवतियाँ फ़िल्म-उद्योग की तरफ़ भागते हैं और अपने लिए हर द्वार बंद पाकर ठोकरें खाते हैं, फुटपाथों पर सोते हैं और ख़ाली हाथ घर लौट आते हैं।

यह विवरण देने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि जो कुछ ऊपर की पंक्तियों में कहा गया है, वह सर्वविदित है। यह कोई ऐसा रहस्य नहीं है, जिसे पहली बार उद्‌घाटित किया जा रहा हो। यहाँ इसका वर्णन केवल इसलिए करना पड़ा ताकि जिस बाज़ार के प्रभुत्व की बात हम प्रारंभ से लेकर चले थे, उससे संबंधित सभी पक्षों को आपके सामने रखा जा सकें।

पत्र-पत्रिकाएँ, कवि-सम्मेलन, सरकारी-अर्द्धसरकारी साहित्यिक संस्थाएँ तथा फ़िल्म जगत् कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें लेखक और साहित्यकार अपनी प्रतिभाओं का कुछ-न-कुछ प्रदर्शन अवश्य कर सके हैं, किंतु आज ये सब बाज़ार का अंग हैं और बाज़ार भीड़ के रुझान को देखकर चलता है या उन व्यक्तियों की इच्छा के अनुसार चलता है, जिन्होंने बाज़ार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली है।

अब मैं आपसे आख़िरी बात कहता हूँ। यदि आप एकपक्षीय प्रतिभावाले साहित्यकार है, लिख सकते हैं, उसे बाज़ार में ले जाकर बेच नहीं सकते, रचनात्मक गुण आपमें उच्च स्तर के हैं, किंतु व्यावसायिक गुण नाममात्र के भी नहीं हैं, तो आप साहित्य के बाज़ार में जाने का साहस मत कीजिए, क्योंकि यदि आप केवल साहित्य के मोती लेकर बाज़ार में जाते हैं और उनका गुणगान करने और कराने पर आवश्यक ध्यान नहीं देते तो विश्वास कीजिए, कोई ग्राहक आपके पास नहीं फटकेगा और कबीर की भाँति आप भी भरे बाज़ार में सबकी ख़ैर माँगने की परंपरा ऐसे समय दोहरा रहे होंगे, जब आधुनिक बाज़ार के वातावरण को इसकी आवश्यकता नहीं है।

क्षमा कीजिए, मेरा उद्‌देश्य किसी को निराश करना नहीं है। जीवन, साहित्य, मानवता, संस्कृति, राजनीति तथा सभी ललित कलाओं में अंदर तक प्रवेश कर गए बाज़ार की एक हल्की-सी झलक दिखलाकर आपको यह बताना है कि हम किस तरह व्यापार की दुनिया में जी रहे हैं और भीड़ की दुनिया किस तरह ललित-कलाओं से उनका स्तर छीन रही है।

निराश न हों। संघर्ष करते रहें। लिखते रहें, क्योंकि लेखन पर विराम लगाना आपके वश में नहीं है। एक दिन आ सकता है, जब 'कबीर' बाज़ार में खड़ा होकर सबकी ख़ैर माँग रहा हो और वहाँ उपस्थित अधिकांश व्यक्ति उसकी आवाज़ पर आकर्षित हो रहे हों।

 ISSN 0975-735X

अनुक्रम

कबिरा खड़ा बजार में/ **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 9

कालिदास त्रिवेदी : व्यक्तित्व और कृतित्व/ **डॉ॰ रामानंद शर्मा** 17

श्रीराधाचरण गोस्वामी के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना/ **डॉ॰ अशोक उपाध्याय** 24

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में व्यक्त बाल-अभिरुचि/ **प्रो॰ शर्मिला सक्सेना** 30

डॉ॰ उषा प्रियंवदा के कथासाहित्य में परिवर्तित सामाजिक मूल्य
श्रीमती रीनाकुमारी 36

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के व्यंग्य नाटकों में सामाजिक सरोकार
डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी 40

महाकाव्य बुद्धचरित चंद्रोदय : एक अवगाहन/ **बी॰एच॰ तलवार** 51

वैदिककाल से अब तक नारी/ **मुकेश** 55

परसाई की भाषा/ **डॉ॰ गुड्डी बिष्ट, दिगपाल सिंह** 65

जनवादी कवि नागार्जुन/ **डॉ॰ सुनीता देवी** 69

अंबेडकरवादी स्त्री-चिंतन और स्त्री-विमर्श/ **प्रा॰ पॉ॰ जयश्री गावित** 72

न्यायपंथ के जनक लोककवि हनूवीर जी साहब : व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय
डॉ॰ सुजाता पी॰ फातरपेकर 76

तुलसीदासकृत रामचरितमानस में प्रकृति-चित्रण/ **डॉ॰ सुदेशकुमारी** 82

प्रेम जनमेजय का सामाजिक सरोकार/ **साधना झा** 87

डॉ॰ मीना अग्रवाल के मुक्तक संग्रह 'सफर में साथ-साथ' में
नारी-मन की बात/ **डॉ॰ दीपक विश्वासराव पाटिल** 95

रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यासों की भाषा/ **कृष्णा यादव** 102

डॉ॰ एम॰एस॰ विमल के गीतों में बुद्ध के स्वर/ **डॉ॰ आर॰पी॰ अहरवाल** 106

मिश्रबंधु-विनोद का हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्त्व/ **डॉ० पूनम अग्रवाल** 111

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की उपयोगिता/ **डॉ॰ ऋषिपाल** 118

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचाण्डिया निबंधकार के रूप में/ **रेणु शर्मा** 124

हरियाणा का ऐतिहासिक नगर फिरोजा-ए-हिसार का कलात्मक अध्ययन
डॉ॰ सुषमा सिंह, ज्योति रानी 130

सिटी पैलेस म्यूजियम उदयपुर के दरबारी चित्रकारों एवं चित्रों का
व्याख्यात्मक वर्णन/ **डॉ॰ मनीषकुमार जायसवाल** 135

भारत में सांप्रदायिक सद्‌भाव : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य/ **डॉ॰ गीता यादव** 139
हरियाणा में सांप्रदायिक सद्‌भाव/ **डॉ॰ गीता यादव** 146
मुगल और बघेल संबंध : एक अध्ययन/ **डॉ॰ अनिलकुमार सिंह** 151
कृषि विपणन-व्यवस्था : छतरपुर जिले के विशेष संदर्भ में
डॉ॰ बलराम चौरसिया 154
'सृजन और साहित्य' के बीच खड़ा एक आलोचक/ **डॉ॰ रमेश तिवारी** 159
नक्काशीदार कैबिनेट : नारी-संघर्ष की एक सजीव गाथा/ **डॉ॰ अमिता** 166
प्रकृति, जीवन और सरोकारों के ग़ज़लगो लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'/ **डॉ॰ रमेश तिवारी** 174
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल के साहित्य पर एक दृष्टि/ **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 179

 ISSN 0975-735X

कालिदास त्रिवेदी : व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ॰ रामानंद शर्मा

'महाकवि' की उपाधि धारण करने वाले आज के उपेक्षित कवि कालिदास त्रिवेदी कभी कवि एवं काव्यविदों के प्रिय एवं सम्मान्य कवि रहे हैं। उनके सर्वप्रथम उल्लेख का श्रेय सूरत निवासी भगवद्दास को है। कवि भगवानदास ने अपने ग्रंथ 'शृंगारसिंधु' (संवत् 1770) में कालिदास त्रिवेदी के छः छंद उद्धृत किए हैं और यह संयोग उनके जीवनकाल का ही है। तदुपरांत अहमदाबाद निवासी दलपतिराय वैश्य और वंशीधर ब्राह्मण ने उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नाम पर 'अलंकार रत्नाकर' (संवत् 1798) की रचना की, जिसमें कालिदास के दो छंद उद्धृत किए गए हैं। रीतिकालीन आचार्य-कवि-माला के सुमेरु भिखारीदास ने 'काव्यनिर्णय' (संवत् 1803) में ब्रजभाषा के ज्ञान के लिए जिन कवियों के अनुशीलन की संस्तुति की है, उन 22 कवियों में कालिदास भी उल्लिखित हैं–

ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमानो
ऐसे-ऐसे कविन की बानी हूँ सो जानिए।

इतना ही नहीं, कवि सूदन ने 'सुजानचरित' (संवत् 1815-20) में ब्रजभाषा के जिन 175 कवियों को प्रणम्य कहा है, उनमें कालिदास का नाम भी परिगणित है–

जस के जहान, जगदीस के परम मीत,
सूदन कबिंदन को मेरा परनाम है।

लगभग इसी समय से हिंदी में कविवृत्त संग्रहों की रचना तथा शास्त्रीय विवेचना में पुरातन कवियों के छंद उद्धृत करने की प्रवृत्ति प्रारंभ होती है। इनमें कालिदास त्रिवेदी के छंद भी उद्धृत होते रहे हैं। बलदेव ने 'सत्कविगिराविलास' (संवत् 1803) में कालिदास के दो छंद, श्रीधर ने 'विद्वन्मोदतरंगिणी' (संवत् 1874) में दो छंद तथा रसिकगोविंद ने 'गोविंदानंदघन' (संवत् 1858) में दो छंद उद्धृत किए हैं। संवत् 1892 में परमानंद सुहाने ने 'नखशिखहजारा' और 'ऋतुवर्णनहजारा' का संकलन किया, जिनमें कालिदास के क्रमशः 16 और 22 छंद उद्धृत किए गए है। इसी प्रकार गोकुलप्रसाद 'ब्रज' ने 'दिग्विजयभूषण' (संवत् 1919) में 13 तथा जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने 'काव्यप्रभाकर' (संवत् 1962) में चौदह छंद उद्धृत किए हैं। सारतः काव्य-मर्मज्ञों द्वारा संकलन या लक्षणग्रंथ तैयार करते समय कालिदास के छंदों की निरंतर उद्धृति उनकी लोकप्रियता का ही प्रमाण है।

कविवृत्तसंग्रहों के समान साहित्येतिहास ग्रंथों में भी कालिदास को निरंतर स्थान मिलता रहा है। हिंदी-साहित्य के प्रथम इतिहासलेखक फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा द तासी ने कालिदास का नामोल्लेख किया है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर के संग्रहालय में तो 'वधूविनोद' और 'हजारा'

विद्यमान ही थे, फलतः उन्होंने 'सरोज' में 'वधूविनोद' का प्रारंभिक अंश तथा छः स्फुट छंद उद्धृत किए। इसका प्रभाव यह हुआ कि परवर्ती इतिहासलेखकों को न केवल पर्याप्त सामग्री मिल गयी, बल्कि उन्हें कालिदास का परिचय देने के लिए विवश भी होना पड़ा। मिश्रबंधु, जार्ज ग्रियर्सन, रामचंद्र शुक्ल, चतुरसेन, 'हरिऔध' ही नहीं, डॉ॰ नगेंद्र तक सभी ने परिचय दिया है, लेकिन आचार्य शुक्ल के पश्चात् कवि की खोज-ख़बर लेने का श्रेय डॉ॰ नगेंद्र ख़ेमे को ही है। कवि को सुदीर्घ उपेक्षा ही नहीं सहनी पड़ी, आलोचना एवं शोध से भी वंचित रहना पड़ा, लोकप्रिय कवि भी विस्मृत हो गया। इसका कारण उसकी ग्रंथावली का अप्रकाशन ही है। 'हजारा' अनुपलब्ध हो गया और शोष ग्रंथ दुर्लभ, फिर कवि की बात कौन करे? जिस कवि को एक फ्रांसीसी विद्वान, जो पेरिस में उर्दू का प्रोफ़ेसर है, जानता है, उसे हिंदीभाषी क्षेत्र में स्नातकोत्तर कक्षाओं का अध्यापन कराने वाला हिंदी का प्रोफ़ेसर भी नहीं जानता। अस्तु, सन् 2003 ई॰ में 'कालिदास त्रिवेदी ग्रंथावली' प्रकाशित करा दी गयी है, जिससे इस कवि पर शोध का मार्ग प्रशास्त हुआ और अब तक 7-8 शोध हो चुके हैं। यहाँ इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) व्यक्तित्व

कालिदास, 'त्रिवेदी' अल्ल वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और कानपुर जनपद के वनपुरा स्थान के रहनेवाले थे। यह स्थान गंगा और यमुना के मध्य स्थित होने के कारण अंतर्वेद (दोआब) कहलाता है। इन्होंने अपने स्थान, परिजन आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है।

कालिदास का जन्मकाल और मरणकाल दोनों ही अनुमान पर आधारित हैं। उन्होंने संवत् 1749 में 'वधूविनोद' की रचना की तथा इससे पूर्व 'जंजीरा' लिख चुके थे। विद्वानों का अनुमान है कि 'वधूविनोद' की रचना के समय उनकी अवस्था लगभग 40 वर्ष रही होगी, फलतः उनका जन्म संवत् 1710 के लगभग हुआ होगा। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने कालिदास हजारा का भरपूर उपयोग किया है। उनका मत है कि उन्होंने संवत् 1480 से 1775 तक के 212 कवियों के लगभग एक हजार छंद इसमें संकलित किए हैं। अनुमान है कि संवत् 1775 तक के कवि संकलित करने वाले कालिदास का जीवन संवत् 1780 तक अवश्य चला होगा। उस समय तक उनकी अवस्था भी 70 वर्ष के लगभग हो गयी थी। इस प्रकार उनका जीवनकाल संवत् 1710-1780 तक माना जा सकता है।

कालिदास का रचनाकाल संवत् 1745-80 तक लगभग 35 वर्ष माना जा सकता है। इससे पूर्व का समय कवित्व की साधना का समय था और परवर्ती के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि जीवन का समापन न भी हुआ हो तो अशाक्त अवश्य हो गए होंगे, रचनाकर्म से विरत हो गए होंगे।

'महाकवि' कालिदास की उपाधि थी, जिसका उन्होंने 'वधूविनोद' तथा स्फुट छंदों में छाप के रूप में भी प्रयोग किया है। यह उपाधि किससे प्राप्त हुई, इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। 'जंजीरा' में सर्वत्र कालिदास की ही छाप है। 'वधूविनोद' में 'महाकवि' का 2 स्थानों पर ही प्रयोग हुआ है। 'वधूविनोद' जम्मूमहीपकुमार जालिम जोगाजीत सिंह को समर्पित है और उनकी रणकुशलता, दानशीलता आदि की मुखर प्रशस्ति गाता है। अतः अनुमान यही

 ISSN 0975-735X

लगाया जा सकता है कि 'जंजीरा' किसी के आश्रय में नहीं लिखा गया और 'जंजीरा' लिखकर कवित्व-क्षमता सिद्ध करने पर जोगाजीत सिंह ने इन्हें 'महाकवि' की उपाधि तथा आश्रय प्रदान किया। कालिदास के अद्यावधि उपलब्ध कुल 10 छंदों में 'महाकवि' की छाप मिलती है।

कालिदास के परिजनों के विषय में तो कुछ जानकारी नहीं मिलती, लेकिन उनके पुत्र उदयनाथ 'कवींद्र' तथा पौत्र दूलह की गणना रीतिकाल के सत्कवियों में की जाती है। उदयनाथ ने 'रसचंद्रोदय' की रचना की, जो रसरीति का ग्रंथ है और दूलह ने 'कविकुलकंठाभरण' की, यह अलंकार-विवेचक ग्रंथ है। रीतिकालीन अलंकारवादी कवियों में जसवंतसिंह के पश्चात् दूलह का ही नाम आता है। उदयनाथ ने 'रसचंद्रोदय' में पितापुत्र दोनों का नामोल्लेख इस प्रकार किया है–

कालिदास कवि के सुवन, उदयनाथ सरनाम।
भूप अमेठी के दियो, रीझि कबिंद सु नाम।
तासु तनै दूलह भयो, ताके पढ़िबे हेतु।
रसचंद्रोदय तब कियो, कवि कबिंद करि चेतु।

आश्रयदाता

कालिदास त्रिवेदी के काव्य में तीन आश्रयदाताओं की प्रशस्ति उपलब्ध होती है– जम्मूनरेश वृत्तिसिंह के पुत्र राजकुमार जोगाजीत सिंह रघुवंशी, अमेठीनरेश महाराज हिम्मतसिंह और बांधवगढ़नरेश महाराज अवधूतसिंह बघेला।

जोगाजीत सिंह जम्मूनरेश वृत्तिसिंह के पुत्र थे और राजकुमार थे। 'वधूविनोद' की पुष्पिका में 'जम्मूमहीपकुमार' शाब्द आया है। वृत्तिसिंह मुग़लों के मित्र थे और उनके युद्ध-अभियानों में सम्मिलित होते थे। संवत् 1733 के काबुल अभियान में वे सम्मिलित हुए थे। 'औरंगज़ेबनामा' में पृथ्वीसिंह लिखा गया है, वस्तुतः वे वृत्तिसिंह ही थे। बीजापुर और गोलकुंडा का अधिग्रहण संवत् 1745 में हुआ है और 'वधूविनोद' की रचना संवत् 1749 में। इस समय तक वे बाग़ी हो चुके थे 'जाके बागी होत ही, साह भयो भयभीत'। इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं–प्रथम, युवा होने पर जोगाजीत भी औरंगज़ेब के युद्ध-अभियानों में सम्मिलित होने लगे थे और बीजापुर-गोलकुंडा के समय वे मुग़ल सेना के साथ थे। द्वितीय, कालिदास कवित्वक्षमता सिद्ध करने से पूर्व जोगाजीत की सेना में सम्मिलित थे। कवित्व शक्ति 'जंजीरा' से सिद्ध की, तदुपरांत जोगाजीत का आश्रय प्राप्त हुआ। 'जंजीरा' में न जम्मू का उल्लेख है और न जोगाजीत का, जबकि 'वधूविनोद' जोगाजीत की प्रशस्ति गाता है। 'महाकवि' की उपाधि भी आश्रय के साथ नहीं, कुछ बाद में प्राप्त हुई, क्योंकि 'वधूविनोद' में पंचम और अंतिम विनोद में ही दो स्थलों पर इसका प्रयोग हुआ है। तात्पर्य यह है कि कालिदास ने अपना जीवन जम्मूनरेशा की सेना में सैनिक रूप में प्रारंभ किया था। 'जंजीरा' से कवित्वशक्ति सिद्ध करने पर जोगाजीत ने आश्रय प्रदान किया।

कालिदास के दूसरे आश्रयदाता थे अमेठीनरेश महाराज हिम्मतसिंह। महाराज हिम्मतसिंह पहाड़सिंह के पुत्र और गुरुदत्तसिंह 'भूपति' के पिता थे तथा अच्छे आश्रयदाता ही नहीं, सत्कवि भी थे। 'महीपति' नाम से काव्यरचना भी करते थे। उन्होंने संवत् 1766 में 'कविकुल तिलक प्रकाश' ग्रंथ की रचना की, जिसमें रस, वृत्ति, गुण, दोष, अलंकार, छंद आदि की विवेचना की गई है। हिम्मतसिंह का शासनकाल संवत् 1766 से 1798 तक रहा। तदुपरांत उनका पुत्र गुरुदत्त

सिंह 'भूपति' शासक बना। 'महीपाल' और कालिदास के स्नेहिल संबंधों को इसी से जाना जा सकता है कि उदयनाथ 'कवींद्र' महाराज गुरुदत्तसिंह 'भूपति' के आश्रय में रहे।

कालिदास के तृतीय आश्रयदाता थे बांधवगढ़नरेश महाराज अवधूतसिंह बघेला। अवधूतसिंह अनुरुद्धसिंह के पुत्र थे और उन्होंने संवत् 1751-1812 तक शासन किया। कालिदास ने अपने कवित्त में उन्हें 'पृथ्वी का पुरहूत' बताया है। कालिदास के पुत्र उदयनाथ 'कवींद्र' ने भी अवधूतसिंह की प्रशस्ति में एक छंद लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि वे भी कुछ समय उनके आश्रय में रहे हैं।

(ख) कृतित्व

परंपरा से कालिदास की तीन रचनाएँ मानी जाती हैं–जंजीरा, वधूविनोद और हजारा। इनके अतिरिक्त काव्यसंग्रहों में इनके स्फुट छंद भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। 'कालिदास त्रिवेदी ग्रंथावली' में इनकी संख्या 65 है, लेकिन इधर तीन अन्य छंदों के मिल जाने से उनकी संख्या 68 हो गई है। खोज में उनके नाम पर 'राधा माधव बुधमिलन' भी अंकित है। वस्तुतः यह 'वधूविनोद' का अंगमात्र है। ग्रंथावली के अप्रकाशन के कारण अनेक प्रकार के भ्रम फैल जाते हैं और उनका निराकरण नहीं हो पाता। अब ग्रंथावली प्रकाशित हो चुकी है, इसलिए निराधार बातों को छोड़ना ही न्याय्य है। यहाँ इनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है–

जंजीरा

'जंजीरा' या 'जंजीराबंद' नाम से विख्यात यह रचना संवत् 1951 (सन् 1894 ई॰) में लक्ष्मीवेंकटेशवर मुद्रणालय कल्याण से प्रकाशित हुई थी और अब संपादित होकर ग्रंथावली में संकलित है। लक्ष्मीवेंकटेश्वर की मुद्रित प्रति के मुखपृष्ठ पर लिखा है–'कवि कालिदास कृत जंजीरा अर्थात् कृष्णकेलिकवित्तकलाप'। यह भी संभव है कि कवि ने इसका नाम कृष्णकेलि या कृष्णकेलिकवित्त रखा हो, लेकिन जंजीराबंद शैली का प्रयोग करने के कारण यह 'जंजीरा' नाम से प्रसिद्ध हो गयी हो। इस संभावना का आधार इस कृति की यह पंक्ति भी है–

काम-केलि-कथा के कलापनि कलित केलि,
तेरे लंक ललित लुनाई सरसाति है।

32 कवित्तों वाली इस अल्पकाय कृति में छंद के अंत में आने वाले दो-तीन वर्णों से ही अगला छंद प्रारंभ होता है, जैसे सिंहावलोकन सवैया में। कवि ने अंतिम छंद के अंतिम वर्णों का प्रथम छंद के प्रारंभ में प्रयोग नहीं किया है।

'जंजीरा' में राधा और कृष्ण के मिलन का सुंदर वर्णन किया गया है। राधा कृष्ण के वियोग से व्यथित है और ललिता दूती बनकर दोनों का मिलन कराती है। कृष्ण राधा के अनुपम सौंदर्य को देखकर अभिभूत हो उठते हैं। यहाँ कवि ने उसकी अंगकांति का रम्य वर्णन किया है। दोनों का मिलन प्रारंभ होता है। इस मिलन में राधा ही भावविभोर नहीं होतीं, बल्कि स्वयं कवि भी भावविभोर हो उठता है और आलंकारिक शैली में नाना प्रकार से उसका रम्य चित्रण प्रस्तुत करता है। यहाँ कवि ने शृंगारिक चेष्टाओं के भी रम्य चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। दोनों की विलासमयी रतिक्रीड़ा का एक संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत है–

गहिके कठोर कुच-तुंबनि कनक रंग,

 ISSN 0975-735X

चुंबन करत अंग-अंग चटकीली को।
मैन-मद झूमि-झूमि, तूल सम तूमि-तूमि,
लेत मुख चूमि-चूमि राधिका रसीली को।

रतिविधानों का पालन केवल कृष्ण की ओर से ही नहीं हो रहा है, राधा भी इनमें पूर्ण रुचि दिखा रही है और स्वयं भी उनका पालन कर रही है–

पियत पियारी दोऊ ओठनि सों धरि-धरि,
अधर मधुर मधुसूदन रसाल को।
रूपरासि हू में, सम छकी रंग हू में, कर
दैकर कपोल मुख चूमै नंदलाल को।

राधा और माधव का मिलन आगे बढ़ता है। राधा के अंगप्रत्यंग में हलचल होने लगती है। उसकी कटि लचकने लगती है, श्रोणी में हलचल होने लगती है और संपूर्ण शरीर कंपित हो उठता है। कृष्ण राधा के शरीर को सहलाने लगते हैं। घुँघरुओं द्वारा विजयगाथा कहना, पाज़ेब द्वारा बार-बार पुकारना और बिछिया रूपी बंदीजनों द्वारा यशेगान-इससे रति का सांकेतिक चित्र स्पष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् गुल्फ, जघन, रोमावली और नाभिकूप के वर्णन के साथ शृंगारवर्णन पूर्ण हो जाता है।

कालिदास के शृंगारवर्णन की विशेषता यह है कि यहाँ नायक और नायिका दोनों को समान व्यग्र दिखाया गया है। नायक ही नहीं, नायिका भी रतिविधानों का पूर्ण पालन कर रही है तथा अंतिम अवस्था का सांकेतिक वर्णन किया गया है, जिससे अश्लीलता को बचाया जा सके।

वधूविनोद

संवत् 1749 में रचित इस कृति का नाम 'वधूविनोद' है या 'वारवधूविनोद' यह कह पाना कठिन है, लेकिन इस कृति में केवल वारवधुओं का ही विवेचन नहीं है, स्वकीया और परकीया का भी है और स्वकीया को कवि ने लक्ष्मी और सरस्वती के समान पवित्र बताया है, इसलिए इसका नामकरण 'वधूविनोद' ही होना चाहिए। 'वधूविनोद' की संगति इस बात से भी लगती है कि कवि ने स्वकीया, परकीया और सामान्या को क्रमशः स्ववधू, परवधू और वारवधू कहा है।

पाँच प्रभावों में विभक्त इस कृति में न तो रसों का विवेचन है और न नायकभेदों का। यहाँ केवल नायिकाभेद को ही विषय बनाया गया है। कारे चोर (कृष्ण) की वंदना के पश्चात् कवि ने आश्रयदाता का यशा एवं वंश-वर्णन किया है। नायिकाभेद का प्रारंभ एक आख्यान के माध्यम से किया गया है। ललिता, राधा और कृष्ण को मिलाना चाहती है। कृष्ण संकेतस्थल पर पहुँच जाते हैं, लेकिन राधिका का आगमन विलंबित होने से कृष्ण का विरहताप बढ़ने लगता है, जिसे दूर करने के लिए ललिता नायिकाभेद सुनाना प्रारम्भ करती है। स्वकीया का गुणगान करते हुए उसके तीन भेद बताए गए हैं–मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। मुग्धा और प्रौढ़ा के पारंपरिक भेदों का वर्णन करते हुए मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा भेदों का विवेचन किया गया है। द्वितीय प्रभाव में परकीया का विवेचन किया गया है, जिसमें ऊढ़ा और अनूढ़ा के अतिरिक्त गुप्ता आदि छः नायिका का भी विवेचन है। तृतीय प्रभाव में वारवधू का विवेचन है।

यहाँ भेदोपभेदों का उल्लेख तो नहीं है, लेकिन उनकी चालढाल, चमक-दमक, वस्त्राभूषणों की बहार, ठसकदार शृंगार, नृत्यगान की प्रवीणता, संभोग में अंगप्रत्यंगों का प्रयोग आदि का कवि ने अच्छा और व्यापक चित्रण किया है। विपरीत रति को भी स्वकीया के अंतर्गत न रखकर वारवधू के अंतर्गत ही रखा है। चतुर्थ प्रभाव में अन्यसंभोगदुखिता, गर्विता और मानवती के अतिरिक्त अवस्थानुसार नायिका की विवेचना की गई है। यहाँ कालिदास ने अवस्थानुसार नायिका का केवल एक-एक उदाहरण ही दिया है। पंचम प्रभाव में उत्तमा, मध्यमा और अधमा का परिचय देते ही राधा का आगमन हो जाता है और ललिता दोनों का मिलन करा देती है। यह मिलन कामकौशल से परिपूर्ण होने के कारण 'बुधमिलन' कहलाता है। कालिदास की विशोषता यह है कि उन्होंने नायिका-भेद ओर मिलन दोनों को परस्पर पूरक बनाया है और दोनों के साथ समान न्याय किया है। न नायिकाभेद उपेक्षित हुआ है और न मिलन ही। रचनाकाल के उल्लेख के साथ ही 'वधूविनोद' पूर्ण हो जाता है।

'वधूविनोद' में भी जंजीराबंद शौली का प्रयोग किया गया है, जिसके कारण न केवल लक्षण, बल्कि उदाहरणों में भी कवि बँधा हुआ सा दिखाई देता है। यही कारण है कि इसके छंद कम ही लोकप्रिय हुए हैं। लक्षण दोवै छंद में हैं और उदाहरण त्रिभंगी में। कवि ने छप्पय, भुजंगप्रयात, कुंडली, सवैया, कवित्त, दोहा, सरसी, हरिगीतिका आदि का भी प्रयोग किया है, जो परंपरा से हटकर है।

'वधूविनोद' का रचयिता बहुत सफल भले ही न रहा हो, लेकिन प्रयोगशील एवं दुराग्रही अवश्य है। दोहा छंद में लक्षण और त्रिभंगी में उदाहरण, भुजंगप्रयात, त्रोटक, कुंडलिया, सरसी, हरिगीतिका आदि का प्रयोग, आख्यान के माध्यम से नायिकाभेद और दोनों का सम्यक् निर्वाह, सामान्या नायिका का सूझबूझपूर्ण वर्णन आदि ऐसी विशोषताएँ हैं, जो कालिदास की असाधारणता को रेखांकित करती हैं।

यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि कालिदास 'वधूविनोद' के उत्तरार्ध तक अपनी प्रयोगशीलता की दुर्वहता और महत्त्वहीनता को समझ गए थे। यही कारण है कि उन्होंने पंचम प्रभाव में कवित्त एवं सवैया छंद का प्रयोग किया है। इस प्रभाव में कुंडलिया, चौपाई छंद तो रखे हैं, लेकिन त्रिभंगी छंद का प्रयोग नहीं किया है।

हजारा

कालिदास की प्रसिद्धि का आधार उनका हजारा है और आज यह उपलब्ध नहीं है। इस हजारा की प्रति ठाकुर शिवसिंह सेंगर के संग्रहालय में विद्यमान थी और यह 'सरोज' का प्रमुख आधार बनी। ठाकुर साहब ने 'सरोज' में 80 कवियों के विषय में लिखा है कि इनकी कविता हजारा में है। ठाकुर साहब के विवरण से ज्ञात होता है कि कालिदास हजारा में संवत् 1480 से 1775 तक के 212 कवियों के एक हजार छंद संकलित थे। ऐसे संग्रहों से अनेक अल्पख्यात कवियों पर प्रकाश पड़ता है और काव्येतिहास के अनेक रहस्य उद्घाटित होते हैं। अतएव इनका प्रकाशान आवश्यक है।

डॉ॰ किशोरीलाल गुप्त ने एक संग्रह को हजारा नाम से प्रकाशित करा दिया है, जो न तो कालिदास कृत है और न शिवसिंह सेंगर द्वारा प्रयुक्त ही। वस्तुतः कोई काव्यानुरागी काव्यसंग्रह

 ISSN 0975-735X

बना रहा था, जो पूर्ण नहीं हो सका और इस अपूर्णावस्था में ही किसी काव्यप्रेमी ने उसे जंजीरा के साथ जिल्दबंद करा दिया। गुप्त जी ने अंत:साक्ष्यों की विवेचना किए बिना ही इसे सेंगर प्रयुक्त मान लिया है, जो तर्कातीत है। वस्तुत: कालिदास हजारा अभी अप्रकाशित ही नहीं, अनुपलब्ध भी है।

स्फुट छंद

कालिदास अपने जीवनकाल से निरंतर काव्यसंग्रहों में उद्धृत होते रहे हैं। इन छंदों में कुछ तो 'जंजीरा' और 'वधूविनोद' के हैं और कुछ उनके अतिरिक्त हैं। ये अतिरिक्त छंद ही स्फुट छंद कहलाते हैं। अब तक कालिदास के 68 स्फुट छंद मिल चुके हैं। इनके विषय हैं– राजप्रशस्ति, शृंगारवर्णन, नखशिख, ऋतुवर्णन। कालिदास के स्फुट छंद निश्चय ही विशेष महत्त्व रखते हैं, क्योंकि यहाँ न तो जंजीराबंद शौली के निर्वाह की चिंता है और विषयविवेचन की बाध्यता ही। यहाँ कालिदास सर्वत्र स्वतंत्र हैं। शृंगार उनका प्रिय विषय है और कवित्त उनका प्रिय छंद। यहाँ उनका सर्वाधिक उद्धृत छंद प्रस्तुत है–

हाथ हँसि दीन्हो, भीति-अंतर परोस प्यारी,
हाथ-साथ छकी मति कान्हर प्रबीन की।
निकस्यो झरोखा ह्वैके, विकस्यो कमल जैसे,
ललित अँगूठी, तामें चमक चुनीन की।
'कालिदास' तैसी सोभा मेंहदी के बुंदन की,
चारु नख-चंदन की, लाल अंगुरीन की।
केसी छबि छाजत है, छाप और छला की, सु-
कंचन चुरीन की, जराऊ पहुँचीन की।

इसी प्रकार उनका एक अन्य प्रख्यात कवित्त है–

कथा सुनिबै का बैठी, पति-संग गाँठ जोरि,
जी में कछु आनि गाँठि, गाँठ ठकिबो करै।
'कालिदास' तहाँ बैठो पास में गोविंद आछे,
रुचि मधुपान सों छबीलो छकिबो करै।
घट नटनागर की मूरति समाइ रही,
घूँघट की ओट इकटक, टकिबो करै।
अटको तिया को मन, नवल सुजान संग,
बापुरो पुरोहित पुराण बकिबो करै।

सारत: कालिदास त्रिवेदी रीतिकाव्य के अप्रतिम कवि हैं। जंजीराबंद शैली ने उन्हें सीमाओं में निबद्ध किया है, तो हजारा ने लोकप्रियता भी प्रदान की है। उनके विप्रकीर्ण छंदों ने उनकी कीर्ति का चतुर्दिक गायन किया है और यही कारण है कि वे फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सा द तासी द्वारा भी उल्लिखित हुए।

पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी॰जी॰) कालेज
9, **जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)**

श्रीराधाचरण गोस्वामी के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ॰ अशोक उपाध्याय
हिंदी विभाग
बरेली कालेज, बरेली (उ॰प्र॰)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'शिक्षित समाज में संचरित भावों को भारतेंदु के सहयोगियों ने बड़े अनुरंजनकारी रूप में ग्रहण किया। उनका जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था। विदेशी अंधड़ों ने उनकी आँखों में उतनी धूल नहीं झोंकी थी कि अपने देश का रूप-रंग उन्हें सुझाई ही न पड़ता। काल की गति वे देखते थे, सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे, पर पश्चिम की एक-एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे। प्राचीन और नवीन के संधि-स्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्रवर्धित रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर लपेटी हुई वस्तु।'[1] श्रीराधाचरण गोस्वामी भारतेंदु मंडल के अत्यंत ख्यातिप्राप्त साहित्यकार थे। उन्होंने भारतेंदु जी से प्रेरणा ग्रहण करके ही अपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश किया और अंत तक इसी में तल्लीन रहे। उन्होंने अपने साहित्यिक प्रयासों से यह सिद्ध कर दिया कि साहित्य सदैव राजनीति का अनुगमन नहीं करता, अपितु उसे यथावसर उचित दिशाबोध भी प्रदान करता है। तत्कालीन भारतीय राजनैतिक जीवन में जिस राष्ट्रीय चेतना के उद्‌भव और जागरण का स्वरूप भारतेंदु मंडल के माध्यम से उल्लसित हुआ उसका बहुत कुछ श्रेय गोस्वामी जी की तेजस्वी लेखनी को भी प्राप्त है। उस युग में हिंदी में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय चेतना के विकास का शक्तिशाली आधार थीं। गोस्वामी जी के लेख और कविताएँ प्रायः इन सभी में छपती थीं। श्रीकृष्ण चैतन्य चंद्रिका और भारतेंदु नामक मासिक पत्रों का संपादन भी उनके द्वारा किया गया था। श्रीकृष्ण चैतन्य चंद्रिका रामनारायण प्रेस मथुरा इत्यादि अन्य प्रकाशन स्थलों से लोकप्रिय रूप में सन् 1910 से 1920 ई॰ तक प्रकाशित होती रही। 'भारतेंदु' मासिक का प्रकाशन भी इसी प्रेस से हुआ था जो कि सन् 1883 से 1892 ई॰ तक प्रकाशित होता रहा। उनकी पत्रकारिता का उद्‌देश्य था—सामाजिक जीवन में विभिन्न साहित्यिक प्रकारों के माध्यम से लोकरुचि का परिष्कार करके सहज व्यवहारशील साहित्यिक भाषा में राष्ट्रीय चेतना का व्यापक प्रचार-प्रसार। इसके लिए उन्होंने अपने अन्य सहकर्मियों के समान ब्रिटिश सरकार की आलोचना करके अपनी हार्दिक वेदना का परिचय इस प्रकार दिया है—

भारत पर दुख की घोर घटा
बरसत नयननीर निसवासर जल-थल सकट पटा
गरजत तरजत दुष्ट पुष्ट टिक्कस की विज्जु छटा।

 ISSN 0975-735X

इमि पावस छायो आरजथल कुसमय आन अटा।
भये व्यवहार बंद उन्नति के दारिद दुसह डटा।।[2]

अकाल, महामारी, टैक्स, भुखमरी, दरिद्रता, अविद्या और सरकारी अफसरों तथा जमींदारों से पीड़ित भारतीय जनता की पीड़ा से कष्ट पाते हुए उन्होंने दीन स्वर में लिखा है–

मैं हाय-हाय दै धाय पुकारौं कोई,
भारत की डूबी नाव उबारो कोई।
उड़ गए वेद के वाद वान अति भारे,
ऋषिजन रस्सा नहिं रहे खैंचने हारे।
यामैं चिंतामणि सदृश रत्न की ढेरी,
अमृत सम औषधी फेरी।
बह चली सकल यूरोप हाय मति भोई,
भारत की डूबी नाव उबारो कोई।[3]

श्रीरामधारीसिंह दिनकर ने इस प्रकार की भावना में निहित राष्ट्रीय-चेतना को 'नवोत्थान' की संज्ञा प्रदान करते हुए लिखा है कि 'नवोत्थान में भी अतीत की बातें दुहराई जाती हैं। जब नवोत्थान का समय आता है, जातियों के कुछ पुरातन सत्य दुबारा जन्म लेते हैं। यह पुनर्जागरण नहीं सत्यों का पुनर्जन्म है। बहुत से सत्य ऐसे होते हैं, जो मिटना नहीं जानते, जो कुछ दिनों के लिए प्रच्छन्न हो जाते हैं किंतु समय पाकर उन्हें मनुष्य फिर से प्राप्त कर लेता है, भारत के ऐसे सत्य वेदांत के सत्य रहे हैं। जब-जब भारत में नवोत्थान हुआ है, तब-तब वेदांत की भूमिका मनुष्य के सामने प्रकाशित हो उठी है।'[4] गोस्वामी जी राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए सामाजिक एकता विरोधी तत्वों को निस्तेज और निष्प्राण करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। 'भारतेंदु' में उनके द्वारा स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 'अब यह समय नहीं कि घर में जूता चले और बाहर के तमाशा देखें। अब तो एक होक देशोन्नति करनी चाहिए। यह व्यर्थ का झगड़ा छोड़ो और परस्पर मिलो। क्या एक ही रुधिर से हिंदू और आर्य उत्पन्न नहीं हुए? छि: छि: इस पर भी इतना द्वेष? और इस पर भी देशोपकार का व्रत?'[5] 'मित्र विलास' में राष्ट्रीय चेतना का आधार देश हित की चर्चा करते हए उन्होंने स्पष्ट किया कि 'निस्संदेह देश हित का एक लोकोत्तर फल है जिसे प्राप्त करने के लिए छोटे-बड़े व्यक्तियों का प्रश्न नहीं, वरन् प्रश्न है संपूर्ण राष्ट्र की एकता के दृढ़ पाश में बाँधने का तथा सबके सहयोग का–यह कार्य (देशोपकार) किसी एक या दो पुरुषों से कृतार्थ नहीं होता। इसे तो जब सब लघु-दीर्घ अपने उत्साह से अनुरक्ति करें, तब उस लोकोत्तर (देशहित) फल के प्राप्त होने की संभावना है। जब देशोपकारियों की ही इतनी अल्पसंख्या है तो देशोन्नति कहाँ से हो?'[6] पराधीनता के युग में देशहित में राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद करनेवाले जनसमुदाय की न्यूनता उन्हें बहुत कष्ट देती थी। 'देशोपकार के लिए साधारणकोष' 'भारतबंधु' में प्रकाशित इस लेख में उन्होंने दुखित मन से लिखा है कि 'इतने बड़े भारतवर्ष में दो-चार लाख मनुष्यों को भी देश की चिंता नहीं है। तनिक आँख उठाकर तो देखिए। देश के बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं और रईसों के कणो [6] तक अब तक देश की दुर्दशा की आर्त्तध्वनि नहीं पहुँची है। देश की अवस्था सर्वसाधारण नहीं जानते न इसकी उन्नति का उपाय

ही जानते हैं। देश-हितैषियों को उचित है कि देश की दुर्दशा जिसे साधारण लोग जान सकें ऐसी प्रकृति जन्मावें। मेला, तमाशा, हाट, रेल, ठेला-गाड़ी, इक्का, मोटर, गर्महाट बाजार आदि जनसंग्रह के स्थानों में जब देशोपकारी लोग उपस्थित हों या वार्त्तालाप का अवसर मिले तो स्वयं आदर्श बनकर ऐसी वक्तृता करें कि सबको कोई देश की दुर्दशा से परिचित हो जाय।'[7]

गोस्वामी जी स्वाभिमानी साहित्यकार थे। देश की दुर्दशा और अपमान के कारण आहत उनके हृदय का स्वाभिमान राष्ट्रीय-चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। अशिक्षा, स्वार्थपूर्णता, अंधविश्वास इत्यादि को राष्ट्रहित में बाधक मानते थे। जननी जन्मभूमि का मोह छोड़कर जो लोग विदेशियों की पराधीनता में सुख अनुभव करते थे, उन्हें वे अप्रिय थे। 'हिंदी प्रदीप' में उन्होंने लिखा है कि 'वे नराधम का पुरुष हैं, जो अमलीन वदन रह, अपने देश की ममता का विसर्जन कर दास्य भाव स्वीकार करते नहीं लजाते हैं। दास भाव की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है।'[8] 'कवि वचन सुधा' में भी 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सकलार्थ साधिनी' देशभक्ति की प्रेरणा देते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'आशा नहीं इस दुस्समय में देश का गौरव लेशमात्र भी बना रहे। इस दुर्दशा से मुक्ति का उपाय केवल देशभक्ति के बिना दूसरा नहीं। भारतवासियों को उचित है कि अपने देश की अनन्य भक्ति करें, देश के आश्रय बने, देश की कुचालें मिटाएँ, विद्या-व्यापार को उन्नति दें, जो कर्मण्यवस्तु जहाँ न हो और दूसरे देशों से आती है, उसे यहाँ उत्पन्न करें, बांधवों से मेल रखें, संतानों को बाल्यवय से ही परोपकार में उत्सुक करें, स्वार्थ-तत्पर न बनें, तब कुछ काल तक देश-गौरव बने रहने की संभावना है। खेद का विषय है कि यहाँ के लोगों के हृदय में सकलार्थ साधिनी देशभक्ति का अंकुर पर्यंत नहीं है। यदि कोई महाशय सर्वसाधारण के हृदय में किसी प्रकार से देशभक्ति का अंकुर दृढ़ कर दें, तो अवश्य देशोन्नति सुकर है, नहीं तो प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः की सी व्याख्या है।'[9]

गोस्वामी जी का युग महारानी विक्टोरिया की छत्रछाया में उत्पन्न अकाल, टैक्स, गरीबी, अंधविश्वास, अज्ञात-ज्ञात के विरोधाभास एवं जाति-बिरादरी के शिकंजे में सामान्य जन-समुदाय की असमर्थताओं तथा विदेशी धर्म प्रचारकों की धार्मिक चेतना से प्रकाशित 'नए धर्म नियम' के विरुद्ध भारतीय धार्मिक जीवन में उत्पन्न 'स्वधर्म रक्षा' की तीव्र प्रतिक्रियाओं से परिप्लावित था। 'सच तो यह है कि मानसिक अध्यवसाय रहने पर भी भारतवासी जड़ पदार्थ में परिणत हो गए थे। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत पंडे, पुरोहित, गुरु आदि अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित ब्राह्मण हिंदू समाज पर छाए हुए थे। इसके साथ ही विधवा-विवाह, बहुविवाह, खान-पान संबंधी प्रतिबंध, समुद्र यात्रा के कारण जाति बहिष्कार, नशाखोरी, पर्दा, स्त्रियों की हीनावस्था, धार्मिक सांप्रदायिकता, अफीमखाना आदि अनेक कुप्रथाओं का चलन हो गया था।'[10] सरकारी कर्मचारियों के अत्याचारों ने इन्हें और अधिक भयावह बना दिया था। गोस्वामी जी कट्टर वैष्णव हिंदू होते हुए भी कोमल उदार हृदय युक्त राष्ट्रभक्त थे। देश की दुर्दशा देखकर उनका हृदय त्राहि-त्राहि कर उठता था। 'यमलोक की यात्रा' नामक व्यंग्य निबंध में उन्होंने यमदूत, वैतरणी, सिपाही, नरक के निवासी, विचारक, चित्रगुप्त इत्यादि प्रतीकों के माध्यम से युग के समस्त यथार्थ को अभिव्यंजित करने का सफल प्रयास किया है। उस समय शीत ज्वर नादिरशाह जैसा भयंकर प्रतीत होता था और अल्पायु में ही प्राण हरण कर लेता था। गोस्वामी जी ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि 'उनविंशत शताब्दी में केवल 25 वर्ष ही जिए! हा! न सारे हिंदुस्तान में नागरी का दफ्तर

 ISSN 0975-735X

और हिंदी भाषा का प्रसार देखा, न जाति-पाँति का झगड़ा मिटा, न सिविल सर्विस में भर्ती होकर हिंदुस्तानियों को उच्च पद मिले, न हमारे जीते प्रेस एक्ट उठा, न लाइसेंस टैक्स का मूँ काला हुआ!'[11]

गोस्वामी जी ने ब्रिटिश शासकों की साम्राज्यवादी नीतियों, उपनिवेशवादी युद्ध, राजदरबार, प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय, नौकरशाही, विधि-विधान तथा दलाल, खुशामदी वर्ग इत्यादि की यथासंभव आलोचना की है। देशोन्नति के कार्यों में रुचि और निर्बल पर सबल के अत्याचारों का सशक्त विरोध उनके स्वभाव का अभिन्न अंग प्रतीत होता है। 'यमलोक की यात्रा' निबंध की रचना में उनका यह उद्देश्य बहुत स्पष्ट परिलक्षित होता है। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने इसके संदर्भ में लिखा है कि 'यमलोक की यात्रा में उस समय की घटनाओं, आंदोलनों आदि का बहुतायत से उल्लेख है। इसका व्यंग्य राजनीतिक दमन, सामाजिक दुराचार आदि विशेष लक्ष्यों की ओर प्रेरित है।'[12] ज्ञातव्य है कि प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता ने अँग्रेजों और भारतीयों की गैरबराबरी को इस हद तक बढ़ा दिया था कि रेल में अँग्रेज आनंद के साथ यात्रा करते थे और भारतीय नरक जैसी यंत्रणा भोगते थे। गोस्वामी जी ने लिखा है कि 'हे यूरोप कुल कमल दिवा करे! तुमइं राजवंश संभूत हो, अतएव सजातीय पक्षपात से परिपूर्ण हो। एक ही गाड़ी में एक ही समय में अँगरेजों को स्वर्ग और हिंदुस्तानियों को नरक है। अतएव 'अत्रैव नरकः स्वर्गः' यह नास्तिकों का वाक्य है—आज तुम्हारे विषय ही चरितार्थ हुआ।'[13]

रेल विभाग की दुर्दशा पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने विजयी और पराजित समुदाय के बीच की ग्रंथि को भी स्पष्ट कर दिया है। रेल विजयी समुदाय का प्रतीक है। इसलिए उसकी प्रार्थना में उनके द्वारा कहा गया है कि 'हे विकटटिकटे! हमें टिकट बाबू न लूटैं। हे भीड़-भाड़ भरिते! हम भीड़ में दबकर न मरैं। हे नीलबंदरबल्लभे! हमें तुम्हारा कोई नीलबंदर न छेड़े। हे पुलिस प्रिये! हम तुम्हारे पार्षदों द्वारा पुलिस में न दिए जावें।'[14] वास्तविकता यह है कि गोस्वामी अत्यंत निर्भीक राष्ट्रवाी लेखक थे। कोर्ट, कचहरी, फौज, पुलिस तथा अन्य सरकारी विभागों में ब्रिटिश प्रशासन के बूटधारी विदेशी और देसी साहबों के अत्याचार सर्वविदित थे। उनके सामने किसी के बोलने की हिम्मत नहीं थी। इस प्रकार के राष्ट्रविरोधी साहबों को 'रिश्वत का छोटा भाई' घोषित करते हुए उन्होंने 'मिस्टर-बूट' में बताया है कि 'माई डियर बूट स्कूल, कालिज, हास्पिटल, पोस्ट, पब्लिक वर्क सब डिपार्टमेंटों में आपकी तूती बजती है और फौज और पुलिस को तो आपने सर्वग्रास ही कर लिया है। अतएव आपको रिश्वत का छोटा भाई कहें तो अनुचित नहीं। क्योंकि जैसे रिश्वत सर्वत्र वैसे ही श्रीमान् भी सर्वत्र हैं। महाशय बूट हमारा अनुमान सत्य है कि जहाँ अँग्रेजी भाषा अथवा अँग्रेजी राज्य हैं, वहाँ सर्वत्र आपकी उपासना होती है।'[15] गोस्वामी जी के अनुसार राजा के स्थायित्व का आधार प्रजारंजन है। इसके लिए राजा या शासक को यथासंभव प्रयास करना चाहिए। निष्पक्षपातपूर्वक जीवन यात्रा के कंटकों का निवारण करके प्रजाजनों को निष्कंटक शासन देना ही उसका लक्ष्य होना चाहिए। इन दोनों का पारस्परिक समन्वय भी अतिआवश्यक है। 'जब तक राजा-प्रजा दोनों दूध-पानी की तरह मिलकर एक न हो जाएँ, राजा प्रजा को, प्रजा राजा को अपना अंग न समझें, परस्पर दोनों के विश्वास मन न हों, किसी महाराज्य का स्थायी क्या अस्थायी होना भी संकट है। राज्य शक्ति की कोई निराली शक्ति परमेश्वर ने किसी के सिर नहीं डाल दी है। जो प्रजा को प्रसन्न रखे वही राजा है। क्या हुआ, यदि राजवंश

होकर अंधे के हाथ बटेर की तरह कुछ काल प्रजा पर शासन कर ले और न्याय अन्याय की गहरी गठरी बाँध ले, परंतु अंत में वही राजा होगा, जो प्रजा का है और आप्रलय नाम रहेगा, जो प्रजा का प्राण है।'[16]

राम, कृष्ण, भोज, विक्रम और अकबर इत्यादि का उदाहरण देकर उन्होंने प्रजा में राजा के महत्त्व और सार्वकालिक स्वरूप का प्रतिपादन करने का प्रयास करते हुए रावण, कंस, औरंगजेब इत्यादि के कुशासन का संकेत तत्कालीन ब्रिटिश शासकों के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। सभ्यता, उदारता, नैयायिकता और प्रजापोषकता श्रेष्ठ शासकों के सद्गुण हैं। ब्रिटिश राजसत्ता का भारतीय जनता के प्रति अविश्वासपूर्ण दृष्टिकोण सभी राष्ट्रभक्तों के लिए कष्टकारक था। गोस्वामी जी ने इसे स्पष्ट करते हुए दृढ़ स्वर में कहा है कि 'जब तक प्रजा में गवर्नमेंट का सद्भाव नहीं, जब तक भारतीयों को पुत्र निर्विशेष समझकर गवर्नमेंट पालन नहीं करती, तब तक गवर्नमेंट के बाहरी गुणों में घोर कलंक है। क्या किसी समय सभ्य राज्य में प्रजा के सजातीय अविश्वासी समझे जाकर निकृष्ट पदों पर अधिष्ठित हैं। क्या किसी सभ्य राज्य में कोई प्रजा ऐसी निश्शस्त्र है? क्या किसी सभ्य राज्य में गवर्नमेंट की कार्यप्रणाली ऐसी गुप्त रखी जाती है? इस सबका सारार्थ यह है कि गवर्नमेंट को हमारा विश्वास नहीं, पर जब गवर्नमेंट को हमारा विश्वास नहीं तो हमको भी गवर्नमेंट का शिथिल है।'[17]

देश की उन्नति और देश हितैषी जनसमूह का विकास गोस्वामी जी की राष्ट्रीय चेतना का लक्ष्य था। वह सदैव स्वस्थमन से राष्ट्रीयता के जागरण के लिए अपनी लेखनी का सदुपयोग करते रहते थे। देशोपकारी योजनाओं की उन्नति, पुस्तकों के देशोपकारक स्वरूप की व्याख्या, देशभक्ति की प्रेरण तथा राजनैतिक प्रोत्साहन के लिए उनकी तत्परता सर्वविदित थी। ब्रिटिश सरकार की आलोचना करने और उसके विरुद्ध जनजागरण के कार्य में उन्होंने सदैव अपने लेखन-शौर्य का प्रदर्शन किया। 'प्रेस एक्ट का अचिंतित फल' में उन्होंने 'प्रेस एक्ट' का विरोध करते हुए लिखा है, 'यद्यपि सब बातें व्यर्थ वा कल्पित हैं और प्रजा बिचारी कुछ नहीं कर सकती, पर ऐसे प्रवाद का प्रचलित रहना और लोगों का एक झूठी बात में विश्वस्त होना एक सुसभ्य गवर्नमेंट के राज्य में बड़ा भारी दोष है। हमारी गवर्नमेंट इन असभ्यों के हृदय में अपना प्रताप क्यों नहीं खचित कर देती? इन लोगों को शुभचिंतकता की परासीमा दिखलाकर इनके प्रसन्न रखने की चेष्टा क्यों नहीं करती? ऐसे लोगों को विद्या के विरह से क्यों नहीं छुड़ाती? और अपने राज्य के निर्विघ्न रहने के लिए समाचार-पत्रों की क्यों नहीं उन्नति करती?'[18] देशभाषा या हिंदी की साहित्य सेवा और अनवरत प्रचार-प्रसार तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना का अभिन्न अंग बन गया था। भारतेंदु जी का 'निज भाषा उन्नति' का व्याख्यान इतना लोकव्यापी था कि उनके सभी अनुयायी तन-मन-धन से इस महान अनुष्ठान में लग गए थे। गोस्वामी जी ने सभी प्रकार के लेखकों को हिंदी में देशोपकारक रचनाएँ प्रस्तुत करने का सप्रेम आवाहन किया और देशवासियों से भी यह निवेदन किया कि वे हिंदी में लिखी गई पुस्तकों को अवश्य पढ़ें तथा हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करें। उन्होंने 'कविवचन सुधा' में 'भाषा की विरक्ति' शीर्षक लेख में स्पष्ट किया है कि 'जब तक देशी भाषा में लोगों की अनुरक्ति और उसके पढ़ने-पढ़ाने की चाह नहीं होती, भाषा की उन्नति दुस्साध्य है। हमारे यहाँ उच्चश्रेणी के लोग देशी भाषा रूपी रसालफल को छोड़कर उर्दू बिंबफल खाने में बड़ कुशल हैं। यदि हम सब देशीय

 ISSN 0975-735X

भाषा में अनुराग करें और अपनी सामर्थ्य-भर सहायता दें, तो कितनी हमारी भाषा की वृद्धि हो? कितने लोग यश के भागी बनें, इसे कोई कह नहीं सकता। अत: विवेकीजनों से प्रार्थना है कि वह देशभाषा का हित विचारकर ऐसा उपदेश करें जिससे उनकी मातृभूमि और मातृभाषा की उन्नति हो।'[19] सोलहवें हिंदी साहित्य सम्मेलन वृंदावन के स्वागताध्यक्ष के रूप में दिए गए भाषण की निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय हैं–

कवि पंडित परिजन प्रभृति, छात्र रसिक रिझबार
राजा प्रजा सप्रेम बस, करि हिंदी को प्यार।

हिंदी हिंदुस्तान की, भाषा विशद विशाल
जन्मलेत सबसों कहें, माँ! माँ! दा! दा! बाल।

घर की जै घट-घाट की, खेत प्रेत समसान
हाट-बाट दरबार की, भाषा ये ही जान।

पितु ऋण शोध सकें सहज, कठिन मातुऋण जान
ताही के उद्धार हित, यज्ञ रची सुमहान।[20]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी भारतीय राष्ट्रीय-चेतना के लोकव्यापी विकास में संलग्न जागरूक साहित्यकार थे। उनकी साहसशील लेखनी से निष्पन्न स्वाधीन चेतना पाठकों की शिराओं में प्रगति तथा उदार भावनाओं को जाग्रत करने में पूर्णतया सफल प्रतीत हुई है। डा॰ रामविलास शर्मा ने ठीक ही कहा है कि 'राधाचरण गोस्वामी का नाम उन महान साहित्यिकों में लिया जाएगा, जो साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों को प्रतिबिंबित करके ही नहीं बस सकते, वरन् साहित्य में वह प्रेरणा भर देते हैं, जो ऐसे आंदोलनों का सूत्रपात करती है और उन्हें निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक होती है।'[21]

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं॰ 2040, पृ॰ 308,
2. राधाचरण गोस्वामी, भारत पावस, भारतेंदु, 4/4, 16 जुलाई, 1886, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस, मथुरा
3. राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, संपादक कर्मेंदु शिशिर, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990, पृ॰ 215
4. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1990, पृ॰ 523
5. राधाचरण गोस्वामी, भारतेंदु, 18 जून 1886, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस, मथुरा
6. राधाचरण गोस्वामी, मित्र विलास, 24 सितंबर, 1877, संपादक कन्हैयालाल, मित्र विलास यंत्रालय, लाहौर
7. राधाचरण गोस्वामी, भारतबंधु, 13 अगस्त, 1881, संपादक बाबू तोताराम, भारत बंधु प्रेस, अलीगढ़
8. राधाचरण गोस्वामी, हिंदी प्रदीप, मार्च 1979, संपादक बालकृष्ण भट्ट, ला॰ प्रेस, बनारस
9. राधाचरण गोस्वामी, कवि वचन सुधा, 16 जुलाई 1877, संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र (पं॰ चिंतामणि), ला॰ प्रेस, बनारस

10. आधुनिक हिंदी साहित्य, डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रयाग विश्वविद्यालय हिंदी परिषद, प्रथम संस्करण, पृ॰ 93
11. राधाचरण गोस्वामी, सारसुधानिधि, भाग-2, अंक-10, 14 जून 1880, संपादक सदानंद मित्र, सरस्वती यंत्रालय, कलकत्ता, 1879-83
12. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, डॉ॰ रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ॰ 73
13. राधाचरण गोस्वामी, भारतेंदु, 18 अगस्त 1883, संपादक राधाचरण गोस्वामी, रामनारायण प्रेस, मथुरा
14. वही, 18 अगस्त 1883
15. वही, मार्च 1884
16. वही, 4/3, 18 जून 1886
17. वही, 4/3, 18 जून 1886
18. राधाचरण गोस्वामी, सारसुधानिधि, 1/5, 10 फरवरी 1879, संपादक सदानंद मित्र, सरस्वती यंत्रालय, कलकत्ता
19. राधाचरण गोस्वामी, कवि वचन सुधा, 15 अक्टूबर 1877, संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र (पं॰ चिंतामणि), ला॰ प्रेस, बनारस
20. षोडस हिंदी साहित्य सम्मेलन, वृंदावन, कार्य विवरण, प्रथम भाग कृष्णचैतन्य गोस्वामी, विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी, 1983, पृ॰ 10
21. भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1985, पृ॰ 69

द्वारा श्रीमती रजनी उपाध्याय
197/199 **डॉक्टर्स कालोनी**
मेहरा स्टेट, सिविल लाइंस
बरेली (उ॰प्र॰)
मो॰ : 09927373723

 ISSN 0975-735X

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में व्यक्त बाल-अभिरुचि

प्रो॰ शर्मिला सक्सेना
अध्यक्ष हिंदी विभाग
डी॰ई॰आई॰ दयालबाग़, आगरा

बालसाहित्य का सृजन एक चुनौती-भरा कार्य है। यह साहित्य बच्चों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बच्चे खेल-खेल में, कविताओं एवं कहानियों द्वारा अनुभव, ज्ञान व नीति की शिक्षा आसानी से सीख लेते हैं। यदि उन्हें संस्कारित करने के लिए प्रवचन दिए जाएँगे तो वे उसे सहज में ही ग्रहण नहीं करेंगे। वस्तुत: बच्चों और माता-पिता, बच्चों और शिक्षकों के बीच यदि मुक्त संवाद की स्थिति नहीं होती है तो उनके संबंध मधुर नहीं होते। बच्चे दब्बू, कुंठित और अंतर्मुखी बन जाते हैं। बच्चों को अभिव्यक्ति का अधिकार मिलना चाहिए, यह उनके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है।

बालसाहित्य की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि वह बच्चों के मन की बातों को सहज अभिव्यक्ति देता है। किसी मोटे व्यक्ति को 'मोटूराम' या बड़े पेट वाले को 'पेटूराम' कहकर हँसना उनका अधिकार है। एक बालसाहित्यकार का स्वयं का चिंतन और उनके विचारों का फैलाव इतना विस्तृत होना चाहिए कि वह न केवल अपने परिवेश, वरन् समाज के प्रत्येक पहलू से परिचित हो। उसे यह अहसास हो कि आज कौनसा पहलू किस तरह से बच्चों को प्रभावित करता है।

हिंदी साहित्य जगत के मार्तंड, मानव-मन के कुशाल चितेरे, मनोविज्ञान की गहरी पकड़ रखने वाले मुंशाी प्रेमचंद बालमनोविज्ञान के सशक्त व्याख्याता रहे हैं। प्रेमचंद ने सन् 1930 में 'हंस' पत्रिका का संपादकीय 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' शाीर्षक से लिखा था। उन्होंने लिखा, 'बालक की प्रधानत: ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सकें। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हरेक काम के गुण-दोष को भीतर से देखें।' प्रेमचंद बच्चों को परिवार में आज्ञाकारी व अनुशासित तो देखना चाहते थे, किंतु वह पसंद नहीं करते थे कि माता-पिता डिक्टेटर की तरह बच्चे का रिमोट कंट्रोल अपने हाथ में रखें। उनका मानना था कि माता-पिता के आदेशों के द्वारा संचालित बच्चों का विकास पूर्णत: सफल नहीं होता है और वे अपने जीवन में पूर्णत: सफल नहीं होते। बच्चों की वैचारिक मौलिकता का हमें सम्मान करना चाहिए और उन्हें जीवन में कुछ भी करके सीखने की छूट मिलनी चाहिए। माना जाता है कि बाल-जीवन एक ऐसी पहेली है, जहाँ बालक अपने जीवन में हँसता-रोता, खेलता-कूदता और ऊधम मचाता हुआ अपने मानस के अनसुलझे प्रश्नों को सुलझाने की चेष्टा करता है। बालमनोविज्ञान पर अभिकेंद्रित प्रेमचंद की कहानियों में बालमन की सशक्त मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति विद्यमान है।

'बूढ़ी काकी', 'ईदगाह', 'गुल्ली-डंडा', 'दो भाई', 'कुत्ते की कहानी' प्रमुख रूप से बालमन की अच्छी मीमांसा प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों को पढ़कर बच्चों की कई पीढ़ियाँ बड़ी हुई हैं और वे आज भी लोगों की स्मृतियों में बनी हुई हैं। वास्तव में ये कहानियाँ भारतीय बालसाहित्य की कालजयी रचनाएँ बन गई हैं जो कि बड़ी आयुवर्ग पाठकों के लिए लिखी गई थीं, पर आज विश्व बालसाहित्य की क्लासिक रचनाएँ हैं। प्रेमचंद की एक पुस्तक 'जंगल की कहानियाँ' में वे कहानियाँ हैं, जो उन्होंने विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखी थीं। 'दो बैलों की कथा' और 'कुत्ते की कहानी' में आपने पशुओं को वाणी देकर, उन्हें मानवीय पात्र के रूप में प्रस्तुत करके बाल-पाठकों के मन में प्राणी-जगत के प्रति संवेदना व सहानुभूति जगाने का प्रयास किया है। प्रेमचंद ने बाल-पात्रों के पशु-प्रेम का वर्णन करके बालहृदय की प्रेम-प्रवृत्ति का उदात्तीकरण कर दिया है। दो बैलों की कथा में बालहृदय में उमड़ने वाले पशु-प्रेम को देखिये–'घर और गाँव के लड़के जमा हो गए और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्त्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु-वीरों (बैलों) को अभिनंदन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड, कोई चोकर, कोई भूसी। एक बालक ने कहा–ऐसे बैल किसी के पास न होंगे। दूसरे ने समर्थन किया–इतनी दूर से दोनों अकेले चले आए। तीसरा बोला–बैल नहीं हैं, उस जनम के आदमी हैं। इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।'[1]

यह संपूर्ण प्रसंग बाल-हृदय में उमड़ने वाले पशु-प्रेम का परिचायक है। झूरी का साला आकर जब पुनः हीरा और मोती को गाड़ी में जोतकर अपने गाँव ले आता है और उन्हें कल की शरारत (भाग जाने) का मजा चखाने के लिए मोटी रस्सियों में बाँधकर, खाने के लिए सूखा भूसा डालता है, तब भैरों की कन्या हीरा-मोती को घर से लाकर दो रोटियाँ खिलाती है। यह रोटियाँ मात्र रोटियाँ नहीं हैं, बल्कि बाल-मन की आत्मीयता है। आत्मीयता की पराकाष्ठा तो तब दिखाई देती है, जब वह चुपके से बैलों को खोलकर भगा देती है, क्योंकि उन्हें नाथा जाने वाला है। वह बैलों को खोलते हुए कहती है–'चुपके से भाग जाओ, नहीं तो यहाँ लोग मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नथ डाल दी जाए।...उसने गराँव खोल दिया...सहसा वह चिल्लाई दोनों फूफा वाले बैल भागे जा रहे हैं। जल्दी।'[2]

बालक पशु-पक्षियों के साथ बड़ी जल्दी मित्रता कर लेते हैं। लखनऊ में एक सरकस कंपनी आई थी। उसके पास शोर, चीता, भालू और कई तरह के जानवर थे। इनके सिवा एक बंदर मिट्ठू भी था। गोपाल की उस बंदर से मित्रता हो जाती है–'उन्हीं लड़कों में गोपाल भी था। वह रोज आता और मिट्ठू के पास घंटों चुपचाप बैठा रहता। उसे शेर, भालू, चीते आदि से कोई प्रेम न था। वह मिट्ठू के लिए घर से चने, मटर, केले लाता और खिलाता। मिट्ठू भी उससे इतना हिल गया था कि बगैर उसके खिलाए कुछ न खाता। इस तरह दोनों में बड़ी दोस्ती हो गयी।'[3] गोपाल अठन्नी में मिट्ठू को खरीदकर अपने पास पास रखना चाहता है, 'अम्मा मुझे एक अठन्नी दो, मैं जाकर मिट्ठू को खरीद लाऊँ। वह न जाने कहाँ चला जाएगा। फिर मैं उसे कैसे देखूँगा? वह भी मुझे न देखेगा तो रोएगा।'[4]

बच्चे घर के पालतू पशु-पक्षियों को छूकर, खिलाकर बहुत ही आनंदित होते हैं। प्रेमचंद की कहानी 'कजाकी' में इसी बाल-मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है। 'कजाकी' डाकखाने में

चपरासी की नौकरी करता है। एक दिन वह थैले में रखकर हिरन का बच्चा ले आता है, जिसे वह अपने अधिकारी के बच्चों को दिखाता है, 'मैंने उसे दौड़कर कजाकी की गोद से ले लिया। वह हिरन का बच्चा था। आह मेरी उस खुशी का कौन अनुमान करेगा? तबसे कठिन परीक्षाएँ पास कीं, अच्छा पद भी पाया, रायबहादुर भी हुआ, पर वह खुशी फिर न हासिल हुई। मैं उसे गोद में लिए, उसके कोमल स्पर्श का आनंद उठाता घर की ओर दौड़ा।'[5] बाद में उस हिरन के बच्चे का नाम मुन्नू रखा गया और यह हिरन शावक बालक के जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गया।

कहा जा सकता है कि बालकों का हृदय बहुत ही कोमल होता है। उनके पास अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं होते। उन्हें यह भी पता नहीं होता कि कौन-कौन सी बातें उन्हें विकल कर रही हैं, कौनसा काँटा उनके में खटक रहा है और क्यों उन्हें बार-बार रोना आ रहा है। इसके साथ ही बाल-मन बड़ा हठी होता है, यदि एक बार वह कुछ करने की ठान लेता है तो करके ही मानता है। उसे असंभव शब्द का अर्थ ही नहीं पता होता। वह हर असंभव को संभव बनाने की चेष्टा करता है। 'पिसनहारी का कुआँ' कहानी में प्रेमचंद ने बालकों के रचनागत आनंद को उकेरा है–'बालिका पड़ोसियों की दया-भिक्षा से पलकर एक दिन घास खोदती हुई उस स्थान पर पहुँची, जहाँ बुढ़िया गोमती का घर था। छप्पर कब के पंचभूतों में मिल चुके थे। केवल जहाँ-तहाँ दीवारों के चिह्न बाकी थे। कहीं-कहीं आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं। बालिका ने न जाने क्या सोचकर खुरपी से गड्ढ़ा खोदना शुरू किया। दोपहर से साँझ तक वह गड्ढा खोदती रही। न खाने की सुध थी, न पीने की। न कोई शंका थी, न भय। अँधेरा हो गया, पर वह ज्यों की ज्यों बैठी गड्ढा खोद रही थी।...दूसरे दिन...वह अकेली न थी। उसके साथ दो बालक और थे, तीनों वहाँ चाँद साँझ तक 'कुआँ-कुआँ' खेलते रहे। बालिका गड्ढे के अंदर खोदती थी और दोनों बालक मिट्टी निकालकर फेंकते थे।

तीसरे दिन दो लड़के और भी उस खेल में मिल गए। शम तक खेल होता रहा। आज गड्ढा दो हाथ गहरा हो गया था। गाँव के बालक-बालिकाओं में इस विलक्षण खेल ने अभूतपूर्व उत्साह भर दिया था। चौथे दिन और भी कई बालक आ मिले। गड्ढा अब चार हाथ गहरा हो गया था... गाँव के लोग प्राय: श्रद्धालु होते ही हैं, बालिका के इस अलौकिक अनुराग ने आखिर उनमें भी अनुराग उत्पन्न किया। कुआँ खुदने लगा।

इधर कुआँ खुद रहा था, उधर बालिका मिट्टी की ईंटें बनाती थी। इस खेल में सारे गाँव के लड़के शरीक होते थे। उजाली रातों में जब सब लोग सो जाते, तब भी वह ईंटें थापती दिखाई देती। न जाने इतनी लगन उसमें कहाँ से आ गई। सात वर्ष की उम्र कोई उम्र होती है?...'आखिर एक दिन वह भी आ गया, जब कुआँ बँध गया और उसकी पक्की जगत तैयार हो गई। उस दिन बालिका उसी जगत पर सोई। आज उसके हर्ष की सीमा न थी। गाती थी, चहकती थी।'[5] वास्तव में यह असंभव कृत्य संपन्न कर बालिका को जो खुशी प्राप्त हुई, वह वर्णनातीत है।

बालक छोटे होने पर भी त्याग, सद्भाव और विवेक की जीती-जागती मिसाल होते हैं। वह 'आत्माभिमानी' होते हैं। वह अपने प्रिय की खुशी के लिए बड़े से बड़े लालच को सहज में ही त्याग देते हैं। 'ईदगाह' कहानी का हामिद इसकी जीती-जागती मिसाल है। वह अपने साथियों के साथ ईद के मेले में जाता है। वहाँ सभी बालक खिलौने व मिठाइयाँ खरीदते हैं, पर हामिद अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदता है–'हामिद बिरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों

नहीं कुछ लेकर खाता है? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।'[6] वह सोचता है, 'दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती है, तो हाथ जल जाता है, अगर वह चिमटा लेकर दादी को दे दे, तो कितनी प्रसन्न होंगी। फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। खिलौने से क्या फायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा ही तो खुशी होती है...'अम्मा चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी। और कहेंगी...मेरा बच्चा अम्मा के लिए चिमटा लाया है। हजारों दुआएँ देगीं।...बड़ों की दुआएँ सीधी अल्लाह के पास पहुँचती हैं और तुरंत सुनी जाती हैं।'[7] दादी के लिए एक कमउम्र बालक का त्याग श्लाघनीय है। तीन पैसों में ही उसे सब-कुछ करना था, और इस पैसे का इससे अधिक सदुपयोग तो कुछ हो ही नहीं सकता था। उसका चिमटा रुस्तमेहिंद और खिलौनों का बादशाह बन गया।

बालमन उत्सवप्रिय होता है। उन्हें खेल, तमाशों, मेलों, त्योहारों में विशोष रुचि होती है। महीनों पहले से वे इन दिनों का इंतजार करते हैं। प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी भी इसी प्रकार की है। रमजान के तीस रोजों के बाद ईद का इंतजार बच्चे-बूढ़ों सभी को रहता है। बाल-उल्लास व उत्सुकता देखने योग्य है-'नमाज़ खत्म हो गई। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। बालकों का यह दल कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन, नूरे तथा सिम्मी इन घोड़ों, ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है-'सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दुकानों की कतारें लगर हुई हैं। तरह-तरह के खिलौने हैं-सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, मिस्त्री और धोबिन और साधू। वाह! कितने सुंदर खिलौने हैं। अब बोलना ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वरदी और लाल पगड़ी वाला, कंधे पर बंदूक रखे हुए है।'[8] मेले का जीवंत चित्रण और खिलौनों का प्रति बालरुचि द्रष्टव्य है।

खेलों के प्रति भी बाल-आकर्षण कम नहीं होता बालक और खेल एक-दूसरे के साथी होते हैं। बालकों को खेलने के लिए महँगे खिलौनों की आवश्यकता नहीं। वह तो पेड़ से टहनी काटकर गुल्ली-डंडा बना लेते हैं और खेल का आनंद लेने लगते हैं। गुल्ली-डंडा कहानी में प्रेमचंद लिखते हैं-'हमारे अँग्रेजीदाँ दोस्त मानें या न मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। अब भी कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूँ तो जी लोट-पोट हो जाता है कि उनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लॉन की जरूरत है, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गए तो खेल शुरू हो गया।'[9] उनका एक बालमित्र इस खेल में इतना निपुण था कि हर बच्चा उसे अपनी टोली में लेना चाहता था। वह जिस ओर चला जाता, उस टोली की जीत सुनिश्चित थी, 'मेरे हमजोलियों में एक लड़का 'गया' नाम का था। मुझसे दो-तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लंबा, बंदरों की सी लंबी-लंबी पतली-पतली उँगलियाँ, बंदरों की सी ही चपलता, झल्लाहट गुल्ली कैसी भी हो, उन पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है।...जिसकी तरफ वह आ जाए, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयाँ बना लेते थे।'[10]

बालकों का मन केवल खेलने-कूदने में ही नहीं लगता, बल्कि गा-बजाकर भी आनंद

 ISSN 0975-735X

प्राप्त करता है। कभी-कभी का गाना-बजाना कब बालक को संगीताचार्य बना देता है, उसे भान ही नहीं होता। 'सौभाग्य के कीड़े' कहानी का पात्र नथुना इसी प्रकार का पात्र है, जो अनाथ होने पर भी अपनी सांगीतिक रुचि के कारण सम्मान पाता और बड़ा होने पर संगीताचार्य बन जाता है–'शाम हो गई थी, कई भंगी पेड़ के नीचे चटाइयों पर बैठे शहनाई और तबला बजा रहे थे।... नथुवा वहाँ जाकर खड़ा हो गया।...नथुवा मामूली बाजार के लड़कों की तरह कुछ-न-कुछ गाता था।...तुरंत गाने लगा। उस्ताद ने सुना। जौहरी था, समझ गया यह काँच का टुकड़ा नहीं है।...तीन साल उड़ गए, नथुवा के गाने की सारे शहर में धूम मच गई और वह केवल एक गुणी नहीं, सर्वगुणी था, गाना, शहनाई बजाना, पखावज, सारंगी, तंबूरा सितार–सभी कलाओं में दक्ष हो गया। उस्तादों को भी उसकी चामत्कारिक बुद्धि पर आश्चर्य होता था।'[11]

वास्तव में बालकों के मनोविज्ञान के क्रम में बालरुचियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बच्चों की रुचियाँ ही आगे चलकर जीवन-विकास के क्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रेमचंद की कहानियों में बाल-जीवन के प्रसंग उनकी रचनाधर्मिता को एक विशिष्ट धरातल पर स्थापित करते हैं। इसीलिए प्रेमचंद कलम के जादूगर, गरीबों के मसीहा और बालमनोविज्ञान के गहरे पारखी कहे जाते है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद रचनावली खंड चौदह, सं॰ जाहिर हुसैन, दो बैलों की कथा, पृ॰ 530
2. प्रेमचंद रचनावली खंड चौदह, सं॰ जाहिर हुसैन, दो बैलों की कथा, पृ॰ 532
3. संपादक हरिकृष्ण देवसरे, प्रेमचंद की तेरह बाल कहानियाँ, मिट्ठू, ऑनलाइन प्राप्त
4. संपादक हरिकृष्ण देवसरे, प्रेमचंद की तेरह बाल कहानियाँ, मिट्ठू, ऑनलाइन प्राप्त
5. प्रेमचंद, सुभागी-किशोर साहित्यमाला-7, पृ॰ 8
6. प्रेमचंद, पिसनहारी का कुँआ, पृ॰ 208
7. प्रेमचंद, ईदगाह, पृ॰ 209
8. प्रेमचंद, ईदगाह, पृ॰ 209
9. प्रेमचंद, किशोर साहित्य माला, भाग-1, गुल्ली-डंडा, पृ॰ 42
10. प्रेमचंद, किशोर साहित्य माला, भाग-1, गुल्ली-डंडा, पृ॰ 44
11. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग 3, सौभाग्य के कीड़े, पृ॰ 214-215

I-14, **स्वास्तिक विला, इंद्रपुरी**
न्यू आगरा, आगरा
मो॰ 9410005843

उषा प्रियंवदा के कथासाहित्य में परिवर्तित सामाजिक मूल्य

श्रीमती रीनाकुमारी
संस्कृत प्रवक्ता राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय
शहबाजपुर पैंदयावास, रेवाड़ी (हरियाणा)

परिवर्तन सृष्टि का नियम है, इसी आधार पर संपूर्ण जगत चलायमान है। जगत के क्रयाकलाप चलते रहते हैं, परिवर्तित होते रहते हैं। समाज+इक् से सामाजिक शब्द निष्पन्न होता है। जो समाज से जुड़ा हुआ है। समाज की युगीन परिस्थितियों और परिवेश में जब भी बदलाव आता है, तब समाज के निर्धारित मूल्य पुराने लगने लगते हैं तो व्यक्ति के विकास और जीवन-यापन में अवरोधक बनने लगते हैं। ऐसी स्थिति में समाज के मूल्यों में एक अंत:संघर्ष और तनाव की स्थिति बनने लगती है। प्रत्येक साहित्य एक दर्पन की तरह उन परिस्थितियों को, उन समस्याओं को, उन दृष्टिकोणों को पृष्ठ पर उतारता है। 'साहित्य समाज का दर्पण है।' यह उक्ति पूर्णतया सत्य है। किसी काल का साहित्य उसके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी मूल्यों को अपने अंदर उतारकर एक आइने की तरह कार्य करता है।

नई कहानी आंदोलन के दौरान सामाजिक मूल्यों की जड़ता, रूढ़ता, नैतिकता, असमानता आदि के विरुद्ध महिला-लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से आवाज बुलंद करने की चेष्टा की, लेकिन उस आवाज में पुरातन अतीत और सहज दुर्बलता से मुक्ति की प्रक्रिया आरंभ हुई, लेकिन उषा जी ने दुर्बलता में रूढ़ियों, आडंबरों में पिसती दुर्बल नारी को पीड़ा से मुक्त करने का आह्वान किया है। इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में नारी को दुर्बल चित्रित नहीं किया, अपितु ऐसी नारी को चित्रित किया है, जो रूढ़ियों, संस्कारों, जड़ मूल्यों को धीरे-धीरे काटती-छाँटती है और अपने अनुसार जीवन जीने के लिए प्रयासरत है।

नारी का वैयक्तिक अस्तित्व और अस्मिता हेतु संघर्ष

उषा प्रियंवदा का कथासाहित्य मुख्य रूप से नारी को केंद्र में रखकर लिखा गया है। उनका प्रत्येक नारी-पात्र अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्षरत है। 'रुकोगी नहीं राधिका' में जब राधिका डैन के साथ अमरीका जाने का निर्णय लेती है, तब उसके पिता के मन में शंका उत्पन्न होती है, वह यह नहीं चाहते कि उसकी पुत्री किसी अंजान पुरुष के संरक्षण में विदेश जाए। उसके पिता के मन में शांका इसलिए उठी, क्योंकि वह एक भारतीय समाज का नागरिक है। जहाँ पर समाज की रिश्तेदारों के प्रश्नों की परवाह बहुत अधिक की जाती है। क्योंकि भारतीय समाज में ऐसे कार्य अनुचित माने जाते हैं। परंतु राधिका इन सब बातों की परवाह नहीं करती और अपने पिता से कहती है-'तभी तो हमारे यहाँ कितनी लड़कियों का चरित्र पूर्णत: विकसित हो पाता है? माता-पिता अपने ही विचारों को उन पर थोपते हैं।'[1]

 ISSN 0975-735X

राधिका की सोच के अनुसार लड़की के भविष्य का हर निर्णय अभिभावक ही क्यों लेते हैं! वह स्वतंत्र क्यों नहीं है अपने निर्णय लेने के लिए। 'जो आप चाहते हैं वही हमेश क्यों है? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं हैं? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी।'[2]

ये पंक्तियाँ राधिका की खुली सोच को दर्शाती हैं। इसी प्रकार 'शेष यात्रा' की दिव्या अपनी सहेली अनु को प्रणव के विश्वासघात के बाद उसे आत्मनिर्भर बनकर अपने अंदर छिपे व्यक्तित्व को प्रमाणित करने का परामर्श देती है। प्रणव की यादव में जूतियाँ सहकर भी उनकी प्रतीक्षा करते रहने को मूर्खता कहती है–'सुनो अनु, तुम कब तक अपने सारे अस्तित्व को प्रणव नाम की खूँटी पर टाँगे रहोगी। उस शख्स ने तो तुम्हारी खबर भी नहीं ली कि कहाँ हो, कैसे हो? खूबसूरत बच्ची! तू क्यों अपने को मिट्टी में मिला रही हो। अगर उस शख्स ने तेरी कदर नहीं की तो रोने बिसूरने की बजाय उसे ज़िंदगी से जाने दे। बॉय-बॉय प्रणवकुमार।'[3]

इसी तरह अन्य पात्र दिव्या, जाले कहानी की कौमुदी सभी इन अपने अस्तित्व को बचाने के लिए, उसको उभारने के लिए समाज में अपनी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई दे रही हैं।

समान अधिकारों की माँग : पुरुष-वर्चस्व को चुनौती

नारी अब बदलते मापदंडों में पुरुष-वर्चस्व के एकाधिकार के विरुद्ध सजग हुई है। वह समानता का अधिकार माँग रही है। वह आत्मसमर्पित न होकर अपने अधिकार के लिए उषा जी के कथासाहित्य में लड़ती हुई दिखाई देती है। 'नारी पुरुषों के पैर की जूती नहीं है, वह केवल चार दीवारी में कैद नहीं है।' जैसे (शेषयात्रा) में दिव्या अपने पति जयंत को बहुत चाहती है, एकनिष्ठ है और जयंत के साथ भी यही एकनिष्ठता है। लेकिन जयंत किसी और लड़की के लिए उसे छोड़ जाता है तो दिव्या जैसी लड़की उसे बर्दाश्त नहीं करेगी। ऐसा करने से उसके स्वाभिमान को चोट लगेगी। दिव्या के मन में जो प्रश्नोत्तर होते हैं वे इस प्रकार हैं–'मेरा अहम् चूर-चूर हो जाएगा, मुझे लगने लगेगा कि मैं जैसे कुछ भी नहीं थी, जैसे मैं मुहावरे वाली पैर की जूती थी, इसलिए अपने को बचाने के लिए मुझे वहीं सब करना पड़ेगा। चाहे मुझे अंदर से कितना दुख पहुँचे, मैं कहूँगी, जाओ जयंत, इफ आम नॉट गुड एनफ फॉर यू, यू आर नॉट एनफ फॉर मी।'[4] संबंधों का ख्याल रखना नारी का ही नहीं, अपितु पुरुष का भी कर्तव्य है। ये केवल नारी से ही अपेक्षा नहीं रखी जा सकती कि वह सदैव उस डोर से जुड़ी रहे, जो डोर किसी अन्य से जुड़ रही है।

'आधा शहर' की इला एक पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देती हुई कहती है–'एक पुरुष पचास स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है। उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता है? एक स्त्री अगर अकेली सम्मान से जीना चाहती है तो उसके चारों तरफ गिद्ध नोंच खाने को तैयार हैं।'[5] इसी प्रकार राधिका पिता से तुलना करती है कि यदि पिता अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है तो वह क्यों नहीं?

इस प्रकार उषा जी का कथासाहित्य नारी की स्वतंत्रता को समानता के लिए पुरुषवर्ग को चुनौती देता है। इसके लिए वह पुरुषवर्ग के अहम् को चुनौती दे रही है और अपनी अस्मिता प्रमाणित कर रही है।

नैतिकता के दोहरे मापदंडों का विरोध

उषा जी ने अपने कथासाहित्य के माध्यम से नारी-पात्रों के द्वारा पुराने नैतिक बोध का विरोध किया है। प्रेम, यौन, विदेश-प्रवास आदि संदर्भों में नारी पर अनैतिक होने का आरोप लगा देना आम बात है, लेकिन इन्हीं बातों को लेकर पुरुषवर्ग पर कभी कोई आरोप नहीं लगता। उसके चरित्र में कभी कोई कमी नहीं आती। उषा जी के नारी-चरित्र इन दोहरे मापदंडों का विरोध करते हैं।

'आधा शहर' की इला जिस लड़के पर भरोसा करके घर से निकल आई थी, वह लड़का माँ-बॉप के डर से वापस चला जाता है। उस लड़के को कोई चरित्रहीन नहीं कहता है। समाज का सर्वाधिक शिक्षित वर्ग से संबंध प्रो॰ अमृत इला के विषय में डॉ॰ राघव को सावधान करता है–'तुम फँसने वाले जीव नहीं हो, फिर भी दूर रहना ही ठीक है।'[6]

इला जब अभय के साथ विवाह करती है तो अमृत टिप्पणी करता–'बेचारे अभय के साथ बड़ी ट्रेजडी हो गई।'

'क्यों?' हम सबने चौंककर पूछा–'क्या हुआ?'

'गधा है। एक बड़ी ही चालू लड़की ने उसे फाँस लिया। बिना हमारी राय लिए उसने शदी कर डाली'[7]

इला को 'चालू लड़की' का दर्जा देना और अभय को गधा कहकर निर्दोष करार देना।

किसी युवा अकेली लड़की से किसी पुरुष का मिलने जाना भी लड़की के चरित्र को ही संदेहास्पद बना देता है, लेकिन पुरुष अप्रभावित ही रहता है। अक्षय जब राधिका से मिलने जाता है तो मकान-मालकिन प्रेमा कहती है–'अच्छा तो अब चोरी-चोरी ऊपर जाने लगे।' अक्षय राधिका को अपनी भुजाओं में घेर लेने को उन्मत्त है। राधिका अगर भावावेग में उसे देह समर्पित कर दे तो वह इंकार करने के लिए नहीं सोचता, लेकिन पत्नी के रूप में उसे राधिका स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वह उच्छिष्ट है, अक्षय किसी भी समय उच्छिष्ट नहीं समझता। पुरुष गंदी नाली में गिरकर भी पवित्र रहता है और नारी अपवित्र, ऐसे नैतिक मानदंडों की तीखी भर्त्सना की है।

सामाजिक मूल्यों के संबंधित विसंगतियाँ

सामाजिक मूल्यों और उससे बँधे रहने के कारण व्यक्ति संकट से घिर जाता है। इस संकट से निपटने में पुरुषसत्तात्मक समाज के कारण पुरुषों को खास संघर्ष नहीं करना पड़ता, लेकिन नारी की स्थिति सर्वथा त्रासदीपूर्ण हो जाती है। इन विसंगतियों की पहचान उषा जी ने की और अपने साहित्य में चित्रित किया। जहाँ सामाजिक मूल्यों के टूटने पर समाज सर्वथा मौन रहता है, पुरुष मनमाने व्यवहार पर उतर जाता है और नारी अकेली उपेक्षित होकर उस पीड़ा से मुक्ति का कोई मार्ग नहीं देखती, उसके जीवन के सम्मुख अँधेरा और अज्ञात दूरी की सुरंग आ जाती है।

विवाह को सात जन्मों और सात फेरों का पवित्र बंधन माना है। अनु की शादी प्रणव से परिवार की रजामंदी से होती है। जब रिश्ते में कड़वाहट आती है तो रिश्तेदार कहीं नजर नहीं आते। सब-कुछ अनु को सहना पड़ता है। ऐसी बहुत सी लड़कियाँ हैं, जो प्रवासी हो जाती हैं और रिश्तेदार निश्चिंत रहते हैं।

'शेषयात्रा' की अनु हो या 'मछलियाँ' की विजी, दोनों के साथ समान परिस्थितियाँ हैं।

 ISSN 0975-735X

विजी, मनीष और नटराजन के बीच झूलती रह जाती है। ऐसी प्रवासी लड़कियों के लिए भारत वापस आने पर कोई भविष्य नजर नहीं आता।

भारतीय और पाश्चात्य मूल्यों के संक्रमण में जो स्थिति बनती है, उससे अंततः नारी के ही शहीद होने की संभावना रहती है। राधिका ऐसे पुरुष का वरण करने के पक्ष में है, जो उसे हेय न समझे। 'मेरे जीवन में प्ले-ब्वॉय के लिए कोई स्थान नहीं है। मैं संगी चाहती हूँ, जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो, जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले'[8] लेकिन राधिका को पता था मनीष प्ले-ब्वॉय है, वह उससे शादी नहीं करेगा। इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता के बीच मूल्य संक्रमित होते रहते हैं। यह एकनिष्ठ प्रतिबद्धता वाला देश है, जहाँ व्यक्ति जाति-धर्म के बाहर के व्यक्ति से विवाह करने का प्रचलन नहीं है। 'पचपन खंबे लाल दीवारें' की अम्मा अपनी बेटी का विवाह दूसरी बिरादरी में इसलिए नहीं करना चाहती, क्योंकि उसे वह बिरादरी अपनी बिरादरी से नीचे ओहदे की दिखाई देती है। वह कहती है–'डिप्टी क्लैक्टर क्या, वह कमिश्नर भी हो जाए, मैं उससे शादी करूँगी अपनी बेटी की? वाह! क्या बिरादरी में लड़कों की कमी है, जो उस कंगले से बेटी ब्याहूँ?'[9]

निष्कर्ष

उषा प्रियवंदा के कथासाहित्य में सामाजिक मूल्यों में आए परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है और जड़ जमाए संस्कारों, प्रचलनों और परंपराओं को भी उजागर किया गया है। उन्होंने नारी के उपेक्षित रहने के कारणों को भी रेखांकित किया है। साथ ही अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता, अधिकारों के लिए संघर्ष करती नारी के जीवन को भी आलोकित किया है। सदियों से दलित-उपेक्षित नारी के पास भी पुरुषों की तरह मेघ, क्षमता की कमी नहीं है, अवसर की कमी है और इसके लिए नारी को यह संदेश दिया है कि नारी को स्थितियों से उबरने के लिए मुक्ति के लिए स्वतः प्रयास करने की जरूरत है।

संदर्भ

1. रुकोगी नहीं राधिका, पृ॰ 53
2. वही, पृ॰ 43
3. शेष यात्रा, पृ॰ 72-72
4. शेष यात्रा, पृ॰ 73
5. शून्य तथा अन्य रचनाएँ, पृ॰ 52
6. वही (आधा शहर), पृ॰ 78
7. वही, पृ॰ 76
8. रुकोगी नहीं राधिका, पृ॰
9. पचपन खंबे लाल दीवारें, पृ॰ 71

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के व्यंग्य नाटकों में सामाजिक सरोकार

डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
मद्रास क्रिस्चियन कॉलेज, तांबरम, चेन्नै

आधुनिक हिंदी साहित्य में जिन साहित्य-साधकों ने अपना अमूल्य योगदान दिया है, उनमें डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साहित्य-सृजेता डॉ॰ अग्रवाल बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न रचनाकार हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ॰ अग्रवाल ने साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। इनमें ग़ज़लें, कविताएँ, गीत, मुक्तक, रुबाईयाँ, दोहे, हास्य-व्यंग्य, कहानी, नाटक, हास्य नाटक, बाल-नाटक, सामाजिक एकांकी, ललित निबंध, आलोचना, समीक्षा, जीवनी, बालसाहित्य सभी-कुछ हैं। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का साहित्यिक रुझान बाल्यकाल से ही रहा। अल्पायु से ही चला लेखनी का यह क्रम आज भी जारी है। गीत और कविताओं से आरंभ करके साहित्य की विविध विधाओं में साहित्य-सृजन उनकी लेखन-क्षमता का पुष्ट प्रमाण है। उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट पक्ष कोशकार एवं संपादक का भी रहा है, जिसके कारण वे हिंदी-जगत में विशेष रूप से याद किए जाते रहेंगे।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के नाट्यसाहित्य का विश्लेषण

साहित्य का लक्ष्य मानव-जीवन का चित्रण करना है। मनुष्य का जीवन ही वह धरातल है, जिस पर साहित्य का भवन खड़ा किया जाता है। मानव-जीवन के चित्रण को यदि साहित्य से अलग कर दिया जाए तो साहित्य के पास कुछ भी नहीं बचता है। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में साधिकार लेखन करने वाले डॉ॰ अग्रवाल का नाट्यसाहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल द्वारा संपादित 'गिरिराजशरण अग्रवाल ग्रंथावली' कुल ग्यारह भागों (खंडों) में प्रकाशित हुई है। हरेक खंड में उनकी अलग-अलग विधाओं की सामग्री है। जैसे एक खंड में उनकी ग़ज़लें तो एक खंड में उनकी कहानियाँ आदि। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की इस साहित्यिक रचनावली में अपने समय का सच, अपने युग की वास्तविकता और घोर अमानवीय स्थितियों में जीने की जिजीविषा का अद्‌भुत तथा अनुपम संयोग है।

साहित्य की अन्य विधाओं में लोकप्रियता पाने के साथ-साथ अग्रवाल ने नाटकों में भी अपनी श्रेष्ठता साबित की है। नाटककार को अपने सारे पात्रों सहित दर्शकों से हर क्षण रू-ब-रू

 ISSN 0975-735X

होने की मजबूरी सामने रहती है। डॉ॰ अग्रवाल ने इन नाटकों में उन कर्त्तव्यों का निर्वाह किया है, जो नाटककार की हैसियत से एक लेखक पर लागू होते हैं।

डॉ॰ अग्रवाल प्रारंभ से ही नाटक लिखते रहे हैं, इसी का प्रमाण है 'डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ग्रंथावली खंड छह, 'नाटक समग्र' भाग एक (बाल नाटक) और 'डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ग्रंथावली खंड सात, 'नाटक समग्र' भाग दो (सामाजिक नाटक, हास्य नाटक और नुक्कड़ नाटक)।

खंड छह में डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा लिखित बाल नाटक हैं, जो रोचक हैं, मनोरंजक हैं और बच्चों के मनोविज्ञान, रुचि तथा आयुवर्ग के लिहाज से शिक्षाप्रद भी हैं। इन नाटकों का बच्चों द्वारा मंचन भी किया जा सकता है। 'गिरिराजशरण अग्रवाल ग्रंथावली' खंड सात (नाटक समग्र भाग-दो) में कुल 496 पृष्ठ हैं, जिसमें 36 नाटकों को संकलित किया गया है। इस संकलन में संकलित नाटक एवं उसका संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है–

'देवदासी' नाटक' में दक्षिण भारत की देवदासी कुप्रथा को प्रस्तुत किया गया है। 'मैं अपराधी नहीं हूँ' बीमारी से जूझ रहे व्यक्तियों को दया-मृत्यु प्रदान करने की वकालत करता है। 'अंतिम निर्णय', ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रचा गया नाटक है, जिसमें बलात् धर्म-परिवर्तन, युद्ध-विभीषिका एवं आतंक का चित्रण किया गया है। 'गांधारी' नाटक में यह बताने का प्रयास हुआ है कि मनुष्य जितना अपने-आपसे प्रेम करता है उतना प्रेम किसी ओर से नहीं करता। 'नीली आँखें' में ऐतिहासिक घटना-क्रम, 'दर्पण आवाजों का' में राजनीतिक भ्रष्टाचार, 'पेशकार सा'ब' में प्रशासनिक भ्रष्टाचार यानी भ्रष्ट कार्यालयीन व्यवस्था पर व्यंग्य है, 'परंपराएँ टूटती हैं' में पुरातन परंपरा से विमुख नयी पीढ़ी की मानसिकता को उजागर किया गया है। 'भ्रष्टाचार समर्थक मोर्चा' में भ्रष्ट व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। 'चौदह दिन की हवालात' में बताया गया है कि रोजगार के नाम पर बैंकों से ऋण लेना आसान है, मगर उसे चुकाना बहुत मुश्किल है। यह नाटक घटना-प्रधान है। 'खुशामद से खुदा राजी' व्यंग्य-प्रधान नाटक है, जिसमें विभिन्न पात्रों के जरिए यह प्रदर्शित किया गया है कि चापलूसी, तारीफ और वाहवाही करने से सब प्रसन्न रहते हैं। व्यंग्य के माध्यम से नाटक में यह चित्रित किया गया है कि जो खुशामद करेगा, वह मजे करेगा। यदि कोई सत्य वचन कहता है या अपनी बात खरी-खरी भाषा में कहने में विश्वास रखता है तो वह दुनिया में सफल नहीं हो सकता। 'बीस बीघा जमीन' में नयी पीढ़ी के द्वारा गाँवों की जमीन बेचकर शहरों की ओर भागने का सजीव वर्णन है। 'सरकार का निजीकरण' एक राजनीतिक नाटक है, जिसमें व्यंग्य के माध्यम से पात्र सरकार के निजीकरण के प्रस्ताव पर प्रधानमंत्री से बात करने पहुँचते हैं। 'यह दुनिया और दिखावा' में पारिवारिक रिश्तों की पड़ताल की गई है तथा यह प्रमाणित किया गया है कि रिश्ते आज दुनिया की जरूरत नहीं हैं बल्कि जरूरत के रिश्ते हैं। 'ये सपनों के मारे लोग' शीर्षक नाटक में लेखक ने मदारी और जमूरे के माध्यम से अनेक सामाजिक विसंगतियों पर करारा व्यंग्य किया है और उन समस्याओं को उठाया है, जो जनजीवन से गहराई से जुड़ी हुई हैं। 'रेलवे प्लेटफार्म' में पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार, 'धंधेबाज' में संगठन के नाम पर धोखाधड़ी, 'संसद इक्कीसवीं सदी में' राजनीति और राजनेताओं के चरित्र पर बहुत गहरे व्यंग्य देखने को मिलते हैं। 'घोटाला इतिहास' में स्वतंत्रता के पश्चात हुए विभिन्न घोटालों को प्रस्तुत किया गया है। 'छुट्टा नहीं है' नाटक में हास्य-व्यंग्य के विविध रूप पाए जाते हैं।

इसमें यह बताने की कोशिश की गई है कि आज पैसों का मूल्य गिर गया है और छोटी जाति के सिक्कों का नितांत अभाव पड़ गया है। 'प्रतीक्षा रोग' में ग्रामीण एवं शहरी जीवन की तुलना की गई है। 'कुत्ता नर्सिंग सेंटर' में यह व्यंग्य हुआ है कि लोग अनाथों के लिए या उनकी संस्था के लिए कुछ भी दान नहीं देते, पर अपने कुत्तों के लिए काफी खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। 'रसोईबंद हड़ताल' में पारिवारिक हास्य द्वारा व्यंग्य की पुष्टि हुई है। 'एक आंदोलन ऐसा भी' नाटक में यह समझाने का प्रयास हुआ है कि आज के युग में पुरुष को भी स्त्री के हर काम में सहयोग देना होगा क्योंकि स्त्री-घर, दफ्तर, परिवार जैसे हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही है। 'इक्कीसवीं सदी में' नाटक में आज की बदलती पारिवारिक स्थिति की चर्चा है। बेटे-बहू पिता की मृत्यु होने पर अफसोस भी नहीं करते। 'श्रीमान् ऐक्स-21' में डॉ॰ अग्रवाल इक्कीसवीं सदी में चले जाते हैं और मशीनीयुग की कल्पना करते हैं। यह नाटक रोचक है। इसमें मशीनीकरण पर तीखा व्यंग्य हुआ है। 'वस्त्ररोग विशेषज्ञ' नाटक में लिबास के कारण मानसिक विकार से पीड़ित होने पर व्यंग्य हुआ है। 'पति आलोचना कार्यक्रम' में पत्नियों द्वारा पतियों की खुली आलोचना के साथ-साथ राजनीतिक दलों की भी आलोचना की गई है। यह एक हास्यात्मक नाटक है। 'कर्जा विवाह का' नाटक में पात्र के जरिए इस बात को स्पष्ट किया गया है कि यदि कोई बाप जुए, शराब, आवारागर्दी या अय्याशी के लिए कहीं से रुपया उधार उठाता है और उसे अदा किए बिना मर जाता है तो यह कर्जा उसकी संतान के लिए अदा करना जरूरी नहीं है। मृतक के वारिस वही कर्जा अदा करेंगे, जो परिवार की वाजिब जरूरतों के लिए लिया गया होगा। 'झड़प पति-पत्नी की' नाटक में पारिवारिक व्यंग्य मिलते हैं। इसमें यह व्यंग्य हुआ है कि दुनिया की सारी वास्तविकता बदल रही है। 'गीत पूरा हो गया' में कवि-जीवन की विडंबनाएँ हैं, 'घालमेल पार्टी' में राजनीति एवं राजनीतिक दलों पर व्यंग्य हुआ है। 'वेतन' में दांपत्य जीवन की समस्याओं को उभारा गया है। 'वाइफ-मिडवाइफ' एक हास्य नाटक है जिसमें मकान मालिक और किरायेदार के बीच का वार्त्तालाप व्यक्त हुआ है। 'एक थी धनवती' में देवलोक के जरिए, मानवलोक में हो रहे भ्रष्टाचार पर व्यंग्य हुआ है। जैसे अनुमति-पत्र (पासपोर्ट-वीसा) आदि लेने के लिए भी लोग रिश्वत या घूस के द्वारा अपना काम करा लेते हैं। 'दो बूँद ज़िंदगी की' नाटक में अंधविश्वास का चित्रण किया गया है। गाँव के लोग, बच्चे की अपंगता का दोष प्रेतात्मा पर लगाते हैं।

'गिरिराजशरण अग्रवाल ग्रंथावली' (खंड सात : नाटक समग्र भाग-दो) का कथानक प्रौढ़ता लिए हुए है। डॉ॰ अग्रवाल ने अपने नाटकों के कथानक समाज के बीच से ही ग्रहण किए हैं। अत: समसामयिक समस्याएँ ही इस संग्रह के नाटकों की कथावस्तु है। सभी नाटक अलग-अलग समस्याओं और विषयों पर केंद्रित हैं। यही कारण है कि नाटकों को पढ़कर प्रतीत होता है कि हमारे अपने बीच से ही कथावस्तु ली गई है। कौतुहल-प्रधानता इन नाटकों की अन्यतम विशेषता है। इनमें हास्य-व्यंग्य प्रधान ऐसे नाटकों का समावेश है, जिन्हें मंचीय तामझाम के बिना भी अभिनीत किया जा सकता है। इस नाटक-संग्रह में कुछ नुक्कड़ नाटक भी शामिल हैं। डॉ॰ अग्रवाल के नाटकों में समकालीन जीवन के द्वंद्वों और तनावों की प्रखर विवेचना है। भारतीय मध्यमवर्गीय परिवार की त्रासदियों, विसंगतियों की सशक्त अभिव्यक्ति इन नाटकों में दिखाई देती है। मानवीय धरातल पर लिखे गए इन नाटकों में समकालीनता का नया बोध है। कथ्य नाटक

 ISSN 0975-735X

का प्रमुख तत्त्व होता है तथा इसके बिना नाटक की रचना करना भी संभव नहीं है। कथ्य जितना व्यवस्थित, संगठित और पात्र के अनुकूल होता है, नाटक उतना ही आकर्षक और प्रभावोत्पादक होता है। कथ्य केवल कथन न होकर नाटक की संपूर्ण घटनाओं का संचालन होता है।

डॉ॰ अग्रवाल के नाट्य-साहित्य की यह विशेषता है कि उनमें कथानक, पात्र-नियोजन, संवाद, रंगमंचीयता, अभिनेयता, भाषा-शैली एवं उद्देश्य का सुंदर समन्वय हुआ है। अत: नाट्यकला के प्रमुख तत्वों की दृष्टि से डॉ॰ अग्रवाल की नाट्य रचनाएँ पूर्णतया सफल हैं। उनके नाटकों के पात्र विभिन्न वर्गों से संबद्ध हैं। ये पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रति पूरा-पूरा न्याय करते हैं। रंगमंच एवं अभिनेयता की दृष्टि से भी ये नाटक सफल हैं। उनके नाटक मंच पर सहज रूप में मंचित हो सकते हैं।

कोई भी रचनाकार अपना रचना-कर्म करते हुए कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य रखता है। उद्देश्य की व्यापकता से ही रचना अधिक जीवंत बनती है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी की प्रत्येक नाट्यकृति उद्देश्यपरक है, इसीलिए उद्देश्य की दृष्टि से उनके सभी नाटक सफल हैं। उद्देश्यप्रधान उनकी नाट्यकृतियों में धर्म, समाज, राजनीति, जीवनमूल्यों को उभारा गया है। सामाजिक जीवन की विडंबना, विसंगति एवं त्रासदी ही डॉ॰ अग्रवाल की नाट्यकृतियों में स्पष्ट रूप से मुखर है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं को नाटकों में व्यक्त किया गया है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के नाटकों की भाषा

भाषा विचाराभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने भावों को प्रकट करता है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाटक की उत्कृष्टता भाषा पर भी निर्भर करती है। भाषा नाटक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। नाटक की भाषा जितनी अधिक सर्वसाधारण की भाषा होगी, उतना ही नाटक जनोपयोगी सिद्ध होगा। नाटक की भाषा सहज एवं सरस होनी चाहिए। नाटक दृश्यकाव्य है, दृश्य का संबंध रंगमंच से है, जो सार्वजनिक संपत्ति है, ऐसी स्थिति में भाषा का भी सार्वजनिक होना अनिवार्य है, क्योंकि भाषा की कठिनता से उसका अर्थ सामान्य के मस्तिष्क से परे हो जाएगा। भाषा ऐसी होनी चाहिए कि नाटक का प्रत्येक वाक्य दर्शक की समझ में आ जाए।

संवाद नाटक के प्राण होते हैं और संवाद का माध्यम भाषा होती है। अत: भाषा बोधगम्य एवं सरल होनी चाहिए। नाटक में भाषा का नवीन प्रयोग होता है। अत: नाटक की भाषा में प्रसाद, ओज, माधुर्य गुण के अतिरिक्त लाक्षणिकता, सूक्ष्मता, चित्रात्मकता, पात्रानुकूलता, विविधता एवं लचीलेपन का गुण होना चाहिए। नाटक को रंगमंच पर अभिनीत किया जाता है। अत: नाटक की भाषा रंगमंच के अनुकूल होनी चाहिए।

डॉ॰ अग्रवाल के नाटकों की भाषा में नाटकीय गुणों का समावेश है। सामान्य बोलचाल की हिंदीभाषा का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ किया गया है।

डॉ॰ अग्रवाल ने अपने नाटकों में क्षेत्रीय भाषा के कुछ शब्दों का भी समावेश किया है। नाटक में कहीं-कहीं अँग्रेजी शब्द भी मिलते हैं। नाटक के संवाद संप्रेषणीय हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

अमिताभ : पर साधना! यह तुम्हारी अकेले की समस्या नहीं है, इस देश में रहनेवाली करोड़ों

महिलाओं की समस्या है। उन्हें न कोई न्यायिक संरक्षण प्राप्त है और न सामाजिक। साधना, यह समाज, जिसमें औरत को संपत्ति का अधिकार नहीं, जहाँ उसे न पिता की विरासत में से कुछ मिलता है और न पति की संपत्ति से, उसके लिए कितना क्रूर, कितना निरर्थक है![1]

गोपालदास : कोई किसी का ध्यान नहीं रखता है, दीदी। संसार में सब अपने स्वार्थ से जुड़े होते हैं। हमें लगता है कि वे प्यार कर रहे हैं, पर वे प्यार नहीं कर रहे होते हैं।[2]

उपर्युक्त उदाहरण में डॉ॰ अग्रवाल का व्यंग्य मानव-चरित्र की सच्चाई को दर्शाता है। कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार है–

श्रीकांत : बूढ़े सीमा से ज्यादा समय तक बैठे रहें तो उबा देते हैं, युवा पीढ़ी को।[3]

साधना : प्यार-दुलार से बुढ़िया को मुट्ठी में लेकर संपत्ति राजू के नाम लिखवा लो। इससे हम लोगों का कष्ट काफी कम हो जाएगा।[4]

डॉ॰ अग्रवाल की सूक्ष्म दृष्टि से कोई अंधविश्वास, गलत मान्यता या रूढ़ि बच नहीं पाई है। उन्होंने समाज को बड़ी गहराई तथा पैनी दृष्टि से देखा है। अतः डॉ॰ अग्रवाल ने सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों को व्यंग्य का निशाना बनाया है। उदाहरण इस प्रकार है–

जमूरा : विवाह के दो साल बाद रामदुलारी ने एक कन्या को जन्म दिया, जो मर गई या मार दी गई। तीन वर्ष बाद रामदुलारी ने फिर एक कन्या को जन्म दिया, लेकिन वह भी मर गई या मार दी गई। तीसरी बार गर्भ होने पर इसकी जाँच कराई गई, मदारी। मशीन ने कहा, पेट में कन्या है। परिवार में कन्या को लेकर विवाद छिड़ गया। पति बोला, तेरी कोख में तो हर बार लड़की ही ढलती है री, एक और विवाह करूँगा मैं। रामदुलारी बोली, इसमें मेरा क्या वश है जी, भगवान की मर्जी। पति ताव खाकर बोला, इस घर में भगवान की नहीं, हमारी मर्जी चलेगी। उठ और चल गर्भपात कराने के लिए मेरे साथ। रामदुलारी नहीं गई। उसे तलाक हो गया।[5]

राज : वह साहब, आज सबेरे मेरे पापाजी का देहांत हो गया।

संपादक : किस उम्र के व्यक्ति थे वह?

राजन : यही कोई पचहत्तर साल के रहे होंगे।

संपादक : (शांत भाव से) ठीक है। वह मृत्यु का लगभग ठीक समय था। देश में इस वक्त आदमी की औसत आयु बहत्तर वर्ष है। तीन साल अधिक जी लिए। ठीक है।[6]

उपर्युक्त उदाहरण में मानव की जीने की उम्र बहत्तर वर्ष ही बताई गई है। यह कैसी संवेदना, यह कैसा स्वार्थ है? अपने पिता या अन्य बुजुर्ग की उम्र बढ़ते ही कुछ लोग दिन गिनने लग जाते हैं, और जब वे चल बसते हैं तो अफसोस करना तो दूर, खुश हो जाते हैं कि मुश्किल टली। अतः अब परिवार में रिश्ते-नाते का कोई मूल्य नहीं रहा, इसी बात पर व्यंग्य किया गया है। इसी नाटक से एक अन्य उदाहरण–

सुधीर : ठीक टाइम है, पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी के लिए ठीक समय पर जगह खाली कर देनी चाहिए, जैसे रिटायरमेंट की एक आयु निश्चित है।[7]

डॉ॰ अग्रवाल 'मिलावट' पर भी व्यंग्य करते हैं, यथा–

छोटेलाल : शहरों ही में क्यों, गाँवों में भी यही हाल है। यहीं कौनसी चीज शुद्ध मिल रही है,

 ISSN 0975-735X

भाई। दूध में आधे से ज्यादा पानी, दाल में कंकड़, गुड़ में खड़िया मिट्टी। व्यापार में ईमानदार कौन रह गया है अब?

नौबहार : घर की चीज पर तो कुछ-न-कुछ विश्वास कर सकते हो छोटेलाल, बाजार की किसी चीज का भरोसा नहीं। बाजार में तो जहर भी खालिस नहीं मिलता अब।[8]

डॉ॰ अग्रवाल ने महँगाई की चक्की में पिसती जनता की करुण-त्रस्त आवाज का जिक्र भी अपने नाटकों में करते हैं। उदाहरण के रूप में यह संवाद–

छोटेलाल : तीन प्राणी हो और खर्च चलाने के लिए ओवर टाइम भी करना पड़ता है तुम्हें!

नौबहारसिंह: हाँ भाई छोटेलाल, बड़े शहर में रहने के लिए खर्चे भी बड़े होते हैं, तुम्हें पता नहीं हैं।[9]

इसी तरह कुछ अन्य उदाहरण–

मशीनी जीवन के साथ-साथ आदमी को भी मशीन बनना पड़ गया है।[10]

राधा : हाँ बाबाजी। मशीन बनकर काम न करें तो घर कैसे चलेगा जी?

प्यारेलाल : एक के लिए इतना ज्यादा करना पड़ता है तुम्हें?

राधा : हाँ बाबाजी। पहले हाथी पालना आसान था, बाबा। अब एक बालक का पालना और भी अधिक कठिन हो गया है।[11]

डॉ॰ अग्रवाल ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष अर्थात् पारिवारिक जीवन की स्थिति का भी पर्दाफाश किया है। जैसे–

छोटेलाल : यह तो तम्हें पता ही है भाई कि मेरे। पास कुल बीस बीघा जमीन थी, जोत की। बेटे बड़े हुए, उनका विवाह किया, बहुएँ घर आईं तो घर में बँटवारे की कैंची पड़ गई।

नौबहारसिंह: घर में या खेत में?

छोटेलाल : घर में भी और खेत में भी। हर बेटे ने ढाई-ढाई बीघे जमीन बाँट ली।[12]

सरदारी : समाज जैसा है, अखबार भी वैसा ही है। राजनीति जैसी है, अखबार भी वैसा ही है। जब तक बलात्कार और आत्महत्याएँ होती रहेंगीं, अखबार यह सब लिखते ही रहेंगे।[13]

शहरों में काफी दुर्घटनाएँ और ट्रैफिक जाम होते रहते हैं। इस कारण लोग समय पर कहीं पहुँच नहीं। पाते हैं। इन सब बातों पर भी डॉ॰ अग्रवाल लिखते हैं–

नीतू : यह कल सुबह आठ बजे नाश्ता करके अपने ऑफिस के लिए निकल जाएँगे। साढ़े दस बजे तक ऑफिस में हाजिर होना जरूरी होता है।

अनिरुद्ध : ढाई घंटे लग जाते हैं कार्यालय पहुँचने में।

प्यारेलाल : तो क्या पैदल जाता है, बेटे?

अनिरुद्ध : नहीं पिताजी। जाता तो बस से हूँ, पर अक्सर जाम लग जाता है। रैड लाइट का चक्कर अलग। मार्ग क्लियर नहीं मिलता है।

प्यारेलाल : तो बस ने तो और ज्यादा बेबस कर दिया है तुम लोगों को। (बहू को संबोधित करते हुए) और बेटी तुम। तुम्हारा क्या कार्यक्रम रहता है?

नीतू : मैं भी साढ़े आठ बजे तक निकल जाती हूँ। रिसैप्शनिस्ट हूँ ना एक फर्म में। मेरे साथ ही बच्चे अपने-अपने स्कूल चले जाते हैं। बबली अभी छोटी है, इसे किंडरगार्टेन

छोड़ देना होता है हमें। वापसी में साथ ले आते हैं।

प्यारेलाल : पर यह तो बताओ, तुम लोग लौटते कब हो?

नीतू : लौटने का कुछ ठीक नहीं होता है, पिताजी। यह तो सड़कों पर भीड़ और बसों की रफ्तार पर निर्भर है।[14]

इसी नाटक में से एक अन्य उदाहरण में यह चित्रित किया गया है कि आज के शहरी वातावरण में बच्चों को गाँव की खेती-बारी के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

प्यारेलाल : (हँसते हुए) अब इस पीढ़ी के बच्चों को यह बताना भी होगा कि चने, गेहूँ और मक्के के पेड़ कैसे होते हैं, कितने बड़े होते हैं?

नीतू : पिताजी, इन्हें यह तो पता है कि परमाणु बम कैसा होता है, कैसे बनता है, पर यह नहीं पता कि गेहूँ का पेड़ कैसे और कितना बड़ा होता है?[15]

'जनसंख्या' वृद्धि एवं 'बेरोजगारी' जैसी समस्याओं पर भी व्यंग्य किया गया है जैसे–

नौबहारसिंह: हाँ, भीड़ तो हो ही जानी है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती है वैसे-वैसे बेरोजगारी भी बढ़ती है और जब बेरोजगारी बढ़ती है तो बेकार लोग रोजगार की तलाश में नगरों-महानगरों की तरफ लपकते हैं।[16]

हास्य-व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग

नाटकों में हास्य एवं व्यंग्य का प्रयोग नाटक को रोचक बनाने के लिए किया जाता है। मनोरंजन के लिहाज से व्यंग्य, नाटकों को यह विशिष्टता प्रदान करता है। व्यंग्य समकालीन, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मानवीय असंगतियों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। कहते हैं कि बौद्धिक दृष्टि से परिपूर्ण लेखक ही व्यंग्य लिख सकता है। बौद्धिकता के अभाव में व्यंग्य निष्प्राण और निर्जीव हो जाता है। बौद्धिकता से ही व्यंग्य के लिए आवश्यक तार्किकता आती है। व्यंग्यकार का प्रमुख लक्ष्य व्यंग्य को गंभीरता प्रदान करते हुए अभीष्ट किंतु सटीक प्रहार करना होता है। डॉ॰ अग्रवाल के व्यंग्यों में यही बौद्धिकता दार्शनिक अंदाज में पाठकों के समक्ष अभिव्यक्त होती है। उदाहरण के रूप में कुछ संवाद इस प्रकार हैं–

जमूरा : यह सपना देखना नहीं छोड़ता है मदारी। यह सपने देखता है, लेकिन सपने खरीदने की क्षमता नहीं रखता। इसीलिए एक कुर्ताधारी होकर भी सत्ताधारी नहीं है।[17]

इसी नाटक में आगे का यह संवाद देखने योग्य है–

जमूरा : मालदारी का दिखावा तो सब करते हैं मदारी, गरीबी का दिखावा कोई नहीं करता। गरीबी को तो पाप की तरह छिपाया जाता है। मालदारी को बीच सड़क पर प्रदर्शित किया जाता है। इसलिए छोड़ दे मदारी इसे।

मदारी : छोडूँगा नहीं जमूरे। गरीबी पेट खोलकर सामने नहीं आएगी तो क्रांति बहुत लेट हो जाएगी, जमूरे।[18]

जमूरा : आपके देश में जाली नोट चल सकता है मदारी, जाली आदमी चल सकता है, पर फटा आदमी नहीं।[19]

डॉ॰ अग्रवाल चूँकि स्वयं एक सिद्धहस्त व्यंग्यकार हैं, अत: उनके नाटकों में व्यंग्य एवं व्यंग्यात्मक भाषा का भरपूर प्रयोग देखने में आता है। डॉ॰ अग्रवाल के व्यंग्य-लेखन की अपनी

 ISSN 0975-735X

अलग भाषा-शैली है। कुछ उदाहरण–

सर्वजीतसिंह : जनता विश्वास चाहती है, ऐसे राजनीतिक दल पर जो समय के अनुकूल हो।

प्रो॰ ज्ञानदत्त : एकदम ठीक बात कही है, सरदार जी ने। हमारे देश में मुश्किल यह है कि कोई राजनीतिक दल समाजवाद की बंसी बजा रहा है, कोई पूँजीवाद की, कोई जातिवाद की, कोई सांप्रदायिकतावाद की, कोई उदारवाद की, कोई बाजारवाद की, कोई व्यक्तिवाद की, कोई समूहवाद की, कोई पीड़ित दलितवाद की और कोई कोई कोरे आश्वासन की।[20]

घासीराम : इसलिए हमारा मोर्चा कहता है, भाइयो और बहनो कि तुम भ्रष्टाचार करो, लेकिन भ्रष्टाचार को सदाचार में बदलते जाओ। जनता की अदालत बहुत उदार होती है। वह तुम्हें क्षमा कर देगी। पाप को पुण्य में बदल देना हमारी सांस्कृतिक परंपरा है।[21]

ताराचंद : तुम इसे जरा-सी बात कह रहे हो, परमानंद। ध्यान देकर देखो समाज का हर आदमी भूखा है, राजा से लेकर रंक तक, नारी से लेकर नर तक, साधु-संतों से लेकर दुनियादारों तक, चोर-उचक्कों से लेकर डाकुओं और हत्यारों तक, नेताओं से लेकर अभिनेताओं तक, बीवी से लेकर वेश्या तक। जहाँ भी जाओगे सब भूखे मिलेंगे, तारीफ के भूखे, अपनी प्रशंसा के भूखे।[22]

समाज में दिन-प्रतिदिन रिश्वतखोरी बढ़ती जा रही है। 'रिश्वत' की इस वृत्ति पर डॉ॰ अग्रवाल तीखा प्रहार करते हैं। उदाहरण के रूप में–

मजदूर-2 : ऋण लिया था? सरकार से ऋण मिलना कोई आसान थोड़ा है भैया। सुना है आध बटाई हो जाती है।

सरदारी : तुम्हें क्या पता है भाई, जो मुझे पता है सरकारी ऋण लेनेवालों का हाल, पहले उद्योग कार्यालय में कार्य कर रहे क्लर्क को घूस दो। फिर कार्ययोजना बनानेवाले पदाधिकारी को घूस दो। फिर मौके पर जाकर निरीक्षण करनेवाले निरीक्षक को घूस दो। फिर फाइल पास कर बैंक में भेजनेवाले योजना अधिकारी को घूस दो। फिर बैंक के फील्ड ऑफिसर को घूस दो, प्रबंधक को घूस दो।

मूलचंद : घूस दो और घूँसे भी खाओ।

एक मजदूर: बिलकुल ठीक कहा तुमने मूलचंद। जितनी घूस दो, उससे ज्यादा घूँसे खाओ और घूँसे खाकर आधी रकम लेकर घर आओ।[23]

डॉ॰ अग्रवाल के नाटकों में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है, जो काफी दिलचस्प है और यथार्थ का पर्दाफाश भी करता है। एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है–

जमूरा : झूठ तो मदारी मंच पर बोला जाता है, राजनीति के। झूठ तो मदारी दरबार में बोला जाता है मंत्री के। झूठ तो मदारी सरकार में बोला जाता है जनता की। झूठ तो मदारी दरबार में बोला जाता है धर्मगुरुओं के, तांत्रिकों के। जमूरे की भीड़ में झूठ नहीं बोला जाता है मदारी।[24]

स्पष्ट है कि डॉ॰ अग्रवाल ने अपने नाटकों में व्यंग्य का काफी पुट रखा है, इसलिए डॉ॰ अग्रवाल के नाटक जहाँ पठनीय होकर आनंदित करते हैं, वहीं मंचन की दृष्टि से भी श्रोता-दर्शकों को आनंद प्रदान करते हैं। डॉ॰ अग्रवाल के नाटकों में वर्तमान राजनीति के भ्रष्ट आचरण

पर भी पर्याप्त व्यंग्य किया गया है। ये नाटक अपनी व्यंग्यात्मकता के कारण आम दर्शक से सीधे-सीधे बहुत जल्दी जुड़ जाते हैं। नाटकों में व्यंग्य का बहुलता से प्रयोग होने के कारण डॉ॰ अग्रवाल अपने उद्देश्य में इसलिए भी सफल नजर आते हैं कि नाटकों के माध्यम से वह जो संदेश देना चाहते हैं, पाठक उसे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं।

डॉ॰ अग्रवाल का नाटय साहित्य में शैली के भी सुंदर प्रयोग मिलते हैं। उदाहरणार्थ–

विचारात्मक: मानव-जीवन ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है। उससे भी बड़ा वरदान ज्ञान का वह महासागर है, जो ईश्वर ने केवल आदमी के लिए बनाया है। यह अपनी-अपनी क्षमता और मेहनत की बात है कि कौन उस महासागर से ज्ञान के मोती निकलकर लाता है और कौन तट पर प्यासा बैठा रहता है।

सूक्तिपरक : महानता बार-बार नहीं आँकी जाती। अधर्म का अर्जन कभी नहीं फलता।

संवाद में मुहावरों का प्रयोग

डॉ॰ अग्रवाल ने अपने नाटकों में मुहावरों का प्रयोग भी यथास्थान किया है। मुहावरों का प्रयोग करने से डॉ॰ अग्रवाल के नाटक संवाद की दृष्टि से पर्याप्त प्रभाव छोड़ते हैं तथा श्रोता-दर्शक को आसानी से बात समझ में आ जाती है। संवाद में मुहावरों का प्रयोग उद्देश्यपूर्ण एवं नाटक की कथावस्तु के अनुरूप होकर संदर्भों को जोड़ने में सहायक है। उदाहरण के लिए

छोटेलाल : फसल बढ़िया क्यों नहीं होगी मोखासिंह। खाए के गाल और नहाए के बाल अलग दिखाई देते हैं।[25]

सरदारी : (बात पूरी करते हुए) जब सिर ओखली में है, तो मसूलों से क्या डरना है।[26]

डॉ॰ अग्रवाल नाटकों के संवादों में मुहावरों के प्रयोग में काफी अग्रणी हैं। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि डॉ॰ अग्रवाल स्वयं अपने नए मुहावरे भी गढ़ लेते हैं। उदाहरण के लिए

मदारी : छोड़ूँगा नहीं जमूरा, इसे। गरीबी पेट खोलकर सामने नहीं आएगी तो क्रांति बहुत लेट हो जाएगी, जमूरे।[27]

धुरंधरसिंह : अबे मुकदमे को गवाह और मुर्दे को कफन मिल ही जाता है।[28]

उपर्युक्त अंश में मुहावरे नए प्रतीत होते हैं तथा संवाद की दृष्टि से प्रेक्षकों पर सार्थक प्रभाव छोड़ते हैं। डॉ॰ अग्रवाल जीवन की सच्चाइयों का, जीवन की मधुर-कठोर परिस्थितियों के सामाजिक परिवेश का चित्रण अपने नाटकों में करते हैं। और जब नाटक की भाषा में व्यंग्य हो तथा मुहावरों का भी प्रयोग हो तो नाटक प्रहारक, मारक और कभी-कभी सुधारक भी हो जाता है। उसकी चोट प्रत्यक्ष नहीं होती, मार दिखाई नहीं देती, सुधारक उपदेशक नहीं होता। सब कुछ पीछे-पीछे से होता है किंतु होता जरूर है।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर डॉ॰ अग्रवाल के ये नाटक अपने उद्देश्य में पूरी तरह से सफल हैं और अपने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं। इनमें सम्मिलित सभी नाटक ऐसे हैं, जिन्हें सुव्यवस्थित मंच के बिना भी सीधे जनता के साथ जोड़ा जा सकता है। आज भी समस्याओं का कोई ओर-छोर नहीं है। अभाव, महँगाई, बेरोजगारी, बढ़ती हुई जनसंख्या, प्रशासनिक एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार, प्रदूषण आदि कितनी ही समस्याएँ हैं जो सीधे जनजीवन

 ISSN 0975-735X

से जुड़ी हैं और ऐसे में नाटक ही वह सशक्त विधा है, जो जनसाधारण को गहराई से और सीधे-सीधे अपने साथ जोड़ सकती है। डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी ने लगभग सभी समस्याओं पर अपने नाटकों में बड़ी तल्ख टिप्पणियाँ की हैं। डॉ॰ अग्रवाल के ये नाटक सामाजिक सरोकारों को साकार करते नजर आते हैं। अपनी धारदार सोच और समसामयिक परिस्थितियों की एप्रोच के कारण ये नाटक वास्तविकता के धरातल पर भी खरे उतरते हैं।

सामाजिक और समसामयिक विसंगतियों पर डॉ॰ अग्रवाल ने वैचारिक व्यंग्य का सृजन किया है। परिवेश की व्यापकता लिए हुए डॉ॰ अग्रवाल ने व्यंग्य, समाज के। पाखंड को उजागर करते हैं, तो ईमानदारी के साथ सचेतक की भूमिका का निर्वाह भी करते हैं। डॉ॰ अग्रवाल के व्यंग्य अनुभवों का ऐसा दस्तावेज हैं, जिन्हें पढ़कर समाज के मुखोटों से परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

राजनीति हो या समाज, व्यक्ति हो या परिवार, शिक्षा का क्षेत्र हो अथवा न्याय का, प्रशासनिक व्यवस्था का मामला हो या देश के सांप्रदायिक ढाँचे का, जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों और असंतुलन को डॉ॰ अग्रवाल की पैनी दृष्टि ढूँढ़कर बाहर निकलती है। डॉ॰ अग्रवाल के शब्दों में ही नहीं, उनकी सोच में भी वह पौनापन है, जो उनके हास्य-व्यंग्य को उच्चस्तरीय बनाता है।

संदर्भ

1. गिरिराजशरण अग्रवाल ग्रंथावली, खंड सात : नाटक समग्र, पृ॰ 443
2. वही, पृ॰198
3. वही, पृ॰ 207
4. वही, पृ॰ 209
5. वही, पृ॰ 222-223
6. वही, पृ॰ 352
7. वही, पृ॰ 353
8. वही, पृ॰ 177
9. वही, पृ॰ 179
10. वही, पृ॰ 314
11. वही, पृ॰ 304
12. वही, पृ॰ 183
13. वही, पृ॰ 150
14. वही, पृ॰ 301
15. वही, पृ॰ 303
16. वही, पृ॰ 181
17. वही, पृ॰ 212
18. वही, पृ॰ 216
19. वही, पृ॰ 216
20. वही, पृ॰ 428-429
21. वही, पृ॰ 137

22. वही, पृ॰ 161
23. वही, पृ॰ 152
24. वही, पृ॰ 220
25. वही, पृ॰ 173
26. वही, पृ॰ 153
27. वही, पृ॰ 216
28. वही, पृ॰ 243

Plot No. 38, 5th Cross Street
Gokul Nagar, Perumbakkam
Chennai 600 100
Phone : 044 22770999, 09445181971
E mail : mathurajaya@gmail.com

 ISSN 0975-735X

महाकाव्य बुद्धचरित चंद्रोदय : एक अवगाहन

बी॰एच॰ तलवार
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
एफ॰एम॰के॰एम॰सी॰ कॉलेज
मडिकेरी (कर्नाटक)

संक्षेपण

विनीत विक्रम बौद्धकृत 'बुद्धचरित चंद्रोदय' हिंदी जगत का आधुनिक महाकाव्य है। इस वृहद काव्य में कवि ने तथागत गौतम बुद्ध के जीवनचरित को आरेखित किया है। अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित्र' एवं एडविन आर्नोल्ड कृत 'लाइट ऑफ एशाया' महाकाव्यों को आधार बनाकर कवि ने अध्ययन-सामग्री जुटाकर उसे नवीन श्रृंखला में पिरोया है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की तर्ज पर इस महाकाव्य की रचना की गई है, जिसमें दोहा, चौपाई, सवैया आदि का समावेश है। चूँकि कवि का बुनियादी परिवेश बुंदेलखंड से नाता रखता है, इस लिहाज से इस महाकाव्य में बुंदेली लोकभाषा का भरपूर उपयोग हुआ है। विंध्य, बघेली, अवधी, भोजपुरी, रेबाड़ी क्षेत्रीय बोलियों का भी अद्‌भुत संगम है। विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों की शाब्द श्रृंखला ने इस महाकाव्य को रोचकता प्रदान की है। एक ओर यह प्रेमकाव्यों की तरह सीमित जीवन का काव्य नहीं है, तो दूसरी ओर यह कोरा चरितकाव्य भी नहीं है। तीसरे, यह वर्णाश्रम धर्म-संस्थापक, जो द्विज प्रतिपालक आचार्य रामचंद्र ब्रांड कथानायक की प्रशस्ति-गाथा भी नहीं है। बुद्धचरित चंद्रोदय में भावना, विचारणा, संतुलित कल्पना के साथ शील का भी सक्रिय समन्वय है। रचनात्मक सामंजस्य है।

बुद्धचरित चंद्रोदय में चौंसठ सर्ग हैं। इन समस्त सर्गों को आठ पर्वों में सँजोया गया है। प्रथम पर्व में तथागत गौतम बुद्ध के जन्म, शिक्षा, विवाह, नगर-भ्रमण, हंस-रक्षा, निष्क्रमण और परित्यक्ता यशोधरा से देवदत्त का गर्हित प्रणय-प्रस्ताव है। संबोधपर्व में बुद्ध की तपस्या, सुजाता की खीर, बोध लाभ, धर्मचक्र प्रवर्तन, पंचवर्गीय भिक्खुओं की दीक्षा के प्रसंग हैं। मगध पर्व में भिक्खु संघ की स्थापना, धर्म-दीक्षा, छुआछूत का विरोध, सर्वोत्तम यज्ञ का निरूपण और वैरागी गौतम द्वारा गृहस्थ गीता का व्यावहारिक उपदेश है। संबोध पर्व में बुद्ध जो सोचते-समझते हैं, उसे मगध पर्व में व्यावहारिक कर्मों में उन्मुक्त करते हैं। कोशल पर्व में भी विरागी करण और दीक्षा की प्रक्रिया चलती है। यही प्रक्रिया कपिल पर्व और भिक्खुर्णा पर्व तक चलती जाती है। अँगुलीमाल का प्रसंग विशेष नाटकीय है। गौतम विरागियों की पल्टन खड़ी करते हुए अग्रसर होते हैं। वे औरों को ही नहीं, अपने परिवार के सदस्यों को भी बंधुत्व का प्रकाश बाँटते हैं। गौतमी, यशोधरा, राहुल तक को दीक्षित करते हैं। बुद्ध की शिक्षा और दीक्षा स्त्री-पुरुष दोनों के लिए उन्मुक्त है। यहाँ ब्राह्मण और चांडाल, अवर्ण और सवर्ण आदि के मध्य लेशमात्र भी भेदभाव नहीं है। बुद्ध के संघ में शिक्षा-दीक्षा का मार्ग सबके लिए खुला है। यहाँ द्रोणाचार्य जैसा गुरुकुल नहीं

है, जहाँ जाति और वर्ण के आधार पर विद्यार्थियों का चयन किया जाता था। संवाद पर्व में दीक्षा-कार्य कम हैं, भ्रमण, शांका समाधान, जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर अधिक हैं। यक्ष यहाँ भी महाभारत के यक्ष के समतुल्य है। कूट दंड यज्ञ के विषय में प्रश्न करता है। यहाँ मानसिक यज्ञ और षटरिपु की बलि का सटीक रूपक है। अश्वलायन वर्णवाद के प्रश्न उठाता है। बुद्ध वर्ण-विभाजन को बनावटी बताते हैं। बुद्ध ने इस बात को बड़े ही जोरदार शब्दों में प्रचारित किया है कि ऊँच-नीच का भेद प्रकृतिकृत नहीं है। आग अग्निहोत्र की हो, चूल्हे की हो, चिता की हो, पर वह आग ही होती है। मनुष्य-मनुष्य ही होता है। उसको नाना भाँति का रंग, रूप, वंशवृत्ति कुछ भी मिला हो, परंतु वह सचमुच मनुष्य है। संसार में बुद्ध से पूर्व मानवता के पक्ष में इस तरह किसी ने नहीं बोला। सारे पंथ, सारे धर्म, मनुष्य को वर्ण-जाति में बाँटने में लिप्त थे। मनुष्य- मनुष्य के मध्य गहरी खाई का निर्माण करने लिप्त थे और उसका ठीकरा ईश्वर के सिर पर फोड़ रहे थे। चालाक मनुष्यों ने मासूम मनुष्यों में ईश्वर के प्रति शंका पैदा कर दी है। बुद्ध ने उस अमानवीय पाखंड का न सिर्फ पर्दाफाश किया, बल्कि उनमें उसके, खिलाफ शाब्दिक जंग छेड़ी।

वैचारिक आंदोलन के माध्यम से उस घृणित परंपरा का अवसान कर दिखाया, बुद्ध ने। बुद्ध ने समतामूलक परंपरा का बीजारोपण किया, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर कबीर, रैदास, चोखमेला, दादू, पीपा, तुकाराम, नामदेव जैसे अनेक संतों का अंकुरण हुआ जो आगे चलकर ज्योतिबाराव फुले, सावित्रीबाई फुले, क्षत्रपति साहूजी महाराज व डॉ॰ बाबासाहेब अंबेडकर जैसे महापरिवर्तनकारी वटवृक्षों के रूप में खड़े हुए। 'बुद्धचरित चंद्रोदय' में बुद्ध की उस भावुक व कारुणिक धम्मक्रांति को बड़े ही रोचक अंदाज में लिपिबद्ध किया गया है। वशिष्ठ के ब्रह्मवाद का खंडन और 'अत्तदीपोभव' का मूलमंत्र भी यहीं क्षतिग्रस्त होता है। संवादिक द्वंद्व की शैली सुकरात के पूर्व बुद्ध में ही मिलती है। हीगेल और मार्क्स यहाँ प्रच्छन्न हैं। इस महाकाव्य के मंच पर बुद्ध लोकनायक हैं, तो देवदत्त खलनायक। बुद्ध भिक्खु होने के पूर्व भी दया, मैत्री, करुणा, संभाव आदि से परिपूर्ण थे। भिक्खु होने के बाद उन्होंने इन्हीं सदाचारी गुणों को विभिन्न सूत्रों में प्रचारित किया और लोकहित का मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं सूत्रों को चार आर्यसत्य, त्रिशरण या त्रिरत्न, पंचशील, अष्टांग मार्ग व दस पारमिताओं के नाम से जाना जाता है। इसके विपरीत देवदत्त बाल्यकाल्य से ही हिंसक, ईर्ष्यालु, व विध्वंशक रहा है। भिक्खु, बनने के बाद भी उसमें सदाचार की भावना बलवती नहीं हुई। वह सदैव ही अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष की भट्टी में जलता रहा। मुँह की मुँह पर मुँह की खाने के बाद भी देवदत्त बुद्ध के विपरीत कूटनीति चलता रहा। यही बुद्ध और प्रतिबुद्ध का द्वंद्व है। यही है द्वंद्वमय निर्द्वंद्वता।

उत्तरपर्व बुद्ध की भीतरी और बाहरी महाभारत का शांतिपर्व है। इसमें भिक्खु मोदगल्यान, सेठ सुदत्त, सारिपुत्र, यशोधरा, प्रजापति और अंत में बुद्ध का महापरिनिर्वाण होता है। निर्वाण के बाद और निर्वाण में कुछ भी घटित नहीं होता, क्योंकि सारे राग-विराग शून्यत्व को प्राप्त हो जाते हैं। निर्वाण पूर्ण निर्वेद का यद्यपि हो जाता है। निर्वाणी निर्वेद में प्रेम-घृणा, काम-क्रोध, पाप-पुण्य, रूप-रस-गंध-स्पर्शा, आशा-निराशा, भय-विस्मय सभी परिवर्तित हो जाते हैं। इसी से यह रसांत न होकर विरागियों का रसराज है, शृंगार रागियों का रसराज है, तो निर्वेद बुद्धों का करुणा-वलित रसराज है। यह अंध तृष्णा का बाजीकरण और अंधसत्ता का नाजीकरण नहीं है। काव्य का केवल साधारणीकरण हो जो, यही पर्याप्त नहीं है। उसका संघीकरण और विविध चरित्रों तथा विविध

 ISSN 0975-735X

प्रकार के पाठकों के साथ सास्तित्व सह मानसीकरण होता है। तथागत ऐसे ही लोकनायक हैं, जो सबकी सुनते हैं, सबको सुनाते हैं, एवं सबको सुनाने देते हैं। इसी प्रक्रिया में सबका मानवीकरण होता है। सभी अपने ढंग से करुणा, मैत्री, राग, विराग का सक्रिय समीकरण आचरित करते हैं। यह सरस, सुशील प्रज्ञीकरण है। स्वदीपीकरण है। इसके हेतु कवि को भावपूर्ण और मार्मिक स्थलों की पहचान के साथ तार्किक और बौद्धिक स्थानों की पहचान भी होनी चाहिए। चंद्रोदय के कवि में मार्मिक बोध के साथ वैचारिक बोध की भी क्षमता है।'

आदित्यप्रताप सिंह कहते हैं कि कोरी भावुकता और कोरी बौद्धिकता नहीं है। दोनों के मिलन से ही चंद्रोदय निर्मित होता है। उन्होंने 'बुद्धचरित चंद्रोदय' की पंक्ति 'भयउ प्रकासित काव्य महाना, चंद्रोदय सम सोइ जहाना'[1] का उदाहरण देते हुए कहा कि यह पंक्ति शंत और करुणरस से पुष्ट है। प्रथम मिक्खु के साथ जितने भी और भिक्खु-भिक्खुनियाँ है, सब चाँदनी में डूबे हुए होकर भी अंतदीप से दीपित होते हुए भी संघीकरण से युक्ति-युक्त है और तो और अंगुलीमाल जैसे लोगों का भी इस चंद्रोदय में मीलन और उन्मूलन होता है देवदत्त राहु है, परंतु गृहों का प्रभाव मात्र ही उनका भी उपयोग है। यह चिन्मय चंद्रोदय है। प्रज्ञा-पारद गंधक-शीलादि के रचनात्मक मिश्रण से यह चंद्रोदय बनते-बनते बनता है, बना है। एक प्रेम-प्रसंग का जिक्र आया है 'बुद्धचरित चंद्रोदय' में। उस लड़की का नाम है-मंजूगोपा। विरागी का करुणा मूर्ति गौतम द्वारा बखान अपने आप में कविता की भी कविता है। शृंगार का भी शृंगार है। तिरस्कार नहीं, परम परिष्कार है। वह तरंग लाल है, अबोल व्यथा-कथा है, परंतु कहीं की भी भाषा है। व्यंग्य का भी व्यंग्य है। रस का भी पारद प्ररस है। निम्नलिखित पंक्तियाँ, इस बात का उदाहरण हैं–

चित चाह रही बहु बोलन की, तिय बात न एकहु बोलि सकी।
अभिलाष रही उर खोलन की, मुख मूक न अंतहु खोलि सकी।
पिय ठाढ़ रहे कहि बैठन को जड़ जीभ न विक्रम डोलि सकी।
कहँ जोहि सकी मुख जात समै जुग पायैंन दीदि टटोलि सकी।[2]

इस महाकाव्य में रूपवर्णन, भाव-विचार और चित्रण की भाषा संस्कृत-प्रवण है तो संवादों की भाषा अवधी, बघेली-प्रवण है। आज जहाँ एक ओर देश और दुनिया भौतिक सुखसुविधाओं के मकड़जाल में उलझी है, वहीं दूसरी ओर विनीत विक्रम बौद्ध जैसे कवि तथागत बुद्ध की मानवकल्याणकारी देशना को सरलीकृत कर जनसामान्य तक पहुँचाने में लगे हुए हैं। बुद्ध की शिक्षाएँ हर काल में प्रासंगिक रही हैं, आज भी हैं। बुद्ध ही हैं, जो सर्वदुनिया का कल्याण चाहते हैं। बुद्ध ही हैं, जिनका धम्म आदि में भी कल्याणकारी है, मध्य में भी कल्याणकारी है, अंत में भी कल्याणकारी है। जड़ हो या चेतन सभी का कल्याण चाहते हैं, बुद्ध। जनकल्याणी वाणी आगत और अनागत विशव हेतु परम प्रासंगिक है। मंगलकारी मंगलाचरण है–

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु सब्बे होन्तु च खेमिनी।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु मा कंचि दुक्खमागमा।
सबके दु:ख दारिद दहहिं होहिं असंक असोक।
सब निज-निज मंगल लहहिं होइ सुखी सब लोक।[3]

यही तुमुल तिमिर-हारि, बुद्धचरित-चंद्रोदय का भी मंगल-मर्म है, जिसमें अंबेडकर का सूर्योदय भी प्रच्छन्न है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिंदी, अवधी और बघेली से छना और बना यह

नवचंद्रोदय, जिसमें भाव-योग, विचार-योग, चरित-योग और भाषिक शिल्प-योग का प्रायः सार्थक महायोग है।

यह जीवन-मरण का महाकाव्य, जीवन-मरण की भाँति ही सरस, विरस, मधुता, कटुता, रस-अलंकारों, मुहावरों और वक्रोक्तियों की चमत्कारिता के साथ सर्वचाक्षुष है।

प्रज्ञा पारद पाइ सुजातू। गंधक सील समाधि सुधातू।
बार-बार बहु सोधि बनावा। चंद्रोदय रस नाम धरावा।
करि रसपाक कुसल कविराजू। भेषज कीन्ह भुवन सरताजू।[4]

विकृत राजनीति, नीम हकीमों की चालू वर्णनीति, और अपसमाज नीतिजन्य बारूदी बज्रमूर्खता की कूटनीतियों से उत्पन्न विकृतियों से जूझने के लिए यह प्रबद्ध काव्य-चंद्रोदय भी है और चिकित्सा-चंद्रोदय भी। इन सबको सूझबूझ कर, इन सबसे जूझकर निर्गत हुआ है यह करुण-शांत बुद्धचरित् चंद्रोदय।

'बुद्धचरित चंद्रोदय' की प्रासंगिकता इसी बात से समझी जा सकती है कि मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा अब धीरे-धीरे संपूर्ण में इसका पाठ होने लगा है। उत्तर भारत में 'रामचरितमानस' का पाठ तो कई शताब्दियों से होता चला आ रहा है, जिसकी वजह से चौपाई और दोहे लोगों के तन-मन में रचे बसे हैं। इसी को दृष्टिगत रखते हुए कवि विनीत विक्रम बौद्ध ने लोकभाषा या सहारा लेते हुए यह काव्यकृति लोक को समर्पित की है कथा-विन्यास, भाषा-शैली, बुद्ध के जीवन का चरित्र-चित्रण, संवाद-शिल्प, रूपचित्रण, प्रकृति-वर्णन, अरण्यवर्णन, नगरवर्णन, ग्रीष्मवर्णन, वर्षावर्णन, रसयोजना, छंदविधान, अलंकार-योजना आदि सब बिंदुओं के आधार पर गहन अध्ययन करने पर परिलक्षित होता है कि 'बुद्धचरित चंद्रोदय' हिंदीजगत का एक अद्वितीय महाकाव्य है, जिसमें तथागत बुद्ध के जीवन-दर्शान को बेहद मार्मिक अंदाज में चित्रित किया गया है। छंद-विधान का एक उदाहरण है–

गेह गए जनराइ रही मन भाय अरण्य छटा अलबेली।
आइ गई सुचि साँझ तबै बन जीव सबै सर तीर अकेली।
छेरि रही कारिनी करि को, हरिनी हरी संग करै अठखेली।
दूरहि तें महकें बिरई चिरई चहकें बहकें बनबेली।[5]

अंत में निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि कवि विनीत विक्रम बौद्ध ने इस महाकाव्य 'बुद्धचरित चंद्रोदय' के माध्यम से तथागत बुद्ध की समता, ममता, भाईचारे की भावना को रेखांकित किया है। इस हेतु कवि ने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। भाषा के बारे में कहा जाए तो कहना होगा कि 'बुद्धचरित चंद्रोदय' विभिन्न हिंदीभाषा की बोलियों का बहुरंगी गुलदस्ता है।

संदर्भ

1. विनीत विक्रम बौद्ध 'बुद्धचरित चंद्रोदय' सम्यक् प्रकाशन, नई दिल्ली 2010, पृ॰ 12
2. वही पृ॰ 12
3. वही, पृ॰ 14
4. वही, पृ॰ 14
5. वही, पृ॰ 24

मो॰ 07795059000

वैदिककाल से अब तक नारी

मुकेश

सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि के निर्माण और संचालन में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव-जाति की सभ्यता और संस्कृति के विकास का मूलाधार स्त्री को ही माना जाता है। स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो मूलभूत तत्त्व हैं। दोनों के सहयोग और समन्वय से सृष्टि की रचना होती है। सृष्टि की रचना में पुरुष की तुलना में स्त्री का योगदान अधिक है। गर्भधारण से लेकर संतान का जन्म तथा उसके पालन-पोषण का कार्य स्त्री ही करती है। इसलिए स्त्री को सृष्टि का आधार कहा गया है।

स्त्री : अर्थ एवं व्युत्पति

स्त्री शब्द 'सत्यै' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'लज्जायुक्त' होना लिया हाता है। पाणिनी ने 'सत्यै' का अर्थ 'शब्द करना' लिया है। पतंजलि ने कहा है कि 'नारी को स्त्री इसलिए कहा जाता है कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है। उनकी एक दूसरी व्युत्पति के अनुसार स्पर्श, शब्द, रस, रूप और गंध का समुच्चय स्त्री है। पुरुष की ज्ञानेंद्रियों की तृप्ति नारी से होती है। इसलिए उसे स्त्री कहा जाता है।[1]

पति का सम्मान करने वाली होने के कारण नारी को महिला भी कहा जाता है।

'मह+इलच+या महिला' इस व्युत्पति से भी स्त्री की महत्ता स्पष्ट होती है। वैदिककाल से लेकर आज तक नारी के लिए 'स्त्री' शब्द सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। स्त्री वैदिक संस्कृत शब्द है। ऋग्वेद में इसका सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है। वह परिवार की सूत्रधारक होने के कारण स्त्री कहलाती है तथा जन्म देनेवाली होने के कारण जन्मदात्री कही जाती है।

भारतीय विद्वानों के विचारों में स्त्री

1. स्वामी विवेकानंद के अनुसार–'स्त्री-पूजन से ही समाज की प्रगति होती है। जिस देश अथवा समाज में स्त्री-पूजन नहीं होता, वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता।'[2]
2. महात्मा गांधी के अनुसार–'स्त्री को अबला कहना उसका अपमान है। यदि शक्ति का अभिप्राय पाश्विक शाक्ति है तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम शक्तिशाली है। यदि शक्ति का मतलब नैतिक शक्ति है, तो स्त्री-पुरुष से कहीं अधिक शक्तिमान है।'[3]
3. डॉ॰ राधाकृष्णन के अनुसार–'एक पशु जिसका प्रशिक्षण नारी करती है, नारी मूलतः पुरुष की शिक्षिका है। जब भी, जब वह बच्चा होता है और तब भी, जब वह व्यस्क होता है।'[4]
4. मुशी प्रेमचंद के अनुसार–'मैं प्राणियों के विकास में स्त्री को पुरुष के पद से भी श्रेष्ठ मानता हूँ। जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा, हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ है। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से।'[5]

5. सुमित्रानंदन पंत के अनुसार–'स्त्री के बिना संसार एक अँधेरा कूप-सा है। स्त्री ही अलंकारों में सर्वोत्तम अलंकार है। इसके बिना कविता भी रसीली नहीं होती। यह मधुरता की एक मृदुला तपस्विनी है, सौंदर्य की अपूर्व खान है।'[6]

पाश्चात्य विद्वानों के विचारों में नारी

1. टामस सूर के अनुसार–'स्त्री रात का तारा और प्रभात की हीरा है, वह तो ओस का कण है, जिससे काँटों का भी मुँह हीरों से भर जाता है।'
2. पेटरिका ब्रानका के अनुसार–'स्त्री पत्नी, माता, उपभोक्ता, गृहिणी, स्वास्थ्य-निर्देशिका, शिक्षिका, सहयोगी, सलाहकार अर्थमंत्री, अनेक रूपों में एक ही समय सेवा करते हुए घर की बागडोर सँभालती है।
3. लीन यु तंग के अनुसार–'जब हम सोच लेते हैं कि बिना माता के इस संसार में कोई नहीं आया, हमारी धारणा अत्यंत उदार हो जाती है।'

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री त्याग, करुणा की मूर्ति है और ममतावादी और स्नेहमयी है।

वैदिक-उपनिषद् काल में नारी

भारतीय आर्यों की श्रेष्ठतम संस्कृति का आदिस्रोत वैदिक साहित्य ही है, जिसके महत्त्व को देश-विदेश के विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। युग-युगों से पददलिता, अपमानिता और लांछिता नारी के गौरव एवं गरिमामय तथा पावन स्वरूप की सर्वाधिक प्रतिष्ठा यदि कहीं है तो वह वैदिक साहित्य में ही देखी जा सकती है।

वैदिककाल में भी समाज का आधार पितृसत्ता प्रधान परिवार था। फिर भी वैदिककाल में स्त्री सच्चे अर्थों में गृहस्वामिनी थी, जिसे परिवार में सबके ऊपर शासन करते हुए साम्राज्ञीवत् समादरणीय स्थान प्राप्त था। वैदिकयुग में नारी अपने पुत्री, पत्नी और माता के रूप में क्रमशः स्नेह तथा दुलार, समानाधिकार और प्रेम एवं आदर और सम्मान की अधिकारिणी थी, परंतु वेदों में ऐसे स्थलों की अधिकता है, जहाँ केवल पुत्र अथवा वीर की अभिलाषा व्यक्त की गई है। फिर भी तेजस्विती पुत्री तथा शत्रुनाशक पुत्र, दोनों ही माता के परम संतोष और गर्व की वस्तु है। कन्या की उत्पत्ति कल्याणप्रद तथा उसका स्वरूप मांगलिक माना जाता था। अथर्ववेद में तो कन्या में अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण शाक्ति मानी गई है।[8]

जो भी हो इसमें संदेह नहीं कि वैदिकयुग में कन्याएँ परिवार में माता-पिता के स्नेह एवं दुलार की अधिकारिणी और समाज में पावनता की प्रतीक मानी जाती थीं। कुछ स्त्रियाँ बिल्कुल भी विवाह नहीं करती थीं और आजीवन अपने पिता के घर भाई के साथ ही रहती थीं। अतः दो प्रकार की स्त्रियाँ होती थीं–एक ब्रह्मवादिनी जो उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन करती थीं और दूसरी सद्योद्‌वाह, जो गृहस्थ में प्रविष्ट होकर वीर संतति का निर्माण करती हुई जीवन सफल बनाती थीं। मुनियों की भाँति जीवनयापन करने वाली ऋषि स्त्रियों का वर्णन भी आया है, जो धार्मिक साहित्य-सृजन की शाक्ति रखती थीं और जिनकी ऋचाएँ ऋग्वेद संहिता में उपलब्ध हैं। अल्तेकर ने सुलभा, मैत्रेयी, वाक प्राचितेई और गार्गी आदि स्त्रियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे वाचक्नवी थीं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक विदुषी नारियों के उल्लेख उपलब्ध हैं।

 ISSN 0975-735X

यही नहीं स्त्रियाँ शिक्षकों का पद भी ग्रहण करती थी। वैदिकयुग में स्त्रियाँ राजा तथा अन्य राज्याधिकारी भी बन सकती थीं और सभा एवं समिति में जाकर भाषण भी देती थीं।[9]

स्पष्ट है बाल-विवाह की कुरीति वैदिकयुग में नहीं थी। कन्याएँ अपनी शिक्षा-समाप्ति पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रशनों पर निर्णय ले सकती थीं। अपने लिए स्वयं ही पति चुनने वाली कन्याएँ प्रशांसनीय मानी जाती थीं। इसी प्रकार कन्याएँ पूर्ण स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर होती थीं। पर्दा-प्रथा का भी कहीं उल्लेख नहीं था। माताएँ स्वयं अपनी युवती कन्याओं को सुसज्जित करके उत्सव में भेजती थीं, जहाँ युवक-युवतियाँ अपनी रुचि का जीवन-साथी चुनने में सफल होते थे। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के तालाब तथा नदियों में स्नान और जल-क्रीड़ाएँ करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। कन्याओं के मित्र भी होते थे, जिनका स्वागत वे घर पर भी कर सकती थीं। संभवत: यह स्वतंत्रता जब अनुचित रूप से बढ़ गई होगी और इसके बुरे परिणाम हुए होंगे, तभी आगे चलकर स्मृतिकारों ने नारी की स्वतंत्रता पर बंधन लगा दिए होंगे।

वैदिककाल में पति-पत्नी के संबंध भी बहुत मधुर, सरस एवं मित्रतापूर्ण तथा अटूट कहे गए हैं। वैदिकयुग में विवाह, धर्म, प्रेम और आस्था का पावन बंधन था, जो सौभाग्य-प्राप्ति और कर्त्तव्यपालन के लिए कभी भी विच्छिन्न न होने के लिए बाँधा जाता था। जहाँ पति-पत्नी ऋक् और साम, धौ और पृथ्वी, वीर्य और वीर्य धारण करने वाली तथा मन और वाणी के समान एक होकर एक-दूसरे के अनुगामी बनते थे। वेदों में पत्नी के ज्ञानवती होने, घर की मुखिया, धैर्यशालिनी होने के स्पष्ट उल्लेख हैं। वह शत्रु का नाश करनेवाली है अत: पति को चाहिए कि वह उसके अनुकूल व्यवहार करे। स्त्री को पति की कामना पूर्ण करनेवाली तथा एक पत्नीव्रत धर्म को धारण करते हुए पूर्ण जीवन एक ही पति के साथ व्यतीत करनेवाली होने का आदेश भी है। साथ ही घर के संपूर्ण हितों को बढ़ाने वाली भौतिक सुखों को प्राप्त करानेवाली ज्ञानवृद्धि बनकर घर और बाहर वक्तृता देनेवाली तथा उच्च स्थान की अधिकारिणी मानी गई है।

वैदिककाल में पर्दाप्रथा का कहीं संकेत नहीं था। स्त्री पुरुष के साथ संपूर्ण सामाजिक उत्सवों में पूर्ण स्वतंत्रता से भाग लेती थी। वैदिककाल आनंद और उल्लास, प्रेम और विलास का युग था। हिंदु आर्य नृत्य और गान में रुचिपूर्वक भाग लेते थे तथा सुरा और सोम का पान करते थे। धार्मिक कर्म करने के लिए भी पत्नी समान रूप से अधिकारिणी होती थी। इसके अतिरिक्त पुरुष के अभाव में भी अकेले ही वह संध्योपासना तथा अग्निहोत्र आदि करने के योग्य समझी गई थी। पत्नी द्वारा अपराध किए जाने पर भी उदारता का व्यवहार किया जाता था। वरुण प्राद्यास यज्ञ में अपने अपराध की स्वीकृति करने पर वह यज्ञादि धार्मिक कृत्यों की अधिकारिणी बनकर समाज में पुन: प्रतिष्ठा पाती थी।

वैधव्य अपार दु:ख का कारण था। विधवाओं के पुनर्विवाह के उल्लेख भी मिलते हैं। मृतक पति के शव के साथ लेटी पत्नी (जो केवल पति के साथ जलाए जाने की परिपाटी निभाने के लिए चिता पर कुछ देर के लिए लेट जाती) को उसका देवर या कोई अन्य पुरुष मृतक के पास से उठकर जीवितों के संसार में आने का, संतान और संपत्ति प्राप्त करने का संदेश देता है। इस प्रकार विधवाओं की स्थिति सुदृढ़ और सम्माननीय थी। विधुर भी विवाह करते थे और अन्य विशोष स्थितियों में दूसरे विवाह के उल्लेख भी हैं। परंतु अनेक विवाह केवल राजा, पुरोहित या अन्य कुछ धनवान व्यक्ति ही कर सकते थे। इस प्रकार इस काल में स्त्रियाँ गौरवमयी, आदरयुक्त

और सम्माननीय जीवन-निर्वाह करती थी।

वैदिकयुग में माता का स्थान सर्वाधिक सम्माननीय व पूजनीय था। उपनिषदों में भी माता को देवतुल्य पूजने का आदेश दिया गया है। भक्त भी भावविह्वल होकर परमात्मा को पिता न मानकर माता के रूप से ममता करते हुए उनसे माता द्वारा प्राप्त होने वाले सुख-शांति तथा रक्षण की कामना की है। पुत्री के विवाह आदि में भी माता का महत्त्वपूर्ण भाग होता था। परंतु माता के अधिकार सीमित थे। यदि समाज और पिता किसी कारणवश पुत्र को त्याग देता था तो वह उसे क्षमा नहीं कर सकती थी।

इससे पता चलता है कि माता का स्थान पिता के बाद दूसरा था, फिर भी माता रूप में स्त्री अधिक सम्माननीय स्थिति की अधिकारिणी थी।

रामायणकाल में नारी

रामायण, महाभारत और गीता को भारतीय संस्कृति की पहचान माना जाता है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं रामराज्य को आदर्श राज्य की संज्ञा दी गई है और आदर्श राज्यों में स्त्रियों की स्थिति कितनी आदर्श थी, हमें विश्लेषण करना पड़ेगा। राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं और उस समय एक से अधिक पत्नियों को रखा जा सकता था। बहुपत्नी-प्रथा के बावजूद स्त्रियों में आपसी द्वेष और घृणा नहीं पाई जाती थी। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा का आपसी प्यार और सम्मान अनुकरणीय था। स्वयंवर प्रथा द्वारा लड़की अपना पति चुन सकती थी, फिर भी पिता की आज्ञा प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक था। स्वयंवर की शर्तें भी लड़की नहीं, उसका पिता तय करता था। स्त्रियों की खामोशी को आदर्श स्थिति माना जाता था, क्योंकि वाचालता कलियुग की निशानी मानी गई थी।[10]

आदर्श रामराज्य भी वेश्यावृति से अछूता नहीं था। वेश्याओं का इस्तेमाल उच्चवर्ग और राजाओं के मनोरंजन के लिए किया जाता था। राजा दशरथ के राज्य में भी वेश्याएँ थीं और रिझाने का कार्य करती थीं। महाराज मुनि के राज्य दरबार में आने से मना करने पर भला दशरथ कहते हैं कि 'अगर सुंदर आभूषणों से विभूषित होकर मनोहर रूप वाली वेश्याएँ वन में जाएँ और भाँति-भाँति के उपायों से उन्हें लुभाएँ तो वे इनके पीछे पीछे नगर में आ जाएँगे। तब नगर की मुख्य मुख्य वेश्याएँ राजा का आदेश सुनकर वन में गईं और मुनि के आश्रम से थोड़ी दूरी पर ठहरकर उनको लुभाने का उद्योग करने लगीं।'

पति-पत्नी का संबंध अत्यंत पवित्र और विश्वास वाला माना जाता रहा है। दोनों को जन्म जन्म का साथी माना जाता है और प्रत्येक दुख-सुख में संग रहने का विश्वास दिलाया जाता है। राम को आदर्श पति और सीता को आदर्श पत्नी माना जाता रहा है। हमारी संस्कृति में राम जैसा पति पाने की इच्छा प्रत्येक कन्या करती है, क्योंकि राम सीता को केवल प्रेम ही नहीं करते थे, बल्कि सम्मान भी देते थे। ऐसा माना जाता रहा है कि सीता के लिए ही उन्होंने रावण का संहार किया था। परंतु राम ने रावण के संहार के कुछ दूसरे कारण माने और रावण को सीता के लिए नहीं बल्कि सदाचार की रक्षा, सब ओर फैले हुए अपवाद का निवारण तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे हुए कलंक का परिमार्जन करने के लिए मारा।

राम को आदर्श राजा और पति होने के नाते जहाँ सीता को सम्मान के साथ अपने राज्य

अयोध्या लाना चाहिए था, क्योंकि वे समझते और जानते थे कि सीता के अपहरण में सीता का कोई दोष नहीं था।

रामराज्य का अध्ययन करते हुए हमें कई बार कष्टपूर्ण वचनों से गुजरना पड़ता है। सीता को अपन पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए अग्निपरीक्षा से गुजरना पड़ता है। इतना ही नहीं इन्हें दोबारा वनगमन करना पड़ता है, जबकि गर्भावस्था स्त्री की वेदशास्त्रों में पूजा की गई है और उसकी सेवा एवं देखभाल को पवित्र माना गया है। वनगमन का कारण था–राम द्वारा एक साधारण जन से सीता की पवित्रता के बारे में संदेह जताते हुए सुन लेना।

अपने निर्णय की सफाई में कहते हैं, जिस किसी भी प्राणी की अपकीर्ति लोक में सबकी चर्चा का विषय बन जाती है वह नरक में गिर जाता है और जब तक उस अपयश की चर्चा होती है, तब तक वह वहीं पड़ा रहता है।

सच समाज के आदर्श पुरुष को नरक से तो बचना ही चाहिए और सीता के मौन के पीछे माना जा सकता है कि केवल उनका संस्कारों में पालन-पोषण ही इसका कारण नहीं रहा होगा, बल्कि पति-परमेश्वर की आज्ञा का पालन करना ही उसका सर्वधर्म था।

स्वयंवर-प्रथा, कन्याओं के प्रति सम्मान और प्रेम पति के साथ एक सिंहासन या एक स्तर पर बैठने का अधिकार आदि में दोनों काल सम्मान ही दृष्टिगोचर होते हैं। परंतु स्वयंवर में लड़की स्वयंवर का चुनाव न करके रामायणकाल की ही तरह शर्तों के अनुसार आचरण करने वाले कुमार को ही वरमाला डाल सकती थी या पिता द्वारा निर्देशित व्यक्ति को ही जीवनसाथी बना सकती थी। जैसा कि द्रौपदी स्वयंवर में हमने पढ़ा है। परंतु स्वयंवर भी कभी-कभी युद्ध के अखाड़े बन जाते होंगे। क्योंकि ताकतवर राजकुमार जो कन्या का बलपूर्वक अपहरण कर सके, का बोलबाला था। भीष्म का कहना 'क्षत्रिय स्वयंवर की प्रशंसा करते और उसमें जाते हैं, परंतु उसमें भी समस्त राजाओं को परास्त करके जिस कन्या का अपहरण किया जाता है, धर्मवादी विद्वान क्षत्रिय के लिए उसे सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।' भीष्म द्वारा स्वयं भी अंबा, अंबिका, अंबालिका का अपहरण किया गया था।

नियोग-प्रथा प्रचलन में थी, अर्थात् पति की मृत्यु के पश्चात् पति के भाई या नगर के श्रेष्ठ पुरुष द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए संभोग करना। महाभारत में शांतनु के छोटे पुत्र विचित्रवीर्य के देहांत के पश्चात् शांतनु की पत्नी सत्यवती व्यास से कहती है कि जैसे एक पिता के नाते भीष्म उसके भाई हैं, उसी प्रकार एक माता के नाते तुम भी विचित्रवीर्य के भाई हो। अत: उसकी पत्नियों से पुत्र-प्राप्ति करो।

महाभारत काल में भी स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। तब भी स्त्री मात्र अपने पति की संपत्ति के रूप में होती थी। जिसे चाहे जैसे इस्तेमाल किया जाता था। फिर स्वयं की रक्षा के लिए उसे दाँव पर लगा देना पत्नी का सौभाग्य माना जाता था। यूँ भी रीत प्रचलित थी, आपत्ति के लिए धन की रक्षा करें, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करें और स्त्री तथा धन दोनों के द्वारा अपनी रक्षा करें।

सती-प्रथा का प्रचलन था और सती को सम्मान, पूजा और आदर दिया जाता था। क्योंकि माना जाता था कि पति की मृत्यु के साथ मृत्यु स्वीकार करना पति के लिए महान फलदायक होता है। जो स्त्री साध्वी होती है, वह अपने पति की मृत्यु हो जाने के बाद ब्रह्मचर्य के पालन

में अविचल भाव से लगी रहती है, यम और नियमों के पालन का क्लेश सहन करती है और मन, वाणी एवं शरीर द्वारा किए जाने वाले शुभ कर्मों तथा व्रत, उपवास और नियमों का अनुष्ठान करती है। वह क्षार और लवण का त्याग करके एक ही बार भोजन करती है और भूमि पर शयन करती है। वह जिस किसी प्रकार से भी अपने शरीर को सुखाने के प्रयत्न में लगी रहती है। अर्थात् अगर पति की मृत्यु हो जाए तो पत्नी के लिए सब-कुछ समाप्त समझा जाता था और उसकी दैनिक आवश्यकताओं को स्वार्थ और पाप समझा जाता था।

समाज में एक पति एक पत्नी के आदर्श के अनुसार भी स्त्री पुरुष के दोहरे मापदंड अपनाए जाते थे। बहुत सी स्त्रियों से विवाह करने वाले पुरुषों को भी पाप नहीं लगता। पुत्री को इस काल में भी संकट माना जाता था। पुत्र अपनी आत्मा है, पत्नी मित्र है किंतु पुत्री निश्चय ही संकट है।

रामायण में जिस प्रकार सीता रावण द्वारा बलात् अपहरण के बाद अपवित्र मान ली गई थी, उसी प्रकार द्रौपदी चाहे अपने पति द्वारा जुए में हरवा दी गई हो, चाहे दु:शासन द्वारा बलपूर्वक भरी सभा में केशों से खींचकर लाई गई हो, तब भी अपवित्र उसे ही होना पड़ा। भीम द्वारा कहना कि हमारी धर्मपत्नी द्रौपदी के शरीर का बलात् स्पर्श करके दु:शासन ने उसे अपवित्र कर दिया है। इससे हमारी संतान रूपी ज्योति नष्ट हो गई, जो पराये पुरुष से छू गई, उस स्त्री से उत्पन्न संतान किस काम की होंगी।

भगवद्यान पर्व में राजा ययाति द्वारा आठ सौ श्यामवर्ण घोड़ों के लिए अपनी कन्या गालव को बेच दी। साथ ही वो अपनी पुत्री को बाजार की वस्तु की तरह पेश करते हुए कहते हैं, इसके शुल्क के रूप में राजा लोग निश्चय ही अपना राज्य भी आपको दे देंगे। फिर आठ सौ श्यामवर्ण घोड़ों की तो बात ही क्या है।[11]

अत: उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् महाभारत काल में स्त्रियों की स्थिति को लेकर कोई संशय नहीं रह जाना चाहिए।

बौद्धकाल में नारी

भगवान बुद्ध ने यद्यपि स्त्रियों को भी बौद्धधर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करके उस युग की सर्वाधिकारों से वांचित, वांछित, प्रताड़ित एवं पतित समझी जाने वाली नारी-जाति के लिए उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया। तथापि नारी जिसे समाज ने सब दोषों का मूल मान लिया था, विशेष सम्मान की अधिकारिणी न बन सकी। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि बौद्धकाल में स्त्रीजाति के प्रति संवेदना का स्वर ध्वनित हुआ।

आरंभ में बुद्धदेव स्त्रियों के संघ में प्रवेश के पक्ष में नहीं थे, परंतु उनके शिष्य दयालु आनंद ने स्त्रियों की दुरवस्था तथा सास-ननद के अत्याचारों से पीड़ित वधुओं की दारुण व्यथा से द्रवित होकर स्त्रियों को मठों में शरण देने की प्रार्थना की। 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि, धम्मम शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि' का अमृत मंत्र मानवमात्र के उद्धार का मूल मंत्र था। अत: विवाहिता-अविवाहित, विधवा, वेश्या और पतिता, प्रत्येक दुखिनी के लिए संघ का द्वार खोल देना पड़ा, क्योंकि नरकतुल्य गृह की सीमाओं के बंधन से मुक्त होने के लिए स्त्रियों के लिए बौद्धमठ ही एकमात्र आधार था। जिसके अनुकरण के लिए उन्होंने उनके लिए अनेक कठोर नियम भी

 ISSN 0975-735X

बनाए थे। लेकिन बौद्धविहारों में स्त्री-पुरुषों के संसर्ग से उत्पन्न दोषों को रोका न जा सका। बौद्धधर्म के पतन का यह भी एक कारण बना। शायद यही कारण रहा होगा कि निवृत्तिपथ पर आरूढ़ संन्यासी बौद्धधर्मावलंबियों ने जिन बौद्धगाथाओं का चित्रण जावक साहित्य में किया, उसमें स्त्री-मात्र के प्रति सीमातीत घृणा, अविश्वास एवं अपमान का स्वर ध्वनित होता है। निवृत्ति पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहन हेतु बौद्धसाहित्य में स्त्री-मात्र पर हीनतम, वीभत्स, घृणित तथा पतनकारी कुकृत्यों के लांछन लगाए। अब तक स्त्रियों की चाहे कितनी भी भर्त्सना क्यों न हुई हो, परंतु मातृरूप में वह सदा ही पूजनीय रही है। जातक कथाओं में माता को पुत्र के साथ व्यभिचार के लिए उद्यत तथा एक अन्य वृद्ध आचार्य की अति वृद्धा तथा अंधी माता का एक युवक शिष्य पर आसक्त होकर अपने पुत्र का वध करने की अभिलाषा करते हुए दिखाया है, जिससे वह निश्चिंत होकर भोग-विलास कर सके। इस प्रकार जातकों में स्त्रियों को अस्वाभाविक रूप से असाध्वी तथा दीपशिखा की भाँति सबको भस्म कर देने वाली कहा गया है। कामविह्वल हो जाने पर स्त्रियों में असंयम, असंतुष्टि तथा अमर्यादा की कोई सीमा नहीं रह जाती। इससे विदित होता है कि बुद्धसाहित्य में स्त्रीनिंदा प्रकाष्ठा पर पहुँच गई है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भले ही भगवान बुद्ध और उसके आनंद जैसे कुछ शिष्यों ने स्त्रियों के उद्धार का प्रयास किया और उनके प्रति उदारता का दृष्टिकोण रखा, परंतु उस युग के समाज और साहित्य दोनों में नारी की स्थिति शोचनीय तथा अपमानजनक थी।

जैनकाल में नारी

जैन और बौद्ध दोनों धर्मों के दार्शनिक सिद्धांत लगभग एक समान ही हैं। दोनों ही धर्मों में मोक्ष का साधन संन्यास माना गया है। श्री दिनकर ने कहा है कि जैन महात्मा तो इंद्रिय-सुखों के घोर शत्रु हैं। उनका विचार है कि पाप करने से ही जन्म होता है। अधिक पाप करने से मनुष्य को विवाह करना तथा गृहस्थी के अनेक जंजालों में पड़ना पड़ता है। अत: भोग-आसक्ति ही पाप है। जैनधर्म के मतानुसार मोक्ष का सेवन केवल संन्यासी ही कर सकते हैं।

माता के रूप में नारी-जाति को यहाँ भी आदर-मान मिला है। माता का भरण-पोषण और उसकी सुरक्षा कर्त्तव्य कहा गया है। जैन तीर्थंकरों में मल्लीनाथ का उल्लेख मिलता है। कुछ श्राविकाओं का वर्णन भी आया है। उमाकांत प्रेमानंद शाह ने 'जक्कय वे नगर' खंड की अधिकारिणी का वर्णन किया है, जो पति की मृत्यु पर नियुक्त की गई थी। परंतु ये कुछ गिने-चुने उल्लेख नारी-मात्र की सुदृढ़ स्थिति के प्रमाण नहीं माने जा सकते। क्योंकि निवृत्ति-मार्ग की अवरोधक नारी-जाति के प्रति जैन मतावलंबियों के विषबुझे वाक्य बाण नारी-मात्र की स्थिति को हीन बनाने वाले हैं।

जैन आचरांग सूत्र के अनुसार स्त्रियों को सुख का साधन समझना पुरुषों की मूर्खता है। क्योंकि स्त्रियाँ अज्ञान, दु:ख, मृत्यु और नरक का द्वार हैं। जैनधर्म के ग्रंथों में स्त्रियों का प्रेम अस्थायी, स्त्री रूपी हाथी वासनाओं का गढ़, तीक्ष्ण विष तथा उसका सुख प्रवंचना-भर ही माना गया है। स्त्री-मात्र को एक जहरीला पत्थर कहा गया है, जो लगते ही मृत्यु को बुलाता है। अत: उसके प्रकोप से बचना चाहिए।[12]

दिनकर के मतानुसार बौद्ध और जैनमतावलंबियों के मतों का भीषण प्रभाव यह हुआ है

कि समाज में नारी के प्रति घृणा और विरक्ति उत्पन्न हुई तथा उसका दृष्टिकोण अमानुषिक अर्थात् इस जीवन के सुखों के स्थान पर मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाले सुखों की प्राप्ति पर विचार करने का बन गया।

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैनसाहित्य में भी कटु वाणी में नारी की निंदा का उद्घोष हुआ है।

भक्तिकाल में नारी

इस समय तक मुस्लिम आक्रमणकारियों ने धर्म के प्रचार व आर्थिक लाभ के उद्देश्य से भारत में अपना शासन स्थापित कर लिया था। 1206 शाहबुद्दीन गौरी की पृथ्वीराज चौहान पर विजय के साथ ही क्षत्रियों की राजनीतिक शक्ति समाप्त हो गई। दूसरी ओर हिंदू-समाज में जाति-व्यवस्था अच्छी तरह से स्थापित हो चुकी थी। कर्मकांडों, संस्कारों व मूर्तिपूजा का जोर होने के कारण, ब्राह्मण अपने आपको सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित कर चुके थे तथा शूद्रों के साथ उनके दुर्व्यवहार की चरमसीमा पार कर चुके थे। भारत में 12वीं शती में रामानुजाचार्य द्वारा चलाया गया भक्ति-आंदोलन क्रमशः फैला। 'सगुण भक्ति' की अनेक शाखाएँ महान धार्मिक गुरुओं जैसे कि रामानुज, माधव, निम्बार्क, चैतन्य तथा अनेक संतों जैसे कि रामानंद, कबीर, नानक, तुलसी, मीरा, ज्ञानदेव, नामदेव, रैदास, चरणदास आदि के नेतृत्व में अस्तित्व में आईं, जिनकी विशेषता मानवतावाद होने के कारण उनका प्रभाव निम्न जातियों पर अधिक पड़ा। क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य लिखा गया, क्योंकि संस्कृत पर उच्चवर्ग का कब्जा था।

भक्ति-आंदोलन का भारतीय स्त्रियों की स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा। अब तक महिलाएँ और ज्यादा कठोर नियमों में बँध गई थीं। वजह बताई गई मुस्लिम शासकों का कुप्रभाव। स्त्री-शिक्षा प्रायः समाप्त हो गई। परदा-प्रथा को और भी प्रोत्साहन मिला। लड़कियों के विवाह की उम्र 4 साल तक भी कर दी। बेमेल विवाहों की संख्या बढ़ गई। विधवा-विवाह पूर्ण रूप से बंद हो गए। सती-प्रथा चरम सीमा पर पहुँच गई। उन्हें जन्म से मृत्यु तक पुरुष के अधीन कर दिया गया तथा उनके समस्त अधिकार व स्वतंत्रता छीनकर गृहस्थी को ही उनकी समस्त क्रियाओं व आशाओं का एकमात्र केंद्र बना दिया गया। परंतु भक्ति-आंदोलन के समानतावादी व मानवतावादी आदर्शों ने स्त्रियों को भी भक्तिमार्ग के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के लक्ष्य की ओर प्रेरित किया तथा परिणामस्वरूप कई महिला संत भी इस समय प्रसिद्ध हुईं, जिनमें मीराबाई, जनाबाई, मुक्ताबाई आदि हैं। परंतु एक ओर मुस्लिम समाज की बहु-विवाह व पर्दाप्रथा का प्रभाव व दूसरी ओर हिंदू-समाज की कट्टरता के आदर्शों के नियंत्रण, कन्यादान का आदर्श, अपनी जाति में विवाह, पूर्वज श्राद्ध में पुत्र का महत्त्व, उपनयन संस्कार द्वारा केवल पुत्रों को ही धार्मिक शिक्षा का अधिकार, पतिव्रत धर्म द्वारा नैतिकता का दोहरा मापदंड, विधवा का अनाकर्षक वेष, विभिन्न प्रतिबंध, सती-प्रथा आदि हिंदू-समाज में कठोरता के साथ माने जाते रहे तथा ब्रिटिश शासनकाल तक स्त्रियों की स्थिति गिरती ही चली गई। वह पूर्ण रूप से पुरुषों के अधीन हो गई। वह घर की चारदीवारी के अंदर कैद होकर रह गई।

भक्तिकाल में नारी के दो रूपों का चित्रण हुआ। प्रथम पतिव्रता नारी और द्वितीय अध्यात्म साधना के मार्ग की अवरोधक माया रूपी नारी। युगों-युगों से धार्मिक अधिकारों से वंचिता नारी

 ISSN 0975-735X

को भक्ति का वरदान भी इस युग में मिला और संत चरणदास की शिष्याएँ सहजोबाई, दयाबाई, संतकाव्य में योगदान करके सम्मान की अधिकारिणी बनीं। भक्तिकाल में पतिव्रता नारी का एकनिष्ठ पत्नीत्व तथा वात्सल्यपूर्ण मातृत्व आकर्षण का केंद्र था। अन्यथा स्त्री-मात्र पर दृष्टिपात नरककुंड में गिराने वाला और नारी का स्नेह रसातल को प्रेषित करने वाला कहा गया है।[12]

भक्तों और संतों का जीवन तप, त्याग, वैराग्य और निवृत्ति पथ का अनुगामी है। अंत: वैरागी जीवन की अवरोधक नारी पूर्ण कटुता से निंदा और भर्त्सना की पात्र बनी है। उनकी दृष्टि में नारी केवल पतन की ओर प्रेरित करने वाली नागिन, बाघिन, विषफल, विषबेली, त्रियोगुण विनाशिनी, साक्षात् नरक की कुंड है। अत: वह सर्वथा त्याज्य है। नारी-निंदा की उस झोंक में कवि नारी के मातृत्व की भी अवहेलना कर बैठे हैं। उग्रवाणी में निंदा करने पर भी संतकवि स्त्रीत्व की गरिमा और पतिव्रता की दृढ़ता से अभिभूत नारी के सत रूप के प्रति आकर्षित हुए हैं। फलत: उनकी वाणी प्रतीकरूप में स्वयं (भक्त) को भी प्रभु की प्रेयसी, पत्नी और स्वकीया, नायिका मानकर दांपत्यभाव की सरस और मनोहर स्वरूपों में अभिव्यंजित हुई है। नारी के मातृत्व के उदार, क्षमाशील पक्ष के प्रकाश में संतों ने परमात्मा को माता और स्वयं को बालक का प्रतीक मानकर नारीहृदय के मातृपक्ष का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है।

अत: कहा जा सकता है कि भक्ति के क्षेत्र में नारी को अधिकार दिया गया है, परंतु समाज में साधारण नारी उनकी उपेक्षा, घृणा और निंदा की पात्र रही है।

1857 **से** 1900 **ईस्वी तक का योगदान**

इसे भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं। पहला 1857 का संघर्ष और उसमें महिलाओं का योगदान। दूसरा 1858 से 1900 तक के मध्य महिलाओं में राजनीतिक चेतना का जाग्रत होना। 1857 की लड़ाई पहला संगठित शस्त्र-आंदोलन था, जो अँग्रेजों के खिलाफ किया गया। लड़ाई के प्रमुख नेताओं में महिला और पुरुष दोनों ही थे। महिलाओं में प्रमुख थीं बेगम हजरत महल, रानी लक्ष्मीबाई, रामगढ़ की रानी तेशीबाई इत्यादि। इनमें से किसी ने सेना का नेतृत्व करते हुए युद्ध में अँग्रेजों का सामना किया तो कुछ कैद की यातनाएँ और मृत्यु को स्वीकार करते हुए संघर्षरत रहीं।

नारी जागरूकता आंदोलन

बंगाल और महाराष्ट्र में समाज-सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराइयों पर आवाज उठाना शुरू कर दिया। स्त्रियों को शिक्षित करने के महत्त्व पर राजा राममोहन राय द्वारा आत्मीय सभा द्वारा सार्वजनिक बहस छेड़ी गई। सतीप्रथा, बालिका-वध, बालविवाह आदि स्त्री-विरोधी प्रथाओं का विरोध शुरू हुआ। इसका हम क्रमवार वर्णन करेंगे–

1829 ई॰ में विलियम बैंटिक द्वारा सती निर्मूलन एक्ट पास किया गया।

1856 ई॰ में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित किया गया।

1880 ई॰ के उत्तरार्द्ध से अनेक कुलीन आर्यसमाजियों ने कन्या पाठशालाएँ खोलीं।

1910 से 1920 का दशक ऐसा था, जिसमें सर्वप्रथम अखिल भारतीय महिला संगठनों के प्रयास आरंभ हुए।

1917 ई॰ में नारी-उत्थान के लिए महिलाओं की भारतीय परिषद् का गठन हुआ।

1927 में अखिल भारतीय महिला परिषद् का गठन हुआ।

1929 में अखिल भारतीय शिक्षा कोष का गठन हुआ।

1949 ई॰ में स्नातिका संघ का गठन हुआ।

1945 ई॰ कस्तूरबा गांधी मैमोरियल ट्रस्ट की स्थापना हुई।

1953 ई॰ में समाज कल्याण संस्था का गठन हुआ।

1953 ई॰ में संयुक्त राष्ट्रसंघ की अध्यक्ष विजयलक्ष्मी पंडित बनीं।

इनके इलावा भी अनेक बदलाव सामाजिक स्तर पर हुए। नारी-समस्या को लेकर लगातार संघर्ष किए गए, जो आज भी जारी हैं। कुछ ज्यादा ही ज्वलंत मुद्दों को देखा जाए तो उनमें दहेज-प्रथा और बलात्कार जैसे विषय, जो नारी की मौत पर जाकर ही खत्म होते हैं, इनके खिलाफ भी लगातार आवाज उठाई जाती रही है।

संदर्भ

1. डॉ॰ बल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ॰ 36-37
2. कल्याणी, नारी विशेषांक, पृ॰ 130
3. डॉ॰ वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ॰ 39-40
4. नरेशकुमार, हिंदी व्युत्पति कोश, पृ॰ 178
5. द्वारकाप्रसाद शर्मा व झा, 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ', पृ॰ 36
6. डॉ॰ बल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ॰ 36
7. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, तृतीय खंड, पृ॰ 250
8. अथर्ववेद 10/3/20 तथा 12/1/25
9. मेरा धर्म: प्रियव्रत वेद वाचस्पति, पृ॰ 23 पर अथर्ववेद 7/38/4 और 2/3/52 का उल्लेख करने हेतु ऐसी स्त्रियों का वर्णन किया है।
10. ऋग्वेद 10/27/12
11. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण पृ॰ 7, 8, श्लोक 2
12. संत सुंदरदास, पृ॰ 663

788, **वार्ड नं॰** 20
गली नं॰ 2, **देवीगढ़ रोड**
कैथल (हरियाणा)

ISSN 0975-735X

परसाई की भाषा

डॉ॰ गुड्डी बिष्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
दिगपाल सिंह, शोधार्थी
हे॰न॰ब॰ग॰ केंद्रीय विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल

भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है, 'बोलना या कहना'। डॉ॰ भोलानाथ तिवारी ने भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है–'भाषा मानव-उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं, लेखक, कवि या वक्ता रूप में अपने अनुभवों एवं भावों आदि को व्यक्त करते हैं तथा अपने वैयक्तिक और सामाजिक व्यक्तित्व, विशिष्टता तथा अस्मिता (Identity) के संबंध में जाने-अनजाने जानकारी देते हैं।'[1]

भाषा अभिव्यक्ति का साधन है–सशक्त, संपूर्ण और सर्वोत्तम। युग-परिवेश, संदर्भों और भावों के सापेक्ष यह भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करती है। यही वजह है जिससे भाषा को उपर्युक्त विशेषण मिले हैं। भाषा की परिवर्तनशीलता और जीवंतता ही उसे जिंदा रखती है।

परसाई हिंदी के अप्रतिम व्यंग्कार हैं। ऐसा बिरला ही दिखने में आता है कि कोई व्यक्ति एक ही साथ किसी विधा को जन्म भी दे गया और उसे उत्कर्ष पर पहुँचा गया। इस अप्रतिमता और उत्कर्षता के दो कारण हैं–परसाई का तीव्र युगीनबोध और बोध को व्यक्त करने वाली भाषा। यही कारण था जिससे परसाई संभवत: स्वतंत्र भारत के सर्वाधिक पढ़े जानेवाले लेखकों में सम्मिलित किए जाते हैं।

व्यंग्य भी परिस्थितियों की उपज है। भाव और शिल्प दोनों में अन्योन्याश्रित संबंध है। परिस्थितियाँ दोनों को साथ-साथ बदल देती हैं। जटिल से जटिलतर होता जीवन जब साहित्य में अभिव्यक्त होता है तो साहित्य से कलात्मक आग्रह दूर पड़ जाता है। परसाई ने सीधी, सरल व सभी के अनुभव-क्षेत्र में आनेवाली भाषा में अपना युगीनबोध अभिव्यक्त किया। एक तरफ उत्कृष्ट व पैनी जीवन-दृष्टि और दूसरी तरफ सीधी व सपाट भाषा। यह काम इतना आसान नहीं रहता। इसे कोई बड़ा रचनाकार ही अंजाम दे सकता है। 'परसाई की कहानियाँ जितनी सरल और सीधी हैं, उससे लोगों को यह गलतफहमी भी होती है कि उनका अनुभव-संसार भी उतना ही सरल, सीधा और सपाट होगा। सीधी और सरल भाषा एक बेहद परिपक्व, वयस्क और गहरे चिंतन-मनन का नतीजा होती है।'[2]

परसाई की भाषा ने आलोचनाशास्त्र को नया धरातल तलाशने हेतु विवश कर दिया। 'कहानी और कविता या किसी भी विधा के अपने साँचे शास्त्र बनाता है, लेकिन कोई एक कबीर, कोई एक निराला, कोई एक मुक्तिबोध और कोई एक परसाई आकर उन सारे साँचों को

छिन्न-भिन्न कर एक किनारे रख देता है और आपको नए सिरे से एक रचनाशास्त्र की जरूरत महसूस होती है।'[3] इसका कारण क्या था? कारण यह था कि परसाई ने शब्द कहाँ से लेने हैं। यह नहीं देखा, देखा तो केवल शब्दों की व्यंजकता। जिन शब्दों को अन्य लेखकों ने छूना भी उचित न समझा, परसाई ने उन्हीं शब्दों को चमकाकर रख दिया। मातृभाषा बुंदेली, उर्दू, फारसी, अँग्रेजी, संस्कृत, देशज, गली-चौराहों पर प्रयुक्त होने वाले विभिन्न कार्यस्थलों के अनौपचारिक बातचीत के ढेलों, दुकानों व बाजारों आदि में जो भी भाषा प्रयुक्त होती है, उसे प्रसंगानुकूल प्रयुक्त किया है। 'परसाई जी को शब्दों के सिक्के कुठौर से बीनने में कोई संकोच नहीं होता था।'[4]

परसाई की भाषा में गजब की प्रभविष्णुता है, वे भी तब जबकि स्तंभ लेखक को रोज कुआँ खोदकर पानी पीना पड़ता है। उनकी इस प्रकृति के बारे में कहें तो 'परसाई भी उन लेखकों में है जिन्हें अँग्रेजी में First draft writer कहते हैं। वे अपनी रचनाओं को न तो 'फेअर' करते थे, न उनमें संशोधन। जो भी काँट-छाँट करनी होती, उसी First draft में करते और उसे वैसा ही प्रकाशन के लिए भेज देते।'[5]

परसाई की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी बहुरूपता है। उनके लिए वह हर एक शब्द, चाहे वह किसी भी भाषा का हो, काम का है बशर्ते वह संप्रेषणीयता व प्रहार करने में योगदान दे। 'कबीर, तुलसी आदि संतकवियों और खुसरो, मीर, गालिब से लेकर ठेठ आम तक हिंदी-उर्दू जितने रूप हमारी भाषा में हो सकते हैं, परसाई के गद्य में उन सभी का स्वाद भिन्नता है।'[6]

परसाई की भाषा सहज, सरल व सपाट है, किंतु यह परसाई की विशिष्टता ही है कि संस्कृत के शब्दों का वर्तमान प्रसंगों में जिस तरह वे प्रयोग करते हैं, उससे भाषा दुरूह नहीं हुई बल्कि कुछ अधिक ही चुटीली व प्रभावशाली हो गई। 'जो विदेशी हमारे माल में मिलावट की शिकायत करते हैं, वे नहीं जानते कि यह मिलावट नहीं है, 'समन्वय' है, जो हमारी संस्कृति की आत्मा है।'[7]

'यह कैसा बसंत आया' में परसाई बसंत के माध्यम से संस्कृतनिष्ठ भाषा में वर्तमान संदर्भों को उजागर करते हैं। यहाँ संस्कृत का मोह नहीं है, बल्कि व्यंजकता का आग्रह है, 'तो क्या मनुष्य परमहंस हो गया-योगी है जो आत्मसाधना के उस सोपान तक पहुँच चुका है जहाँ सुख-दुख की अनुभूति स्पर्श नहीं करती? या अनादिकाल से सहस्रों नर-नारियों के हृदयों में प्रविष्ट हो, सहस्रों मानिनियों के दर्प-युग के प्रकोष्ठ तोड़ निर्मोही के कठोर हृदय को बेधते-बेधते मढ़न के पंचश कुंठित हो गए हैं। तभी तो कोई सिंहरन-उत्पीड़न दृष्टिगोचर नहीं होती।'[8]

'शिवशंकर का केस' में अँग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से प्रवाह व चुटीलापन बढ़ गया है।' हाँ-हाँ, खास-खास ही बता रहा हूँ, राय 'लीव' पर चला गया, श्रीवास्तव की इनक्वायरी हो रही है, भगतसिंह अभी फॉरेस्ट में गया है, बंदोबस्तकर को स्पेशल ड्यूटी पर भेज दिया। सेंगर डेवलपमेंट में चला गया, जी॰के॰ टान्सपोर्ट में गया, रेवन्यू में कश्यप फिर आ गया, शंकर पी॰ए॰डी॰ में चला गया।'[9]

उर्दू-फारसी के शब्दों का पात्रानुकूल व संदर्भानुसार प्रयोग भाषा के फलक को विचार देता है। यहाँ परसाई दो काम एक साथ, साधते हैं, भाषा के नए-नए क्षितिज और विचार की प्रभावशीलता 'आपका कीमती वक्त जाया कर रही हूँ। आप बहुत मेहनत करते हैं। हम सब

 ISSN 0975-735X

शुक्रगुजार हैं। तारीख में मुझे ये कल पढ़ना है। मैंने ही तैयार कर लिया हैं, मगर आपकी नजर इनायत हो जाय!'[10]

ख्यालात, अलाल, मरहूम, सदर मुकाम, संगीन, ताल्लुकात, मारफत, दरख्वास्त, किफायत, खलास, वियाबान, मुलाजिम, तर्जेबयाँ आदि शब्दों का प्रयोग कर परसाई ने हिंदीभाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता में विस्तार किया है।

भाषा की प्रवाहशीलता देशज व आम बोलचाल में प्रयुक्त शब्दों में से पर्याप्त बढ़ी है, साथ ही इन शब्दों के प्रयोग से उनकी व्यंग्य-रचनाओं में हास्य का भी पुट आ गया है–

धप्प, टीम-टाम, दंदी-फंदी, बौड़म, धड़धड़ाना, भुनभुनाना, धुकधुकी, अचकचाना, हुल्लड़, उमेठना, फौंड़ा, टुच्चा, उचक्का, चूमा-चाटी, धुकधुकी, ऐंचक-बेंचक आदि।

भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रों की भाषा का अपना स्वरूप होता है। उसी स्वरूप को लेकर जब परसाई ने व्यंग्य लिखे तो भाषा पाठक को प्रफुल्लित कर देती है। जैसे 'यान के पास पहुँचकर मातादीन ने मुंशी अब्दुल गफूर को पुकारा-'मुंशी'! गफूर ने एड़ी मिलाकर सेल्यूट फटकारा। बोली–'जी पेक्टसा! एफ॰आई॰आर॰ रख दी है?'

'जी पेक्ट सा।'

'और रोजनामचे का नमूना?'

'जी पेक्टसा!'

'हमारे घर में जचकी के वखत अपने खटता (पत्नी) को मदद के लिए भेज दिया।'[11]

'सुदामा के चावल' में परसाई मिथक को लेकर वर्तमान भष्टाचार के तरीकों को खोलकर रख देते हैं। यहाँ वे एक शब्द 'खुरचन' का प्रयोग कर व्यंग्य को पैनी धार दे देते हैं। 'अरे कुछ खुरचन का सिलसिला भी है या यों ही मिलने चला आया है।'[12]

परसाई की एक विशिष्ट खासियत भी है–एक वाक्य को बार-बार प्रयोग कर रचना बोझिल नहीं होती, बल्कि वह चरित्र को पूर्णरूपेण उजागर कर देती है। सज्जन, दुर्जन और काँग्रेसजन में भैया सा'ब हर एक सवाल का उत्तर 'चाचा नेहरू जिंदाबाद!' कहकर देते हैं, जिससे नेताओं के कई चरित्र उजागर हो जाते हैं।

'मैंने कहा 'भैया सा'ब' समाजवादी रचना का जो आपका ध्येय है, उसकी रूपरेखा पिछली तीन योजनाओं के संदर्भ में समझाने की कृपा करेंगे?'

भैया साब इस बार सोफे पर चढ़ गए और चिल्लाए 'चाचा नेहरू जिंदाबाद! जवाहर चाचा जिंदाबाद।'[13]

व्यंग्य के संदर्भ में परसाई का मत स्पष्ट है। घुमाव-फिराव उन्होंने व्यंग्य को परिभाषित करने में भी नहीं किया। वे कहते है 'व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों-मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।'[14]

इन तमाम विसंगतियों-मिथ्याचारों से भरे समाज से परसाई ने कुछ ऐसे सूत्र खोजे हैं, जो वर्तमान समय के सत्य बन गए हैं। आदत वाक्य बनकर रह गए है। जब परसाई की भाषा में ये व्यक्त होते हैं तो पूरी सिद्दत के साथ झकझोरते हैं। 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में वे बेलौग भाषा में लिखते हैं–'इस देश में जो जिसके लिए प्रतिबद्ध है, वही उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध लोग ही लेखक की स्वतंत्रता छीन रहे हैं।'[15]

'अरस्तू की चिट्ठी' में वे लिखते हैं–'आयुष्मान, तुम देखते होगे कि जबसे जाँच शुरू हो गई, तबसे दूध में ज्यादा पानी आने लगा है।'[16]

'जाँच कमीशन, सरकार का कुल्ला' का विचार व भाषा देखिए–'कमीशन वह गली है जिसमें से सरकार छिपकर निकल जाती है, क्योंकि आम सड़क पर समस्याएँ जमघट किए हैं।'[17]

भाषा एक औजार है, कुशल शिल्पी के हाथ में गई तो मारक क्षमता बढ़ जाती है ठीक उसी तरह जिस प्रकार किसी औजार से बच्चा और प्रौढ़ भिन्न-भिन्न परिणाम देते हैं। प्रौढ़ लेखक उसमें एक धार देता है। परसाई ने भाषा में यह धार सामान्यजन की सीधी व सपाट भाषा से दी है। 'जनजीवन में किसी लेखक की कहानियों का इस हद तक प्रवेश और उनकी इस हद तक रसाई किसी के लिए भी काबिले-रश्क है।'[18]

अंत में कांतिकुमार जैन के शब्दों में परसाई और उनकी भाषा विशिष्टता के बारे में कहें तो–'कभी-कभी सोचता हूँ कि परसाई अपना व्यंग्य जयशंकर प्रसाद की भाषा में लिखते या रमेश कुंतल मेघ की भाषा में तो क्या होता? व्यंग्य तो नहीं ही होता, परसाई का व्यंग्य तो हरगिज नहीं होता।'[19]

संदर्भ

1. भाषाविज्ञान, डॉ॰ भोलानाथ तिवारी, पृ॰ 5
2. परसाई रचनावली भाग-1, पृ॰ 18
3. वही, पृ॰ 10
4. आपका परसाई, डॉ॰ कांतिकुमार जैन, पृ॰ 262
5. वही, पृ॰ 9
6. परसाई रचनावली भाग-2, पृ॰ 1
7. परसाई रचनावली भाग-5, पृ॰ 21
8. परसाई रचनावली भाग-6, पृ॰ 286
9. परसाई रचनावली भाग-1, पृ॰ 227
10. परसाई रचनावली भाग-3, पृ॰ 263
11. अपनी-अपनी बीमारी, हरिशंकर परसाई, पृ॰ 81
12. परसाई रचनावली भाग-1, पृ॰ 266
13. वही, पृ॰ 178
14. हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी, पृ॰ 55
15. परसाई रचनावली भाग-3, पृ॰ 78
16. परसाई रचनावली भाग-6, पृ॰ 49
17. परसाई रचनावली भाग-4, पृ॰ 34
18. परसाई रचनावली भाग-1, पृ॰ 20
19. तुम्हारा परसाई, डॉ॰ कांतिकुमार जैन, पृ॰ 263

पुत्री श्री विजयसिंह बिष्ट
सेवानिवृत्त कोषाधिकारी, बिष्ट भवन
नर्सरी रोड, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
मो॰ 09412356344

ISSN 0975-735X

जनवादी कवि नागार्जुन

डॉ॰ सुनीता देवी
सहायक प्रोफेसर हिंदी विभाग
के॰वी॰ए॰डी॰ए॰वी॰ कॉलेज फॉर विमेन, करनाल

'जनवाद' शब्द अँग्रेजी के डेमोक्रेसी शब्द का हिंदी-रूपांतरण है। हिंदी में डेमोक्रेसी शब्द के लिए जनवाद के अतिरिक्त जनतंत्र, लोकतंत्र, प्रजातंत्र, लोकशाही आदि शब्द प्रयोग किए जाते हैं। यह 'डेमोक्रेसी' शब्द ग्रीक भाषा के देमोस (Demos) और क्रेटिन (Kratein) नामक दो शब्दों से मिलकर बना है। देमोस का शाब्दिक अर्थ है–'शासन करना' अत: डेमोक्रेसी का शाब्दिक अर्थ हुआ–'जनता का शासन।'[1] महात्मा गांधी ने लोकतंत्र के विषय में कहा है–'व्यक्ति के पूर्ण एवं स्वतंत्र विकास के जिए जनतांत्रिक समाज को परस्पर सहयोग और सद्भाव, प्रेम और विश्वास पर आधारित होना चाहिए।'[2] गजानन माधव 'मुक्तिबोध' जनवादी काव्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं–'जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श और मनोरंजन से लेकर क्रांतिपथ की तरफ मोड़ने वाला, प्राकृतिक शोभा और प्रेम, शोषण और सत्ता के घमंड को चूर करने वाला, स्वतंत्रता और मुक्ति गीतों को अभिव्यक्ति देने वाला' जनवादी काव्य है।'[3] जनवादी काव्य लिखने वाला ही जनवादी कवि कहलाता है। अत: किसी देश की सरकार से गरीब, शोषित, दलित और पिछड़े हुए समाज, वर्गों, लोगों के लिए सौहार्दपूर्ण उचित सहयोग और अनुकूल वातावरण बनाने की आवाज उठाने वाला कवि जनवादी कवि है।

जनता के हितों और अधिकारों की रक्षा करनेवाला काव्य जनवादी काव्य की श्रेणी में आता है। इसके केंद्र में विभिन्न आरामदायक सुविधाभोगी मानव नहीं, अपितु अत्याचारों से पीड़ित साधारण मानव होता है। साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों से गहरा जुड़ाव रखता है। वह अपनी रचनाओं के लिए आवश्यक लेखन-सामग्री भी समाज से ही जुटाता है। जनवादी काव्य सरकार व पूँजीपतियों के दमनतंत्र का विरोध करता है और समाज में स्वतंत्रता, समानता, मानवता, विश्वबंधुत्व व राष्ट्र-प्रेम की भावना पर बल देता है। यह गरीब, दलित, पीड़ित व नारी के हितों के रक्षार्थ सदैव प्रस्तुत रहता है।'[4]

हिंदी साहित्य में जनवादी काव्य विशिष्ट स्थान रखता है। इस काव्य के अंतर्गत केदारनाथ अग्रवाल, शिवदानसिंह चौहान, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, लीलाधर 'जगूड़ी', सुदामा पांडेय 'धूमिल', गजानन माधव मुक्तिबोध और नागार्जुन का काव्य आता है। 'इस काव्य-परंपरा में नागार्जुन का नाम जनवादी काव्य के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में लिया जाता है। ये एक बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न व हिंदी साहित्य-जगत की अनेक विधाओं में पारंगत एक सफल कलमकार हैं। इन्होंने अपनी अनुभूति और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए

काव्यविधा को विशेष रूप से आत्मसात किया है।'[5]

सच्चा जनकवि समाज में घटित होने वाली गतिविधियों, घटनाओं को अनुभव करता है और अपनी कविताओं के माध्यम से उन्हें अभिव्यक्त करता है। वह जीवन-भर अपने लेखन द्वारा जनता को जागरूक करने का प्रयास करता है। नागार्जुन स्वयं को जनकवि मानते हुए आमजन और श्रमिकों की आवाज पुरजोर शब्दों में उठाते हैं–

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ,
जनकवि हूँ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ,
जनकवि हूँ मैं, क्यों चाटूँ थूक तुम्हारी,
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बंदूक तुम्हारी।[6]

देश को स्वतंत्र कराने के लिए अनेक वीर सपूतों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए थे। परंतु स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् स्वार्थी राजनेता सत्ता के नशे में चूर होकर देश की जनता को चारों तरफ से लूटने का प्रयास कर रहे हैं। कवि नागार्जुन इन्हीं राजनेताओं से दु:खी होकर शहीद भगतसिंह से प्रश्न करते हैं–

तुमने (भगतसिंह) किनका भला चाहा था
तुमने किनका संग निभाहा था
क्या वे यही लोग थे–
गद्दार, जनद्वेषी, अहसान-फरामोश?
हुकूमत की पीनक में बेहोश।'[7]

कवि समाज में फैली सामाजिक, आर्थिक असमानताओं को देखकर बेचैन हो उठता है और भगवान के अस्तित्व का विरोध करता है–

मन करता है/ मैं उस अगस्त्य-सा पी डालूँ
सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल-बितल में तब मुझको/मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले जाऊँ फिर इस तट पर
अंतेष्टि करूँ, लकड़ी तो बेहद महँगी है/
इस बालू में दफना दूँ।'[8]

जनता देशहित के लिए प्रतिनिधि चुनकर संसद, विधानसभाओं में भेजती है ताकि वे जनता के हित में नीतियाँ बनाएँ। परंतु वे तानाशाही वृत्ति, स्वार्थवश अपना ही हित साधते हैं। राजनेताओं की इसी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए नागार्जुन लिखते हैं–

तानाशाही रंगमंच पर प्रजातंत्र का अभिनय,
देख रहा हूँ हिंसा का ही मैं, असत्य से परिणय
सुनता हूँ, वे चीख रहे हैं, देवी, तुम्हार जय-जय
देख रहा हूँ, सभी लुटेरे घूम रहे हैं निर्भय।[9]

किसी देश के नवनिर्माण में उस देश के युवावर्ग का विशेष योगदान होता है। जनवादी कवि नागार्जुन खेत मजदूरों, नौजवानों, श्रमिकों, अध्यापकों, छात्रों का परिवर्तन और नवनिर्माण के लिए आह्वान करते हैं–

 ISSN 0975-735X

आओ, खेत मजदूर और भूमिदास नौजवना
आओ, खदान श्रमिक और फैक्ट्री वर्कर नौजवान
आओ, कैंपस के छात्रो और फैकल्टी के नवीन-प्रवीण
अध्यापक हाँ-हाँ तुम्हारे ही अंदर हो रहे हैं/
आगामी युगों के लिबरेटर।'[10]

तत्कालीन युग में महँगाई, गरीबी, बेरोजगारी का बोलबाला था। आमजन का जीवन-निर्वाह कठिन हो रहा था। समाज के इसी यथार्थ को कवि ने इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है–

हम महँगाई में मारे लोग / हम गैरबराबरी के सताए लोग
हम अंधाधुंध दमन के शिकार लोग /
हम बेरोजगार और जाहिल लोग।'[11]

तानाशाही और शोषण की प्रवृति को प्रजातंत्र के लिए खतरा मानते हुए कवि ने देश के नागरिकों को नए हिंदुस्तान का निर्माण करने का संकल्प किया है–

स्वयं अपने बलबूते पर / हम प्राप्त करेंगे
शोषण और तानाशही की बुनियादें / खोद-खोद कर सचमुच
नया हिंदुस्तान बनाएँ।'[12]

अंत में कहा जा सकता है कि जनवादी कवि नागार्जुन ने अपनी कविताओं के माध्यम से देश की आर्थिक, सामाजिक विषमताओं, अव्यवस्थाओं का विरोध करते हुए शोषित, पीड़ित जनता को जागरूक करने का प्रयास किया है। जहाँ एक तरफ वे भ्रष्टाचार और स्वार्थ में लिप्त शासकों, पूँजीपतियों का विरोध करते हैं, वहीं दूसरी तरफ देश के विकास का आह्वान करते हुए नव-निर्माण पर बल देते हैं। अत: सच्चे अर्थों में नागार्जुन जनवादी कवि हैं।

संदर्भ

1. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग-1, पृ॰ 1206
2. धीरेंद्रमोहन दत्त, महात्मा गांधी का दर्शन, पृ॰ 103
3. नरेंद्रसिंह, साठोत्तरी हिंदी-कविता में जनवादी चेतना, पृ॰ 11
4. वही, पृ॰ 17
5. वही, पृ॰ 17
6. नागार्जुन, चुनी हुई कविताएँ (भाग-2), पृ॰ 221
7. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ॰ 17
8. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ॰ 26
9. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ॰ 51
10. नागार्जुन, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, पृ॰ 11
11. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ॰ 83
12. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ॰ 126

अंबेडकरवादी स्त्री-चिंतन और स्त्री-विमर्श

प्रा॰ पॉ॰ जयश्री गावित

डॉ॰ बाबासाहब अंबेडकर ने बुद्ध-कबीर-फुले को अपना गुरु मानकर ऐसी चिंतन-परंपरा को अपनाया, जिसने दार्शनिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में जबरदस्त क्रांति ला दी। इसलिए अंबेडकरवाद केवल डॉ॰ अंबेडकर के विचारों तक सीमित नहीं है, उसमें बुद्ध, कबीर, फुले, पेरियार स्वामी और स्वामी अछूतानंद आदि जैसे कई महानुभावों, विचारकों और चिंतकों के विचार का भी समावेशा है, जिससे मिलकर अंबेडकरवाद एक अवधारणा बनता है।

यह गौतम बुद्ध की शिक्षा का ही असर था कि उन्होंने बहुजन समाज और नारियों को सामाजिक क्रांति की दहलीज पर लाकर खड़ा कर दिया। आदिम साम्यवादी व्यवस्था के बाद पहली बार बौद्धकाल में नारी ने आजादी और समानता का अनुभव किया और खुली हवा में साँस ली। लेकिन आगे हम देखते हैं कि नारी को सभी मूलभूत अधिकारों से सर्वथा वंचित करके उन्हें और बदतर परिस्थिति में धकेला गया, इस चपेट में केवल निचले तबके की दलित ही नहीं, सवर्ण वर्ग की नारियों को भी शोषण और उत्पीड़न के भयंकर दौर से गुजरना पड़ा।

बौद्धकाल में स्त्रियों और शूद्रों के संदर्भ में जो सामाजिक क्रांति संपन्न हुई थी, वह मनुस्मृति के काल में आकर प्रतिक्रांति में बदल गई। डॉ॰ अंबेडकर ने अपनी किताब 'प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति' में विस्तार से वैदिककाल से लेकर बौद्धकाल तक मनुस्मृतिकाल में भारतीय नारी की बदलती स्थितियों का तथात्मक विश्लेषण करके बताया है कि भारत में पहली बार धार्मिक क्रांति के रूप में शुरू हुई, लेकिन बाद में धार्मिकता से आगे बढ़कर यह सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति बन गई, जिससे धम्म, समाज और राजनीति में एक तहलका-सा मच गया, आगे आनेवाली कई सदियों तक समाज पर इसका जबरदस्त प्रभाव रहा।

इसलिए डॉ॰ अंबेडकर अक्सर इस बात को दोहराते थे कि गौतम बुद्ध ऐसे पहले समाज-सुधारक थे, जिनसे समाज-सुधार का इतिहास शुरू होता है। इस समाज-सुधार में उल्लेखनीय पहलू स्त्रियों की स्वाधीनता से, उनकी सापेक्ष नैतिकता से है, जो स्त्री-पुरुषों को समान नैतिकता का पाठ पढ़ाती है तथा समान मूल्यों पर आधारित समान अधिकार देती है। इसके लिए उन्होंने सबसे पहला कठोर प्रहार जातिव्यवस्था पर किया।

बुद्ध ने न केवल जातिव्यवस्था के विरोध में बिगुल बजाया, उन्होंने स्त्रियों और शूद्रों को क्रमशः भिक्खुणि और भिक्खु बनाकर दोनों को समान दर्जा देकर सम्मानित भी किया। अर्थात् उदारमना बुद्ध ने धम्म और संघ के मामले में स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं किया। उनके धम्म और संघ में सबका खुले मन से स्वागत होता, सबके लिए द्वार खुले रहते। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उन्होंने केवल राजपरिवार और धनी कुल की स्त्रियों को ही धम्म की दीक्षा नहीं

 ISSN 0975-735X

दी, वरन्, वेशया, गणिका या दासियों को भी समान मानकर उन्हें भी सम्मानित किया। निश्चित ही यह क्रांतिकारी कदम था। स्त्रियों के प्रति असीम करुणभाव उनके हृदय में समाया हुआ था। स्त्रियों को 'भद्र' नामक संबोधन देश व समाज में समस्त नारी-जगत को मान-सम्मान देने का महत् कार्य गौतम बुद्ध ने किया। इस प्रकार बुद्ध ने स्त्रियों एवं शूद्रों की स्थिति को उन्नत किया, उन्हें समाज के मुख्य प्रवाह में लाने की कोशिश की। यह वह काल था, जिसमें स्त्री का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। एक अँग्रेज़ी वचन के अनुसार Women thy name is anatomy अर्थात् स्त्री केवल देह का नाम है। (नारी तुम्हारा नाम शरीर है।) इस प्रकार की परिस्थिति थी। एक भौतिक संपत्ति की तरह स्त्री भी पुरुष की निजी संपत्ति या, वस्तु बनकर रह गई थी। ऐसे गंभीर समय में स्त्रियों के मसीहा के रूप में गौतम बुद्ध का अवतरित होना, निहायत ही अनुपम पर्व था।

सदियों से अखंडित बंधनों में बँधी स्त्री को पहली बार बौद्धकाल में आजादी मिली, समानता मिली, लेकिन अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत होते-होते उसे आधुनिककाल तक आना पड़ा। अर्थात् अपने अधिकारों के लिए वह संगठित आधुनिककाल में ही होती दिखाई देती है।

पहले पश्चिम में नारीवादी आंदोलन की शुरुआत हुई और भारत में इसकी शुरुआत बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हुई। इसलिए नारीवादी विचारकों ने (आंदोलकारियों ने) वूमेननिज्म (Womenism) के स्थान पर फैमिनिज्म शब्द का प्रयोग बहुत सोच-समझकर ही किया है। स्त्रियों द्वारा छेड़ा गया यह आंदोलन समानता के अधिकार-प्राप्ति के लिए ही प्रमुखता से था।

हिंदू नवजागरण के पुरोधाओं ने भी सवर्ण स्त्रियों के लिए समाज-सुधार के कई कार्यक्रम चलाए। जैसे, सती-प्रथा, विधवा-विवाह और बाल-विवाह जैसी समस्याएँ मुख्यतः तथाकथित हिंदू स्त्रियों की बिगड़ती स्थिति में सुधार लाने हेतु किए गए थे। आधुनिककाल में जोतिबा फुले और अंबेडकर जैसी महान विभूतियाँ थीं, जिन्होंने समाज की, समस्त तबके की स्त्रियों के मूलभूत अधिकारों के लिए आवाज बुलंद की और संघर्ष किया तथा स्त्रियों को भी इस आंदोलन में सक्रिय होने के लिए प्रेरित किया।

महाड़ सत्याग्रह के दौरान एकत्रित हुई महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि ज्ञान और शिक्षा आदि पर केवल पुरुषों का ही अधिकार नहीं है, महिलाओं के लिए भी यह अत्यंत आवश्यक है, अगर आपको अगली पीढ़ी को सुधारना हो, तो अपनी बेटियों को, जो आगे माता बननेवाली है, शिक्षित करना आवश्यक है।

अर्थात् स्त्री-पुरुष को मानवी दृष्टिकोण से देखते हुए मनुष्य और मानव रूप में उन्होंने स्त्रियों को परिभाषित किया। जबकि स्त्री-पुरुष विषमता भारतीयों के खून के कतरे-कतरे में समाई हुई थी। ऐसी परिस्थिति में समता पर आधारित स्वतंत्रता की आशा करना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन सा था। डॉ॰ बाबासाहब ने महिलाओं के संदर्भ में इस पारंपरिक, दकियानूसी सोच को समूल उखाड़ फेंकने का प्रण उठाया। वे रमाबाई को भेजे एक पत्र में लिखते हैं–

'महिलाओं की उन्नति एवं मुक्ति के लिए लड़नेवाला मैं एक योद्धा हूँ।' वचन के अनुसार निश्चित ही बाबासाहब आजन्म स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ते रहे। उन्होंने स्त्रियों को अपने पर हो रहे अन्याय अत्याचार का सामना करने हेतु प्रेरित, प्रोत्साहित किया। उन्होंने जोतिबा फुले की तरह सबसे ज्यादा जोर शिक्षा पर दिया, क्योंकि शिक्षा ही वह रास्ता है, जो पितृसत्तात्मक

व्यवस्था और उसकी संस्थाओं से नारी को मुक्ति दिला सकती है।

वे लिखते हैं, शिक्षा माने बाघिण का दूध है, जो इसे पिएगा दहाड़े मारने के सिवा नहीं रहेगा। अर्थात् शिक्षा ही सांस्कृतिक क्रांति का पहला कदम है और सांस्कृतिक क्रांति से ही सामाजिक क्रांति का रास्ता प्रशस्त होता है, जो सहज ही आर्थिक क्रांति तक ले जाता है। इस तरह शिक्षा ही प्रगति और उन्नति के रास्ते खोलती है। ज्यों-ज्यों बहुजन समाज में शिक्षा का प्रसार हुआ, त्यों-त्यों वह सांस्कृतिक प्रक्रिया का सशक्त हिस्सा बनने लगा, उसका वैचारिक चिंतन निखरने लगा, वह मुखर होने लगा तो सृजनात्मक लेखन की प्रक्रिया भी आगे बढ़ी और वह अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने की परंपरा से जुड़ गया।

इसलिए डॉ॰ अंबेडकर ने एक क्रांतिकारी नारा दिया। शिक्षित बनो, संघर्ष करो, संगठित रहो। यह आदर्श नारा सिर्फ बहुजन समाज या पिछड़ी जातियों के लिए ही नहीं था, अपितु संपूर्ण भारत के अशिक्षित, असंगठित और संघर्ष से विमुख उन तमाम जाति-धर्मों, समाज और संप्रदायों के लिए भी ज़रूरी था, जिससे वे अपनी सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक उन्नति के रास्ते पर चल सकते थे।

डॉ॰ अंबेडकर ने मनुस्मृति जैसी प्रतिक्रांति की प्रतीक विधि-संहिता के विरुद्ध 'हिंदू कोड बिल' बनाकर सबसे क्रांतिकारी कदम उठाया था, जो मनुस्मृति के स्त्री-विरोधी नीति-नियमों का जबरदस्त विध्वंस करता है।

इस संदर्भ में डॉ॰ अंबेडकर ने कहा था कि मुझे भारत का संविधान बनाने में इतनी प्रसन्नता नहीं, जितनी हिंदू कोड बिल के पारित होने पर होगी। क्योंकि इससे समस्त नारी-जगत लाभान्वित होगा, स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिल जाएँगे। वे आगे लिखते हैं कि स्वाधीन भारत में स्त्री को भी पुरुषों की भाँति समान अधिकार चाहिए। हिंदू कोड उस दिशा की ओर एक बढ़ता कदम है। भारत की नारियाँ इस कोड को पारित हो जाने पर अपने वैध तथा चिरवंचित अधिकार प्राप्त कर सकेंगी। विश्वभर में स्त्रियों की ऐसी दुर्गति नहीं, जैसी भारत की स्त्रियों की है। जंगली जातियों में स्त्रियों को भारत की नारियों से अधिक अधिकार प्राप्त हैं। भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन में स्त्रियों की साझेदारी भी उल्लेखनीय है। स्वतंत्रता-प्राप्ति में नारियों ने भी पुरुषों भाँति संघर्ष किया। अर्थात् पुरुषों के समान ही भारतीय स्त्रियों को अधिकार मिलने चाहिए।

आगे वे महिलाओं को सचेत करते हुए कहते हैं कि नारी को अपने पति की सखी बनकर उसके हर कार्य में सहयोग देना चाहिए। लेकिन ध्यान रहे कि उसे हर हाल में पति की दासी बनकर नहीं जीना है।

स्पष्ट है कि वे नारियों को समानता का अधिकार देने के पक्ष में थे। दुर्भाग्यवश हिंदू कोड बिल पारित न हो सका। डॉ॰ अंबेडकर आहत हुए, डॉ॰ अंबेडकर भारत की सर्वाधिक उत्पीड़ित और असमानता की शिकार स्त्रियों की सामाजिक धार्मिक परिस्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में कोई समझौता करने के लिए तैयार ही थे। नारियों की स्वतंत्रता की खातिर उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। वे नारी के समुचित उत्थान के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। भारत की सर्वाधिक उत्पीड़ित और शोषित नारी को समानता का अधिकार दिलानेवाले डॉ॰ अंबेडकर नवसूर्य की तरह अवतरित हुए।

स्वतंत्रता-पश्चात् कानूनीस्तर पर पुरुष, महिला समान अधिकारी हैं, लेकिन इस वास्तविकता

 ISSN 0975-735X

को नकारा नहीं जा सकता कि महिलाओं की वर्तमान स्थिति एवं मानवाधिकार की वास्तविकता का अध्ययन करने से अचंभित करता यह निष्कर्ष स्पष्ट करता है कि महिलाओं की स्थिति आज भी चिंतनीय बनी हुई है, कुछ जगहों पर तो और भी अधिक भयंकर परिस्थिति बनी हुई है, महिलाएँ अपने मूलभूत अधिकार तक नहीं रखतीं, न ही कभी उनका कभी उपयोग करती हैं।

पंचायतराज को सत्ता के विकेंद्रीकरण की नींव माना जाता है, परिवर्तन का आगाज माना जाता है, महिलाएँ आरक्षित पदों से चुनकर तो आती हैं, लेकिन सारे निर्णय, फैसले घर के पुरुष वर्ग द्वारा लिए और किए जाते हैं, यहाँ तक कि उनके हस्ताक्षर तक पुरुषों द्वारा किया जाते हैं। इस सत्य की ओर भी आप सभी को जोड़ना चाहूँगी कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संविधान में उद्धृत जनतांत्रिक और समनतावादी विचार और प्रावधान पितृसत्ता को एक कड़ी चुनौती अवश्य दे जा रहे हैं। जो पढ़ी-लिखी जाग्रत महिलाएँ हैं, वे पूर्ण रूप से इन अधिकारों का उपयोग करके अपने आपको सिद्ध करती नजर आ रही हैं।

जब श्रीलंका में श्रीमती भंडारनायके प्रथम महिला प्रधान बनती हैं, तो इधर भारत जैसे सबसे बड़े लोकतंत्र में सर्वसम्मति से इंदिराजी प्रधानमंत्री बनती हैं, भारत के पड़ोसी इस्लामिक देशों में बांग्लादेश में बेगम खलिदा जिया शेख हसीना तथा पाक में बेनजीर भुट्टो भारत देश के सबसे बड़े उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री के पद पर प्रथम सुश्री मायावती आसीन हुईं और अभी हाल में भारतराष्ट्र के राष्ट्रपति पद पर सुश्री प्रतिभाताई पाटील विराजमान हुईं तो कोटि-कोटि स्त्रियों ने फुले-कबीर-अंबेडकर-शाहू के चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित की। क्योंकि यह चित्र नारी-आंदोलन से पूर्व बिल्कुल असंभव-सा होता और न ही हम जैसी कई दलित आदिवासी महिलाएँ आज आत्मनिर्भर होकर आत्मविश्वास से भर उठतीं।

न्यायपंथ के जनक लोककवि हनूवीर जी साहब : व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय

डॉ॰ सुजाता पी॰ फातरपेकर
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
एम॰एम॰आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज
सिरसी (कर्नाटक)

लोककवि हनूवीर जी साहब का जन्म मध्यप्रदेश के भिंड जिले की अटेर तहसीलांतर्गत साहिबकापुरा (जौरी अहीर) नामक गाँव में जुलाई 1937 में हुआ था। राउत गोत्रीय यादव परिवार में जन्मे कविवर के पिता का नाम श्री शालिगराम व माता का नाम श्रीमती ग्याकुअर था। आप अपने माता-पिता की सबसे बड़ी संतान थे। जैसा कि सर्वविदित है कि भिंड जिले का नाम डाकू समस्या के कारण विख्यात है। इसी सरजमीं पर हमारे लोकप्रिय कवि हनूवीर जी साहब का जन्म हुआ, जहाँ एक ओर चंबल घाटी में बंदूक की गोलियों की गड़गड़ाहट हो रही थी, वहीं दूसरी ओर हनूवीर जी की क़लम चल रही थी। वे न सिर्फ़ क़लम के धनी थे, बल्कि एक उच्चकोटि के ढोलकवादक व कुशल गायक थे। ज्ञान, विज्ञान, तर्क, विवेक, साहस, परिश्रम, निर्भीकता, गायन, वादन, समाज सुधार, आदि सब एक ही व्यक्ति में जब एक साथ मिल जाए, ऐसा बहुत कम होता है। लोककवि हनूवीर जी में ये सब-कुछ था। ज्ञान-विज्ञान को ही ले लीजिए। उन जैसा पारखी, तर्क-विवेकी आज की पीढ़ी में विश्वविद्यालयीन शिक्षा-प्राप्त विद्यार्थी भी नहीं है।

उन्होंने तो सिर्फ़ चौथी कक्षा ही पास की थी। वाल्यावस्था से ही संगीत का शौक था, उन्होंने इसलिए अपने पिता की संगत में रहकर ढोलक बजाना सीख लिया था। आप एक सफल गृहस्थ, सफल सामाजिक कार्यकर्ता व सफल युगदृष्टा थे। आपकी नजर अत्यंत पेनी थी। वेद, पुरान, गीता, कुरान, बाइबिल, त्रिपिटक आदि का आपको गहराई से ज्ञान था। चार पुत्रियों व दो पुत्रों के पिता होने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भारतभूमि संतों और पंथों का देशा है। कविवर हनूवीर जी एक प्रखर कबीरपंथी थे। बुद्ध की देशानाओं का व कबीर की वाणी का प्रभाव उनके प्रत्येक भजन में देखने को मिलता है। उनकी साखियाँ, दोहे, कवित्त व कुंडलियाँ आदि सब अंधकार से प्रकाशा की ओर लाने वाली विषयवस्तु से लवरेज हैं। उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए 'न्यायपंथ' की स्थापना की है। उनके 'न्यायपंथ' से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि हनूवीर को 'भारतीय संविधान' का न सिर्फ़ व्यापक ज्ञान था बल्कि वे इसके न्यायवादी मूल की स्थापना भी करना चाहते थे। सबको न्याय मिले, ऐसा वे चाहते थे।

भँवरसिंह यादव लिखते हैं–'गृहस्थ रहते हुए एक सच्चे न्यायपंथी संन्यासी व संत थे (हनूवीर जी) कुशल व्यक्तित्व के धनी स्वच्छ छवि एवं बड़े ही चरित्रवान विभूति थे। शिक्षा

 ISSN 0975-735X

का महत्व, जीवों पर दया, परोपकार, धैर्य आदि पर कवि ने सबसे अधिक बल दिया। अपने मानव-जीवन का बखूबी फ़र्ज निभाते हुए मानव-जीवन को सार्थक बनाया। मानवीय कर्तव्य निर्वहन करने की समाज में उन्होंने एक मिशाल पेश की है। शिक्षा का महत्त्व समझने के कारण भजन रचनात्मक कार्य उन्हें आसान लगता था। उन्होंने अंतिम साँसों तक लेखन-सामग्री (क़ागज-क़लम) पास में रखी।'[1]

आपने अपने जीवनकाल में अनेक भजनों, साखियों, कुंडलियों व कवित्तों की रचना की है, जिनमें से कुछ ही प्रकाशित हो सके हैं। 'न्यायपंथी भजन माला मानव-जीवन का कल्याण' नामक काव्य-संग्रह में कविवर हनूवीर जी साहब कृत बारह साखियाँ, इकहत्तर कुंडलियाँ, एक सौ साठ भजन व एक कवित्त है। इन काव्यकृतियों के माध्यम से कवि ने न सिर्फ़ दलित-पिछड़ों को अंधकार के कुँए से बाहर निकालने का प्रयास किया है, बल्कि पोंगापंथी, पाखंडी तथा कथित पंडे-पुजारियों को भी ललकारा है।

उन्होंने तथागत बुद्ध के 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' से लेकर भारतीय संविधान द्वारा न्यायपंथ की स्थापना होने तक के ज्ञानमार्गी सफर को बड़े ही तर्क-विवेक व साहस के साथ लड़ियों में पिरोया है। उनका एक-एक शब्द ढोंग, रूढ़ि, पाखंड, नर्क-स्वर्ग, आत्मा-परमात्मा, निर्गुण-सगुण, भाग्य, भगवान, लोक-परलोक आदि की पोल खोलता है। अंधविश्वास और अंधविश्वासियों पर उन्होंने करारी चोट की है ताकि वे अपनी आँखें खोलकर जीवन का सुखद आनंद प्राप्त कर सकें।

कविवर ने तथाकथित ईश्वरों पर न सिर्फ़ प्रशनचिह्न खड़े किए हैं, बल्कि यह सतर्क सिद्ध किया है, कि ईश्वर की खोज या परिकल्पना चतुर-चालाक लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए की है इसलिए ऐसे लोग अनीति, अन्याय, अपराध, दुराचार, व्यभिचार, छलकपट, प्रपंच, ठगी, चोरी, जालसाजी आदि अमानवीय कृत्य करने से बाज नहीं आते। कवि ने सचमुच चंबल की घाटी व चंबल के पानी की लाज रखी है। बड़े ही बेबाक तरीके से उन्होंने थोथे धर्मग्रंथों की पोल खोली है। चंबल के सपूत होने का कविवर हनूवीर जी ने निर्भीकता से परिचय दिया है। उन्होंने समाज के हर एक पहलू पर प्रकाश डाला है चाहे वह सामाजिक हो या राजनीतिक, चाहे वह आर्थिक हो या धार्मिक। उनकी रचनाओं के कुछ स्वर इस प्रकार हैं–

भजन

टेक : भटके धर्म और पंथ, सार को परख न पाया है।

झड : लई ईशा मसीह की सलाह, बता दे अपनी कला, ईस कहाँ तिहारो,
बोले सातवें स्वर्ग में रहता गोड हमारो।
वो जगह असंभव मान, हुआ मोहि ज्ञान, हियो मेरो हारां,
फिर मिले मुहम्मद साहब, से बचन उचारो।

चौक : अरे कहाँ रहता खुदा तिहारो, चोथे स्वर्ग में रहने वारो,
खुदा ने मोहि हुकुम दियो जे न्यारो, कमला करि रखना भाई चारों।
मरि कें होइ ना जन्म हमारों, रखना तुम भाई चारों,

तोड : जो मरिजाइ खुदा के द्वार देइ वो नारों,
ग्रस्ती को फिर भी उगाया है।1।

झड़ : फिर हिंदुन के राम, कहा तिहारो काम कहाँ से आए,
बोले राम बृह्म शाक्ति ने, धरि अवतार पठाए।
तुम भू का उतारो भार, दुष्ट-संहार करन कों आए,
मेने गऊ ब्रह्मण हित अवतार धराए।
चौक : तुमने ना ब्रह्म का काम सम्हारों, तुमने कुछ ब्रह्मण को हनि डारों,
तुमने संत शंम्बूक को मारो, ये कैसा है न्याय तिहारो।
अरे कहाँ रहता बृह्म तिहारो, बाले घट-घट में रहने बारो,
तोड़ : फिर क्यों तीरथ भटका खाय, शीस धुने जाइ,
ज्ञान खुद में कराया।2।
झड़ : फिर कृष्ण की लीनी सलाह, बताई सोलह कला जगत के स्वामी,
मुझको जग के कर्ता जान, हम ही नामी।
तुम सोलह सहस एक सौ आठ सभी के स्वामी,
तुम ब्रह्मचारी की कहूँ आप है कामी।
चौक : महावीर तत्वो तक ठहराया, कोई निरंकार बतलाया,
कोई-कोई आतम को दरशाया, कोई बृह्मअखंड कहि माया।
तोड : जब एक ही है जग बृह्म, किनहे उपेदशा कराया।3।
झड : फिर सुनो बुद्ध के बोल, खुली कुछ पोल, सही दरसाया,
उनने मानुष से अतिरिक्त न ईश बताया।
मानुष सभी समान, कराया ज्ञान, सही समझाया,
कर्म आठ करि, तव मनुष पद पाया।
चौक : सारी भूल कबीर मिटाई, तो बिन अहम ब्रह्म कुछ नाहीं,
जीव ही जामा खर्च सब भाई, कल्पना जीव ही की कहि गाई।
तोड : हनूवीर कहें गाय, भूल को बीजक परखाया।4।'[2]

उक्त भजन में ईश, मुहम्मदसाहब, राम, कृष्ण, आदि सबके बारे में उन्होंने बेबाकी से लिखा है। उनके अनुसार सभी ने अपने-अपने तरीके से मानव-समाज को गुमराह किया है, सिर्फ तथागत बुद्ध का मार्ग ही सद्मार्ग है, क्योंकि उन्होंने किसी भी प्रकार का झूठ-मूठ का दावा नहीं किया। बुद्ध का दर्शन मानवकेंद्रित है। मानव-कल्याण ही उसका लक्ष्य है।

कुसंग से बचने के लिए एवं सत्संग का सहारा लेने हेतु कविवर जनमानस को प्रेरित करते हुए लिखते हैं–

जिसको तुम मानत दवा, दही में पक्का रोग।
स्वास्थ अच्छा समझते, भोग रहे हो भोग।
भोग रहे हो भोग, रोग मानुष फैलाया।
सोलह दूनी आठ, पहाड़ा उलट पढ़ाया।
हनूवीर कवि कहें, रोग की सतसंग दवा है।
तब तो वे जीव निरोग, जान तू गुरु गया है।[3]

कवि की कुंडलियों में जीवन का सार है। उन्होंने व्यावहारिक बातों का गहन अध्ययन

किया है। कवि जनमानस को सुखी बनाने हेतु नौ कालों से (खतरनाक चीजें) बचने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं–

नौ कालों से जो बचा, वो पक्का गुरु का लाल।
कुटी, कल्पना और भंडारा, खानी, बानी जाल।
खानी बानी जाल, जाति धन नारि बुरी है।
जिस पर अधिक जमात, समझना पैनी धुरी है।
हनूवीर नौ काल से बचा, विवेकी परखी संत।
नहीं तो इस संसार में, सबको काल अनंत।[4]

तथागत बुद्ध ने अष्टांग मार्ग व दस पारमिताएँ मानव-कल्याण हेतु सुझाए हैं। इनका सार कवि इस प्रकार बताते हैं–

भजन

टेक : पहिले मानव पद को सुधार ले,
तब आगे कदम बढ़ाओ।
तीन दोस वानी से बचना,
मन के चार निवार करौ।
तीन दोस काया के जागौ।
इस दस हू से अधिक डरों।

तोड : मंश, बाचा और कर्मणा,
इन दस दोसों से बचि जाऔ।1।
जप तप करत रहत जिन पूजा,
जीवों पर ना तनक दया।
तीरथ मूरत सिर पर राखें,
पिंड दान करि रहे गया।

तोड : धर्म नीति से करो कमाई,
ना अनुचित कर्म कमाओ।2।
मानुस नहीं जन्म से मानौ,
कर्म किए मानुस जानौ।
भय मेथुन अहार नींद जे,
तो ये सब पशुओं में मानौ।

तोड : पर धन को पत्थर समजानौ,
कष्ट उठा काम कर खाऔ।3।
सिर्फ बड़ा मानुस गुण तेरा,
मांस न कामे आता है।
हाडों के नाम बने आवरण,
ना चाम काम दे पाता है।

तोड : हनूवीर जीवन सुधार में,

आचरण शुद्ध बनाऔ।4।'[5]

मानव को धोखाघड़ी से बचने के लिए कवि ने आगाह करते हुए लिखा है–

धर्म के ठेकेदारों ने, प्रभु से ठेका लिया कराय।
सब धन आपुन खात हैं, वो ईश्वर पर न जाय।
ईशवर पर न जाय, कि जैसा रिसिपत जावे।
शासन को ना मिले, मजा जैसे भगत उड़ावे।
हनूवीर कवि कहें, लूट रहे तीरथ में पंडा।
तुमसे धन चढ़वाय, खाय-खाय पड़े मुचंडा।[6]

कवि ने एक कवित्त लिखा है, जो व्यंगात्मक ढंग से मनुष्य की हकीकत बयान करता है–

बिल्ली को देख मूत भरें, नाम जिनका नाहरसिंह।
गिरधारी है नाम, खाली चलत हाँफ जात हैं।
कसाई के काम करैं, नाम है दयाराम।
शास्त्री है नाम, पत्री और से बचात हैं।
राम और कृष्ण, रिक्शा चलाबें रोज।
ईश्वर है नाम, ऊँट लाद कर खात हैं।
हनूवीर गाय कहें, कर्म के बिना नाम ही में धोखा खात हैं।'[7]

कविवर की हर एक साखी भी मानव को नींद से झकझोर कर जगाने का काम करती है–

काम क्रोध मद मोह तज, सब बिसयों कों त्याग।
भर्म नींद से जाग तू, गुरु पारख में लाग'[8]
बड़े बड़प्पन में गए, उनके रोमरोम अहंकार,
सदगुरु के परिचय बिना, चारों वर्ण चमार।[9]
पुत्र बहू के जब ना दुआ, तब कीन्हा सासु विचार।
देवी देव पूजत फिरें, करो इच्छा पूर्ण हमार।[10]

इसी तरह कविवर के हर एक पद्य में मानवता के कल्याण के लिए संदेश हैं। उन्होंने आजीवन लेखनी चलाई। उन्होंने जो भी बात लिखी है, बड़े सोच समझकर लिखी है। वेद, पुराणों व शास्त्रों की सर्जरी करना कोई हँसी-मजाक नहीं है, इस कार्य को करने के लिए स्वयं को खपाना पड़ता है। कविवर हनूवीर जी साहब ने अपने आपको न सिर्फ़ खपाया है बल्कि तपाया भी है। उनका ज्ञान खरा तपा हुआ सोना है। तर्क और विवेक के धनी, पारखी कवि हनूवीर की काव्यकृतियाँ चिरकाल तक सजीव रहकर मानवता के हित में प्रकाशपुंज का कार्य करती रहेगी। अंध विशवास को दूर करने के लिये कवि लिखते हैं–

प्राणी को भोजन नहीं, रहे पथरन कौ भोग लगाय।
तनक दया नहीं गीव रह, रहे भेड़ बकरिया खाय।[11]

जीवहिंसा रोकने के लिए इस तरह की फटकार लगाना इस बात का द्योतक है कि कवि को पशु, पक्षी व अन्य जीव-जंतुओं से कितना स्नेह है। कवि पूर्णत: अहिंसावादी होकर जनसामान्य को भी अहिंसावादी होने की सीख देते हैं।

स्वास्थ्य की समस्या को लेकर कवि ने हम सभी को आगाह करते हुए लिखा है–

 ISSN 0975-735X

तन की रक्षा खुद करो, ना करो किसी की आस।
समय पर निर्भर ना रहो, ये झूंठा त्यागोभास।
ये झूंठा त्यागोभास, खान-पान करो समझकें।
गाड़ी चालक हाथ, चलना उसे समरकें।
हनुवीर कवि कहें, करो नशा नींद का त्याग।
अज्ञ दसा में ना चलो, पल पल चलना जाग।[12]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवि हनूवीर जी साहब के काव्य में बुद्ध के स्वर हैं, जिन्होंने आजीवन मानव को मानव बनाने का कार्य किया। चंबल की घाटी में इतना मानव हितैषी व्यक्तित्व बनकर पधारे कवि हनूवीर ने मानव को मानव बनाने का पुरजोर प्रयास किया है। उनकी काव्यकृतियों में अंधविश्वास, ढोंग-रूढ़ि, अकर्मण्यता, झगड़ा-झाँसे आदि पर करारी चोट की गई है। तथाकथित धर्मों को उन्होंने आड़े हाथ लिया है। उन्होंने मनुष्य को दया, प्रेम, करुणा, प्रज्ञा का लोकभाषा में बताने का प्रयास किया है। उनके शब्द लोगों के शब्द हैं। विचार प्रेरक हैं। काव्य की दृष्टि से उन्होंने उपमा, रूपक, मानवीकरण का बखूबी प्रयोग किया है। उनकी हर पंक्ति में मानव-चेतना के स्वर मिलते हैं। कवि ने इंसान में दया भरने हेतु लिखा है–

दयाधीर संतोष कर धीरता, परोपकार जरूरी है।
परोपकार बसा है जिसके, तो मानवता पूरी है।'[13]

संदर्भ

1. कवि हनूवीर साहब : न्यायपंथी भजनमाला मानव-जीवन, कल्याण, प्रकाशक त्रिभुवनसिंह यादव, विवेकसिंह यादव, ग्राम साहिब का पुरा, भिंड (म०प्र०) कृष्णा प्रेस, जसवंतनगर, इटावा (उ०प्र०) पृ० 1
2. वही, पृ० 17-18
3. वही, पृ० 28
4. वही, पृ० 33
5. वही, पृ० 35
6. वही, पृ० 42
7. वही, पृ० 43
8. वही, पृ० 43
9. वही, पृ० 54
10. वही, पृ० 77
11. वही, पृ० 77
12. वही, पृ० 89
13. वही, पृ० 89

Surya Pushpa
5th Cross, Gayatri Nagar
Banavasi Road
SIRSI (North Kenara)
Karnataka 581401

तुलसीदासकृत रामचरितमानस में प्रकृति-चित्रण

डॉ॰ सुदेशकुमारी

कलापक्ष काव्यकृति का कलेवर होता है, जिसमें भावपक्ष रूपी जीवन का स्पंदन दिखाई देता है। इस रूप में कलापक्षीय सौंदर्य का महत्त्व भावपक्षीय सौंदर्य से किसी भी अंश में कम नहीं है।[1]

तुलसी के काव्य में कलापक्ष का सुंदर एवं सम्यक् विन्यास मिलता है। काव्यकला से तात्पर्य काव्य के कलापक्ष से है जिसके द्वारा कवि भावपक्ष का कलात्मक अभिधान प्रस्तुत करता है। अत: कलापक्ष के अभाव में काव्य की कल्पना असंभव सी प्रतीत होती है। यहाँ हमारे अध्ययन का विषय काव्य का कलापक्ष है। अत: हम उसकी ही चर्चा यहाँ करेंगे।[2]

कलापक्ष के अंतर्गत मुख्य रूप से भाषा, अलंकार-योजना व छंद-विधान आते हैं तथा प्रकृति-चित्रण मानव-सौंदर्य चित्रण भी कलापक्ष का ही एक अंग है। इन्हीं तत्त्वों का सम्यक् संयोजन कर कवि किसी काव्य की रचना करता है और उक्त तत्त्वों से ही उसका काव्य ग्राह्य बनता है।

तुलसीदास ने शैलीगत सौंदर्य के प्रत्येक पहलू को किसी-न-किसी रूप में छुआ है और उससे अपने महाकाव्य को पूर्ण रूपेण सुसज्जित भी किया है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति मनुष्य की चिर सहचरी है। उसके विविध रूपों में मनुष्य का मन विशेष रूप से सदैव रमा रहता है। मानव जीवन में प्रकृति की महत्ता के कारण ही जगत में भी प्रकृति के चित्रण को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है।[3] यद्यपि प्रबंध रचनाओं में कवि का ध्यान मुख्य रूप से प्रबंधतंत्र की ओर आकृष्ट रहता है, तथापि यह प्रसंग और अवसर के अनुरूप प्रकृति के चित्र काव्य के धरातल पर अंकित करता हुआ चलता है। तुलसी प्रकृतिप्रेमी कवि हैं। उन्होंने अपने महाकाव्य में प्रकृति के विविध चित्र अंकित किए हैं। इन चित्रों को उनकी रचना में निम्न प्रकार विवेचित किया जा सकता है–

1. **स्वतंत्र रूप में प्रकृति-चित्रण**

स्वतंत्र रूप से प्रकृति के दो रूप होते हैं–कोमल और कठोर। तुलसी ने दोनों ही प्रकार के रूपों का स्वतंत्र चित्रण किया है। रामचरितमानस में प्रकृति के कोमल चित्र इस प्रकार हैं–

कुसुमित विविध विटप बहुरंगा, कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा।
चली सुहावनि त्रिविध बयारी, काम कृशानु बढ़ावनिहारी।[4]

 ISSN 0975-735X

इसी प्रकार प्रकृति के कठोर रूप भी महाकाव्य में चित्रिण हुए हैं–

ब्याल कराल बिहंग बन घोरा, निसिचर निकर नारि नर चोरा।[5]

तुलसी ने रामचरितमानस में प्रकृति के कठोर रूप का अंकन बहुत कम किया है। इनकी चित्तवृत्ति प्रकृति के कोमल दृश्यों में ही रमी है।

2. आलंकारिक रूप में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण में प्रतीकों के माध्यम से कथ्य की प्रस्तुति प्रकृति का आलंकारिक स्वरूप प्रकट करती है। रामचरितमानस महाकाव्य में प्रकृति के इस रूप का दर्शन अनेक स्थलों पर होता है। इसका दर्शन निम्न प्रकार होता है–

उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग

3. मानवीकरण के रूप में

प्रकृति में चेतना का आरोपण मानवीकरण कहलाता है, प्रकृति-चित्रण के इस रूप में जड़ प्रकृति चेतनवत् व्यवहार करती है। वह मानवीय भावों से तादात्म्य स्थापित कर लेती है और मनुष्य के सुख-दुख में मनुष्य के साथ हँसती रोती है–

जड़ चेतन मग जीव घनेरे, जो चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे।
ते सब भए परम पद जोगू, भरत दरस मेटा भव रोगू।[8]

रामचरितमानस में प्रकृति के मानवीकृत रूप कुछ विशेष स्थानों पर आते हैं। भरत के चित्रकूट जाते समय मेघों का छाया करना, वायु का मंद गति से प्रवाहित होना प्रकृति के सेवाधर्मी स्वरूप का परिचय देता है। इसे हम रामचरितमानस में प्रकृति का मानवीकरण कह सकते हैं।

4. उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण

रामचरितमानस में प्रकृति प्रायः शृंगाररस के उद्दीपन विभाव के रूप में अंकित है।

रामचरितमानस में प्रकृति संयोगपक्ष की अपेक्षा वियोगपक्ष के उद्दीपन में अधिक सफल रही है। काम-भावनाओं के उद्वेलन में प्रकृति के महत्त्व से तुलसी सुपरिचित थे। किष्किंधाकांड में सीता-वियोग से दुखी राम की भावनाएँ वर्षा के प्रकृतिमय परिवेश से विशेष रूप में उद्दीप्त हुई है। एक उदाहरण निम्नवत है–

घन घमंड गरजत घन घोरा, प्रियाहीन डरपत मन मोरा।[9]

घन-गर्जन सुनकर प्रियाहीन होने की जो अनुभूति होती है, वह उनकी विरह-भावना को अनायास उद्दीप्त कर देती है।

5. उपदेशात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति से उपदेश ग्रहण करने का वर्णन तुलसी ने रामचरितमानस में अनेक स्थानों पर किया है। डॉ॰ किरनकुमारी गुप्ता ने रामचरितमानस के ऐसे प्रसंगों पर 'श्रीमद्भागवत' का प्रभाव स्वीकार करते हुए लिखा है–'प्रकृति से उपदेश-ग्रहण की भावना में तुलसी पर श्रीमद्भागवत् का प्रभाव है। इनके वर्षा और शरद ऋतु के वर्णन भागवत् के दशम स्कंद के बीसवें अध्याय से मिलते-जुलते हैं। वर्षा, शरद तथा अन्य पर तुलसी ने लक्ष्मण को खल के प्रेम की अस्मिता एवं

माया और ब्रह्म के विषय में विस्तृत व्याख्यान दिलाया है।[10] डॉ॰ किरनकुमार के उपर्युक्त कथन की पुष्टि 'रामचरितमानस' के निम्नांकित उद्धरण से भी होती है–

देखि इंदु चकोर समुदाइ, चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक दंस बीते हिम त्रासा, जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा।[11]

वर्षा-वर्णन में भी ऐसे उपदेशात्मक प्रसंग तुलसी ने 'रामचरितमानस' में प्रस्तुत किए हैं।

6. नाम परिगणन के रूप में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति-चित्रण के संदर्भ में पौधों, वृक्षों, फूलों, फलों आदि का नामोल्लेख काव्य में नाम-परिगणन कहलाता है। इस रूप में वर्णित प्रकृति से किसी प्रकार का रसोद्रेक व भावपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता, इस कारण इसे अधिक अच्छा नहीं माना जाता। रामचरितमानस में इस परंपरा के दर्शन यत्र-तत्र सुलभ हैं। एक उदाहरण देखिए–

चंपक बकुल कदंब तमालाला, पाटल पनस परास रसाला।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना, चंचरीक पटली कर गाना।[12]

तुलसी की रुचि प्रकृति के उपदेशातमक रूप में अधिक रही है। प्रकृति के स्वतंत्र चित्र अंकित करने में तुलसी अत्यंत कुशल सिद्ध हुए हैं।

मानव सौंदर्य चित्रण

सौंदर्य में सहृदय के कोमल हृदय को आकृष्ट करने की अपूर्व क्षमता होती है। वह चाहे किसी भी रूप में अथवा किसी भी स्तर पर प्रकट हों, अपनी ओर दृष्टिपात होते ही चित्त को आकृष्ट कर लेता है। प्रकृति के सौंदर्य में भावुक चित्रवृत्ति वाले जनों को घंटों तक डूबे हुए देखा जा सकता है। साहित्य के सौंदर्य में सुधी वाचक सब-कुछ भूलकर डूब जाते हैं।[13]

इस प्रकार सौंदर्य में दर्शक को स्वयं बाँध लेने की अद्‌भुत क्षमता होती है। यह क्षमता मानव-सौंदर्य में भी होती है। सुंदर नारी या पुरुष को सब लोग देखते ही रह जाते हैं। शिशुओं का भोला सौंदर्य सबको लुभा लेता है। अनजान बालकों को देखकर भी उनके सौंदर्य के कारण हम उनके प्रति भी आकृष्ट होते हैं। जिस सौंदर्य के प्रति जनसामान्य तक आकर्षण बना रहता है, उसके प्रति कवि का आकृष्ट होना और भी स्वाभाविक है। स्वयं भी मानव होने के कारण कवि-मन मानवीय सौंदर्य के प्रति आकृष्ट रहता है। कविवर सुमित्रानंदन पंत ने मानव-सौंदर्य को सर्वोत्तम बताया है–

सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम्।[14]

मानव का यह सुंदरतम सौंदर्य दो रूपों में श्री रामचरितमानस में प्रकट हुआ है– बाह्यसौंदर्य तथा अंत:सौंदर्य।

बाह्य सौंदर्य से अभिप्राय रूप सौंदर्य से है। यह सौंदर्य पुरुष, नारी और शिशु सभी में प्राप्त होता है। पुरुष के सौंदर्य का चित्रण रामचरितमानस में केवल राम के संदर्भ में हुआ है–

तन अनुहरत सुचंदन खोरी, स्यामल गौर मनोहर जोरी।
केहरि कंधर बाहु बिसाला, उर अति रुचिर नागमनि माला।[15]

पुरुष के रूप-सौंदर्य के समान नारि के रूप-सौंदर्य का चित्रण भी महाकवि ने किया है, जब सीता के रूप-वर्णन का ही मर्यादित अवसर मिल सका है–

 ISSN 0975-735X

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई, बिरचि बिस्व कहुँ प्रगट दिखाई।
सुंदरता कहुँ सुंदर करहिं, छविगृहँ दीपशिखा जनु बरहिं।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरौं विदेहकुमारी।[16]

नारी के सौंदर्य-चित्रण में तुलसी मर्यादा के बंधन के कारण सफल नहीं हो सके। उन्होंने 'अवर्णनीय' कहकर नारी सौंदर्य-वर्णन से छुटकारा पा लिया। शिशु-सौंदर्य के वर्णन में तुलसी ने विशेष रुचि नहीं ली है। तुलसी ने राम के सौंदर्यांकन में शिशु-सौंदर्य का चित्र निम्नवत् अंकित किया है–

काम कोटि छबि स्याम सरीरा, नील कंज बारिद गंभीरा।[17]

इस वर्णन में शिशु सौंदर्य की अभिव्यक्ति भक्तिभाव के गुरुतर भार तले दबी होने के कारण वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में असफल है। अत: यह वर्णन भक्ति की दृष्टि से ही प्रभाव पूर्ण है, शिशु-सौंदर्य की दृष्टि से नहीं।

7. **अंत:सौंदर्य**

मनुष्य में निहित अच्छाइयाँ उसका अंत:सौंदर्य है। इसका महत्त्व उसके बाह्यसौंदर्य की अपेक्षा अधिक है, क्योंकि यह लोकहित की साधना में सहायक होता है और जनकल्याण का हेतु बनता है। बाह्यसौंदर्य से दर्शक को क्षणिक तुष्टि और सौंदर्य-संपन्न की अस्थाई प्रशंसा-मात्र मिलती है, जबकि अंत:सौंदर्य से उसके संपर्क में आनेवाले को स्थायी हित और सौंदर्य-संपन्न को स्थायी सुख मिलता है। इस कारण इसका महत्त्व असंदिग्ध है।

रामचरित-मानस के पात्र अंत:सौंदर्य से संपन्न हैं। तुलसी ने राम, लक्ष्मण, भरत, सीता आदि को अंत:सौंदर्य सुसंपन्न दर्शाया है। उनके राम के अंत:सौंदर्य का एक दृश्य देखें–

सुनु जननी सोई सुत बड़भागी, जो पितु मातु वचन अनुरागी।
तनय मातु पितु तोषनिहारा, दुर्लभ जननि सकल संसारा।[18]

राम की आज्ञाकारिता में उनका अंत:सौंदर्य प्रकट हुआ है। सीता के अंत:सौंदर्य की झलक उनके परित्याग-प्रसंग में मिली है–

प्रभु के बचन सीस धरि सीता, बोली मन क्रम बचन पुनीता।
लछिमन होहु धरम के नेगी, पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।[19]

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि रामचरितमानस में मानवीय सौंदर्य के सुंदर चित्र प्रकट हुए हैं।

निष्कर्ष

कलापक्ष की दृष्टि से रामचरितमानस का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि इसके समस्त बिंदुओं पर अद्‌भुत साम्य है। रामचरितमानस में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। इसमें अनेक स्थलों पर संस्कृत का भी सफल प्रयोग मिलता है। चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, भावानुकूलता, प्रवाहमयता आदि गुण भाषा में सर्वत्र व्याप्त हैं।

रामचरितमानस में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों की प्रमुखता है। तुलसी ने रामचरितमानस में सभी अलंकारों का अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रयोग किया है। इसमें मिश्रित छंदों का प्रयोग भी हुआ है। प्रकृति और मानव-सौंदर्य चित्र इस महाकाव्य में अत्यंत आकर्षक हैं।

ये पुरुषों के सौंदर्य के चित्रण में अधिक सफल रहे हैं। नारियों व शिशुओं के सौंदर्यांकन में असफल से प्रतीत होते हैं।

तुलसी का हृदय प्रकृति के सौंदर्य से उपदेश खोजने में व्यस्त रहा है। मानव के बाह्य और अंत:सौंदर्य का विशिष्ट समावेश है।

संदर्भ

1. रामचरितमानस और रघुवंश डॉ॰ करुणा पांडेय, पृ॰ 170
2. तुलसी विशेष अध्ययन, डॉ॰ विजयशंकर मल्ल, पृ॰ 53
3. रामचरितमानस और रघुवंश, डॉ॰ करुणा पांडेय, पृ॰ 186
4. रामचरितमानस, 1/126/2-3
5. वही, 2/63/3
6. वही, 1/254
7. वही, 2/217/1-2
8. वही, 4/14/1
9. हिंदी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ॰ 130
10. रामचरितमानस, 4/17/7-8
11. रामचरितमानस, 3/40/5-6
12. रामचरितमानस और रघुवंश, डॉ॰ करुणा पांडेय, पृ॰ 191
13. सुमित्रानंदन पंत, पल्लविनी, पृ॰ 249
14. रामचरित-मानस, 1/219/4-5
15. वही, 1/23/6-8
16. वही, 1/199/1
17. वही, 2/41/7-8
18. वही, 6/109/1-2

डॉ॰ सुदेशकुमारी
पत्नी श्री विवेक
म॰ नं॰ 2193, **अर्बन स्टेट,**
जीन्द (हरियाणा) 126102

ISSN 0975-735X

प्रेम जनमेजय का सामाजिक सरोकार

साधना झा

मानवीय चेतना का विकास सामाजिक वातावरण में होता है। मनुष्य का मनुष्य से सरोकार ही उसे सामाजिक बनाता है। समाज सतत परिवर्तनशील है। सामाजिक परिवर्तन से साहित्य प्रभावित होता है। साहित्यकार को प्रेरणा समाज से प्राप्त होती है। इसलिए प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने समय के समाज की वास्तविकताओं तथा आवश्यकताओं को साहित्य में रूपायित करने का प्रयास करता है। रमेश उपाध्याय ने 'कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा' में लिखा है–'जहाँ पहले यह माना जाता था कि साहित्य समाज को बदलता है, वहाँ अब यह मान्यता सामने आई है कि समाज का बदलाव साहित्य को बदल देता है।'[1]

साहित्य का साध्य एवं साधन समाज है। सामाजिक परिवेश की विसंगति आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि कई कारणों से हो सकती है। जब साहित्यकार घुटन की अनुभूति करता है, तो वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए आदर्श या यथार्थ का हाथ थमता है। व्यंग्यकार की पैनी नैतिक दृष्टि समाज में पल रहे अनैतिक, अराजक, स्वार्थी चरित्र को पहचान लेती हैं और इसके छद्मवेश का पर्दाफाश करने के लिए तत्पर हो जाती है। रमेश उपाध्याय ने व्यंग्यलेखन के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हुए इसे 'सामाजिक लड़ाई' माना है–'मेरे विचार से व्यंग्य लेखन साहित्यिक या कलात्मक स्तर पर लड़ी जाने वाली ऐसी लड़ाई है, जो समाज को सुधारने या बदलने के लिए लड़ी जाती है। यह लड़ाई सामाजिक बुराई पर प्रहार करते हुए और व्यक्तिगत मूर्खता को हास्यास्पद बनाते हुए लड़ी जाती है।'[2]

सामाजिक बुराई अर्थात सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार व्यंग्य का लक्ष्य रहा है। भारतीय समाज में व्याप्त विसंगति की परंपरा कबीर से लेकर परसाई और उनके बाद तक निर्बाध गति से चलायमान है। फिर भी स्वतंत्रता-पूर्व और पशचात् के भारतीय समाज में कतिपय भिन्नता है। स्वतंत्रता-पूर्व के भारतीय समाज की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। उस समय ब्रिटिश-साम्राज्यवाद के विरोध में संपूर्ण समाज सघंर्षशील था। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में परिवर्तन अत्यंत तेजी के साथ तथा अनेक स्तरों पर हुआ। स्वतंत्र होने की आकांक्षा से प्रेरित भारतीय समाज राम-राज्य की परिकल्पना में लीन था और फिर स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ वर्षों तक वे मोह की स्थिति में रहे। अंतत: इस शोषण से परिपूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता से उनका मोहभंग हो गया। सातवाँ दश्क मोहभंग का दश्क था । हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी तथा श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में सपने टूटने की गूँज-अनूगूँज हमें सुनाई पड़ती है। आठवाँ और नौवाँ दशक भारतीय सामाजिक और पारिवारिक आदर्शों के बदलाव का दशक रहा है। इस बदलाव ने भारतीय

जीवन-मूल्य को प्रभावित किया। नैतिक मूल्यों में गिरावट के साथ-साथ धन के प्रति आकर्षण से परिपूर्ण भारतीय समाज के परिवार विघटित होने लगे। पारिवारिक विघटन, रुपयों का अवमूल्यन, मुद्रा-स्फीति, शेयर बाजार का घोटाला, सरकारी कार्यालय की अकर्मण्य संस्कृति तथा गैरसरकारी संस्थानों का नवीन सांस्कृतिक परिवेश भारतीय समाज की विशेषता बन गई, जिसका यथार्थ प्रेम जनमेजय के व्यंग्य-साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने अपने समय के समाज में व्याप्त विविध समस्याओं पर दृष्टि केंद्रित की है। इस संबंध में नरेंद्र कोहली का विचार उल्लेखनीय है–प्रेम शेयर बाजार को भी समझता है। निर्यात और आयात को भी समझता है। उत्पादन और विक्रय को भी समझता है। मुद्रास्फीति और मुद्रा विनिमय की स्थिति और परिस्थिति को भी समझता है।...तो कैसे समझता है? क्योंकि वह बहुधंधी है। विभिन्न क्षेत्रों के संपर्क में आता है और वहाँ की सामग्री से अपना साहित्य रचता है।'[3]

आठवें दशक के समाज में एक यांत्रिकता है। इस यांत्रिकता ने शहरी जीवन को अधिक प्रभावित किया। इसके कारण ही आधुनिक महानगर अमानवीय संवेदनहीनता से गुजर रहा है। महानगर में लोग दफ्तर जाने के लिए घंटों कतार में खड़े रहते हैं और बस न मिलने पर या बस में न चढ़ पाने पर उनका रक्तचाप बढ़ने लगता है। दफ्तर समय पर पहुँचने की जल्दी के कारण सहयात्री की मृत्यु से भी उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है। आधुनिकता का यह दृश्य अत्यंत पीड़ादायक है। प्रेम जनमेजय ने 'बस स्टाप की भीड़' निबंध में शहर के इस विसंगतिपूर्ण जीवन के मध्य नष्ट हो रहे मानवीय मूल्य की व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति की है। शहरी संवेदनहीनता और अमानवीयता को उभारती यह व्यंग्य-रचना पाठकों के हृदय में करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित करती हैं–'दूसरी बस इस दृश्य को देखने के लिए रुक गई है। पहली बस के यात्री उतरकर बस-स्टॉप की भीड़ के साथ दूसरी बस की ओर लपकते हैं।...सारे बस में मरे आदमी की कथा फैलने लगती है। आदमी सड़क पर लेटा है बस भर्र...से स्टार्ट होती है और पहली वाली बस के बगल में से गुजरती हुई चल देती है।'[4]

स्वतंत्र भारत में पहले वेतन आयोग का आगमन होता है और फिर उसके पीछे महँगाई अपना पंख पसार लेती है। 'रहिए अब ऐसी जगह' नामक निबंध में प्रेम जनमेजय ने आय और महँगाई के अंतर-संबंध पर अपना विचार व्यक्त किया है–वेतनभोगी टैक्स कम होने से, डी॰ए॰ मिलने से, पे कमीशान आदि के लागू होने से जब प्रसन्न होते हैं तो बेटे को नुक्कड़वाले हलवाई के पास मिठाई लेने को भेजता है और पत्नी को गरमागरम पकौड़े बनाने का आदेश देता है। उसके घर में वसंत आ जाता है; पर बहुत जल्दी महँगाई का पतझड़ अपने पैर पसार लेता है। मध्यवर्गीय परिवार का जीवन इन दो मौसमों के साए तले अपना जीवन काट देता है।'[5]

आधुनिक मनुष्य जिन उपायों का प्रयोग अनेक प्रकार की ग्रंथियों से मुक्त होने के लिए करता है, उनमें से परनिंदा भी एक है। 'मक्खियाँ' नामक निबंध में प्रेम जनमेजय ने निंदारस में लीन व्यक्तियों पर व्यंग्य करते हुए उन्हें मक्खी कहा है–'मक्खियाँ जो आर्डर नहीं देती हैं। जो हमारे और आपके आर्डर पर ही रस लेती हैं, जिनको हम अपनी सज्जनता के कारण उड़ा नहीं पाते हैं।'[6] इन मक्खियों का काम केवल गंदगी फैलाना है। वे गंदगी में ही बैठती हैं और गंदगी को ही अपने में समेटती हैं। इस प्रकार के व्यक्ति समाज में मक्खी की तरह भिनभिनाते हुए गंदगी बिखेरते रहते हैं। प्रेम जनमेजय लिखते हैं–'मुझे उनका चेहरा बदलता-सा लगा। उनके कंधों पर

 ISSN 0975-735X

जैसे पंख उगने लगे थे। उन्होंने भिन-भिन किया, मैंने पकड़ना चाहा, परंतु वे उड़ गए। अब वे दूसरी टेबल पर बैठेंगे। वहाँ खाना खाएँगे, गंदगी बिखेरेंगे, समेटेंगे और फिर उड़ जाएँगे।'[7]

आठवें-नौवें दशक के भारतीय समाज शेयर बाजार के मोहपाश में बँध गया था। शेयर बाजार ने लोगों के मन में जल्द-से-जल्द अधिक धन प्राप्त करने की इच्छा को जगा दिया था। इस मोहपाश ने मध्यवर्ग को सर्वाधिक आकर्षित किया । शेयर बाजार में निवेश करने का फैशन चल पड़ा था। इसमें निवेश करनेवालों की रातों की नींद गायब हो जाती थी। हर पल शेयर के भाव के बारे में सोचते रहते थे। इनकी स्थिति देश, दुनिया यहाँ तक कि अपने अड़ोस-पड़ोस से भी बेखबर दीवानों जैसी हो जाती थी। प्रेम जनमेजय की तीक्ष्ण दृष्टि समाज की इस नवीन विशेषता पर पड़ी। उन्होंने 'जिंदगी नींद है उचटी हुई दीवाने की' में इन पर व्यंग्यात्मक चुटकी की है, 'हमारे एक मित्र हैं राकेश मलिक। उनसे जीवन की व्याख्या पूछिए, वह कहेंगे कि जीवन एक शेयर बाजार है। मलिक साहब आजकल शेयर बाजार के आतंक से आतंकित हैं।...शेयर बाजार का ऊँट किसी भी करवट बैठे पर उसने मलिक साहब जैसे लोगों को दिवाना बनाकर छोड़ा है। आठ बजे उठने वाले मलिक साहब पाँच बजे उठ बैठते हैं।'[8]

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में भारतीय जनता का विदेशी वस्तु के प्रति मोह अत्यधिक बढ़ गया। इस मोहपाश ने अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता को हेय दृष्टि से देखने की समझ दी। गुलाम मानसिकता से ग्रसित भारतीय समाज पर अँग्रेजी और अँग्रेजियत का भूत सवार हो गया। प्रेम जनमेजय ने अपने निबंध 'एक्सचेंज ऑफर' में इस स्थिति पर विडंबनात्मक व्यंग्य किया है, 'हमारे इंजीनियरों, डॉक्टरों और वैज्ञानिकों को अपना देश बीभत्स लगता है और वे अपने मस्तिष्क का 'एक्सचेंज ऑफर' कर अमेरिका या इंग्लैंड चल देते हैं। वह दिन दूर नहीं, जब मुझ जैसे आम भारतीय को अपना देश ही कबाड़ लगने लगेगा और इसे नया करने के लिए कुछ भी कीमत देने के लिए हम तैयार हो जाएँगे।'[9]

जब रुपयों का अवमूल्यन बढ़ा तो मध्यवर्ग में दिखावे की वृत्ति आसमान छूने लगी। प्रेम जनमेजय ने दिखावे की इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। उन्होंने इसे बदलते सामजिक परिवेश की एक विशेष वृत्ति के रूप में चित्रित किया है। 'राधेलाल' प्रेम जनमेजय द्वारा निर्मित ऐसा पात्र है, जिसके माध्यम से वे अपनी सारी अनकही इच्छाओं को अभिव्यक्त करते रहे हैं। राधेलाल प्रोविडेंट फंड से तीस हजार रुपए उधार लाकर पत्नी को बड़े जोश और उमंग से भरकर देते हैं तथा पत्नी के द्वारा पूछे जाने पर 'इतने सारे पैसे कहाँ से?' तो राधेलाल समझाते हैं, 'अरे भाग्यवान, तुम ही कहती थीं न कि घर में पड़ोसियों से अच्छा सोफा नहीं है, रंगीन टी॰वी॰ नहीं है, परदे ओल्ड फैशन के हैं, ओवन नहीं है। पड़ोस में तुम्हारी इज्जत कम हो रही थी कि नहीं! इसलिए मैंने प्रोविडेंट फंड से तीस हजार ले लिए हैं, धीरे-धीरे कटता रहेगा।'[10]

प्रेम जनमेजय ने 'एक अबाढ़-पीड़ितों की व्यथा' में भी मध्यवर्गीय मानसिकता पर कटाक्ष किया है, 'मध्यमवर्ग के पास एक नाक ही तो बहुमूल्य वस्तु होती है, जिसे बचाने के लिए वे उधार लेकर टी॰वी॰, फ्रिज, गैस, कपड़े धोने की मशीन आदि खरीदते हैं।'[11] 'मुझे सी॰ डी॰ चाहिए, पापा!' में राधेलाल को उसका पुत्र इंसटालमेंट में सी॰डी॰ लेने का सरल मार्ग सुझाता है। यही मध्यवर्ग की आवश्यकता बन गई। प्रेम जनमेजय ने 'आह, वीडियो रोग'; 'आया रंगीन टी॰वी॰' इत्यादि रचनाओं में भी मध्यवर्ग की इसी वृत्ति को कथ्य का आधार बनाया है।

धन के द्वारा व्यक्ति कोई भी काम आसानी से करवा सकता है। लक्ष्मीभक्तों के सामने सरस्वतीपुत्रों की कोई औकात नहीं होती है। प्रेम जनमेजय अपने समय के समाज में धन के प्रति बढ़ते आकर्षण को देखकर भी क्षुब्ध हैं। उन्होंने धन के महत्त्व को 'देख, खेल का खेल' नामक व्यंग्य में इस प्रकार से व्यंजित किया है, 'आदमी कितना भी अनपढ़ क्यों न हो, धन का मायने तो जनता ही है। वैसे भी आज का युग पैसे का युग है। पैसा फेंको और कुछ भी खरीद लो। आप चाहे कितने बेईमान हों, पैसा फेंककर ईमानदार होने का सम्मानयुक्त प्रमाण-पत्र तो प्राप्त कर ही सकते हैं। पढ़ने से कितना ही दूर रहे हों, वेल्थ आपको विश्वविद्यालय की मानद उपाधि दिला ही सकती है।'[12]

सामंती समाज में नारी और भूमि को एक ही दृष्टि से देखा जाता रहा। स्वतंत्र भारत के समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ। साहित्य में स्त्री-विमर्श की बात कर अवास्तविक परिवर्तन की चर्चा की जाती है। देवीशंकर नवीन ने आधुनिक भारतीय समाज में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति और साहित्य में उसकी उपस्थिति पर विचार व्यक्त किया है–'नीतिशास्त्रों में पाठ पढ़ाया जाता है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' मगर हमारे देश में इसके समानांतर सरेआम औरतों की इज्जत लूटी जा रही है, मवेशी की तरह औरतें बेची जाती हैं और किराए की पोषक की तरह औरतें पहनी जाती हैं।'[13]

प्रेम जनमेजय ने 'डूबते सूरज का इश्क' नामक कहानी में स्त्रियों के प्रति पुरुष की मानसिकता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। समाज चाहे जितनी भी प्रगति कर ले स्त्री के प्रति उसका नजरिया नहीं बदलता। उनकी दृष्टि में स्त्री की स्थिति हमेशा उनसे नीचे के पायदान पर ही टिकी रही। उन्होंने लिखा है, 'इसके लिए जितना गिरना पड़े गिरो, वरना बुढ़ापे (?) में असफलता की वह कालिख पुतेगी कि जवानी का सारा किया-कराया धरा रह जाएगा और फिर औरत के आगे पुरुष हार जाए, पुरुष...जिसकी नारी चेरी है, दासी है, भोग्या है।'[14]

शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने स्त्रियों के सामाजिक-पारवारिक दायित्व को बढ़ा दिया है। वह अपनी इस अतिरिक्त जिम्मेदारी को बखूबी निभाने का अथक प्रयास कर रही है। प्रेम जनमेजय ने अपने निबंध 'पत्नी-विरोध में रैली' में इन स्त्रियों की त्रासद पारिवारिक और सामाजिक स्थिति पर व्यंग्य करते हुए इन्हें 'स्वचालित मशीन' की संज्ञा से नवाजा है–'पहले नारी घरेलू ही हुआ करती थी । नारी-स्वातंत्र्य के कारण पढ़ने-लिखने और नौकरी करने लगी, परंतु घरेलू तब भी रही। ऐसी नारी पत्नी के रूप में पुरुष के लिए बहुत लाभदायक होती है। वह घरेलू रूप में बर्तन धोने, खाना बनाने से लेकर बच्चे पालने तक के सारे काम करती है और महीने के अंत में स्वचालित मशीन की तरह निश्चित रकम भी लाकर देती है।'[15]

हर युग में नारी उत्पीड़न और शोषण का शिकार होती रही हैं। नारी की भयावह सामाजिक स्थिति के लिए पुरुष ही जिम्मेदार हैं। समाज में स्त्रियों की इस भयावह स्थिति पर कटाक्ष करते हुए प्रेम जनमेजय ने लिखा है, 'तू दहेज के साँप को पाल, नारी को ईश्वर-शक्ति की अफीम खिला और उसकी आँखों पर पतिव्रत धर्म का चश्मा चढ़ा तथा खुद चैन की बाँसुरी बजा। तू नारी को रत्न बनाकर अपनी शेभा बढ़ा, उसे क्रय-विक्रय की वस्तु बना और यदि वह रत्न न बने तो उसे परीक्षा की अग्नि में जलाकर खरा सोना ही बना; क्योंकि तू पुरुष है, धन्य है!'[16]

 ISSN 0975-735X

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में 'भ्रूण परीक्षण' और 'कन्या-भ्रूण हत्या' विकराल सामाजिक समस्या के रूप में उभरकर आई। अपने समाज के प्रति संवेदनशील और जागरूक व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय ने इस गंभीर समस्या पर व्यंग्य किया है, 'आजकल वैज्ञानिकों ने ऐसी खोज तो कर ली है, जिससे भ्रूणावस्था में ही पता चल जाता है कि लड़का होने वाला है या लड़की। धन्य हैं ऐसे वैज्ञानिक जिन्होंने हौवा की पीड़ा को समझा और उसका उद्धार किया। हमें उतनी ही औरतें चाहिए, जो घर की चक्की में पिसती रहें।'[17]

भूमंडलीकरण ने संपूर्ण विश्व को एक विराट बाजार में परिवर्तित कर दिया है। इस बाजार ने भारतीय समाज को सभ्य बना दिया है। अत: अब वे हर काम 'निपटाऊ शैली' में करते हैं। प्रेम जनमेजय ने 'इक श्मशान बने न्यारा' में इस 'निपटाऊ शैली' पर करारा व्यंग्य किया है। उन्होंने आधुनिक समाज की संवेदनहीनता पर कटाक्ष किया है। आज का मनुष्य 'स्व' में ऐसा सीमित हुआ है कि 'शवयात्रा' में भी अपने लाभ और व्यवसाय के बारे में सोचकर ही शामिल होता है। समय और संवेदना के अभाव ने जिस मानवीय समाज का निर्माण किया है, उसका भविष्य बहुत भयावह है। उदाहरण द्रष्टव्य है–'बड़े-बड़े महानगरों के लोग बहुत बिजी होते हैं, श्रीमान। यहाँ निपटने की संस्कृति चलती है सुबह शवयात्रा निपटाई, दोपहर को क्लाइंट के साथ लंच निपटाया, शाम को बर्थ-डे पार्टी निपटाई और रात को शादी निपटा दी।...हे बहुराष्ट्रीय कंपनियो! तुम्हें बारंबार प्रणाम कि तुमने इस मुर्दा देश को खूबसूरत कर दिया, तेरे बाजारवाद ने शव को भी दुलहन बना दिया।'[18]

अपने वर्तमान से रूबरू होते हुए प्रेम जनमेजय ने 'इक श्मशान बने न्यारा' में इस उपभोक्तावादी संस्कृति के चपेट में आ रहे भारतीय समाज के घिनौने रूप को सबके सामने लाने का प्रयास किया है, 'एक बात और है श्रीमान, कि आजकल खूबसूरती है जहाँ पैसा है वहाँ। सुंदरता बेचो और पैसा खैंचो। श्मशान सुंदर हुआ तो उसके ठेके उठे सुंदर श्मशान की डिजाइनिंग का ठेका, पार्किंग का ठेका, लकड़ी का ठेका, आचार्य कर्म का ठेका, नारियल का ठेका, सामग्री का ठेका, आदि-आदि। एक दिन लकड़ी के ठेकेदार राधेलाल ने मेरे कान में कहा, 'श्मशान में बिजनेस करने का एक लाभ है कि साला कोई भाव-तोल नहीं करता और न ही यह देखता है कि कितनी तुली है! अरे मुर्दे के साथ आए लोगों को रोने-धोने से फुरसत ही कहाँ होती है'। यह कहकर वह खी-खी करके हँस पड़ा।'[19]

उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय समाज में विदेशी वस्तुओं के प्रति आकर्षण बढ़ा दिया। प्रेम जनमेजय ने भारतीय समाज की इस प्रवृत्ति पर चुटकी ली है, 'यदि आप सिगरेट या पाइप पीते हों तो वे भी महत्त्वपूर्ण होने चाहिए और ये महत्त्वपूर्ण तब होंगे, जब महँगे होंगे। आपका इत्र, डयोडेरेंट महत्त्वपूर्ण भी होने चाहिए और आप तो ज्ञानी हैं, जानते ही हैं कि ये सब चीजें विदेशी हों तो अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं।'[20]

आधुनिककाल में खोखली मान्यताएँ, स्वार्थपरता, महत्त्वाकांक्षा और साधनों की अशुद्धता आदि के कारण व्यक्तित्व का विघटन प्रारंभ हुआ। अध्यापक इस समाज का अभिन्न अंग होने के कारण ये गुण उनके व्यक्तित्व में भी समा गए। सुख-सुविधा को प्राप्त करने की अदम्य इच्छा उनमें भी बलवती हुई है। आज आदर्श शिक्षकों का अभाव बहुत खलने लगा है। प्रेम जनमेजय ने 'आई एम सॉरी गोबिंद' नामक व्यंग्य-वृतांत में इन शिक्षकों के अनैतिक और भ्रष्ट आचरण

पर कटाक्ष किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है, 'हे गोबिंद, मैं तो आपके ही चरण थामना चाहता हूँ क्योंकि आप बहुत 'सस्ते' हैं। आप सवा रुपिए या अधिक से अधिक सवा पाँच रुपिए में प्रसन्न हो जाते हैं। आप अच्युत हैं, इसलिए आप पर मँहगाई का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, परंतु गुरुओं ने महँगाई के अनुरूप अपनी गुरुदक्षिणा भी बढ़ा दी है।...गुरु आश्वासन से नहीं, उसके एडवांस से प्रसन्न होता है।'[21]

आज के शिक्षकों ने कापी जाँचने को एक व्यवसाय के रूप में अपनाया है और परीक्षक बनकर विद्यार्थियों का भला करने का बीड़ा उठाया है। प्रेम जनमेजय समाज का और अपना कल्याण करने में व्यस्त इन परीक्षकों पर व्यंग्य करते हुए 'अथ परीक्षक-वृत्तांत' नामक निबंध में लिखते हैं–'प्यारे, परीक्षक बनकर लोग एक 'सीजन' में हजारों कमा लेते हैं, तुम्हें कुछ सौ खटकने लगे।...पंद्रह-बीस दिन काम करके पांच-छह सौ बन जाएँ तो क्या बुरा है।...एक बार परीक्षक बन जाओगे तो तुम्हीं आकर मुझसे कहोगे, कुछ और एग्जामिनरशिप दिलवा दो।'[22]

प्रेम जनमेजय ने 'अथ स्टडी लीव प्रकरण' में होनहार छात्र के गुणों का बखान इस प्रकार से किया है–'विद्यासुंदर होनहार छात्र निकला। पिता के पैसे के बल पर वह परीक्षा से पहले प्रश्नपत्र प्राप्त कर तथा तृतीय श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण कर दिन-दूनी, रात-चौगुनी प्रगति करने लगा।'[23]

धार्मिक क्षेत्र में बढ़ते पाखंडवाद पर प्रेम जनमेजय की चिंता व्यंग्यकथा 'मनुष्य और ठग' में अभिव्यंजित हुई है। इसमें उन्होंने धर्मगुरुओं के पाखंड पर करारा व्यंग्य किया है। धर्मगुरुओं के अनाचार और पाखंडपूर्ण जीवन की विसंगति का चित्रण उन्होंने 'कौन कुटिल खल कामी' में भी किया। इनके पाखंड का पर्दाफाश करते समय प्रेम जनमेजय की भाषा अत्यंत तल्ख हो जाती है–'जीवन की गंदगी को आत्मीय भाव से ग्रहण कर उससे लिपटे सूअर को अपने देखा है, चेहरे पर कैसा संतई भाव होता है! ऐसा ही संतई का भाव मुझे आजकल के बाबाओं और संतों के चेहरों पर दिखाई देता है, 'धन्य हैं हमारे कलियुगी संत, जिन्हें माया-मोह की गंदगी से लिपटे रहने के बावजूद उससे घिन नहीं आती है।'[24]

प्रेम जनमेजय हरिशंकर परसाई को अपना आदर्श मानते हैं। 'व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य' नामक पुस्तक में उन्होंने स्वीकार किया है कि–'हरिशंकर परसाई के लेखन से मैं बहुत प्रभावित हुआ और उनकी व्यंग्य-संबंधी मान्यताओं से लगभग सहमत।'[25] प्रेम जनमेजय ने 'लगभग सहमत' शब्दों के द्वारा असहमति के बिंदुओं की ओर संकेत कर दिया। असहमति का अर्थ विरोध नहीं होता है। मौलिक लेखकों की यही विशेषता होती है। हरिशंकर परसाई को व्यंग्य में हास्य की उपस्थिति से कोई वैर नहीं था, परंतु प्रेम जनमेजय को व्यंग्य में हास्य से परहेज है 'प्रेम जनमेजय व्यंग्य में हास्य की उपस्थिति को अनिवार्य नहीं मानते। उनका मानना है कि हास्य का मिश्रण व्यंग्य की प्रभावोत्पादकता को बाधित करता है।'[26] उन्होंने व्यंग्य को हास्य की चाशनी में डुबोकर परोसे जाने का विरोध किया है। प्रेम जनमेजय का मानना है कि–'व्यंग्य को हास्य की वैशाखी की क्या आवश्यकता है?...व्यंग्यकारों का एक वर्ग व्यंग्य को कुनैन की गोली मान उसे हास्य की चाशनी में लपेटकर देने की वकालत करता है। ऐसे विद्वान बस गोलियाँ ही बाँटते हैं। जब विसंगतियों को देखकर आपके मन में आक्रोश का लावा उबल रहा हो और ऐसे में रचनाकार कहे–'हँस लो बेटा, वरना तेरी सेहत बिगड़ जाएगी तो ऐसी सोच पर अफसोस ही

होता है। यही कारण है कि आज व्यंग्य कुंद होता जा रहा है। विरोध का स्वर चाशनी में लिपटकर जो बिकने लगा है।'[27] उन्हें चिंता है कि अगर यह मजाक, मस्ती, मनोरंजन तक सीमित हो जाएगा, तो इसकी प्रयोजनीयता पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा।

डॉ॰ प्रेम जनमेजय का साहित्य ताजगी से भरा हुआ आस-पास के जीवन को बेहतर बनाने की लेखकीय अभिलाषा से युक्त है, इसलिए उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से परिवेशजन्य भयावह स्थितियों और उसके पीछे चल रही शोषण की गूढ़ साजिशों को परत-दर-परत खोलने का प्रयास किया है। परिवेश के प्रति उनकी लेखकीय अनुभूति और उसकी सृजनशील प्रस्तुति अभिन्न है। उन्होंने सामाजिक यथार्थ को उसकी तमाम विसंगतियों के साथ व्यंग्य के स्तर पर उद्घाटित किया है। उनके व्यंग्य-साहित्य की विशेषता है कि यहाँ वर्णन और विवरण सीधे, सपाट और रूखे नहीं हैं, वरन् उपहास और कटाक्ष से युक्त अनुशासित रूप में उपस्थित हैं। उन्होंने अपने चारों ओर व्याप्त विकृतियों, विडंबनाओं, विसंगतियों और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए व्यंग्य का प्रभावशाली प्रयोग किया। उनके व्यंग्य में आज की ज़िंदगी का सीधा साक्षात्कार है और परिवेश में निरंतर घटित होने वाले जटिल संदर्भों की सही और क्रूर व्यंजना है। प्रेम जनमेजय की रचनाओं में जीवन के विविध आयामों का चित्रण हुआ है, विषयों की विविधता तथा नवीनता न केवल उन्हें अपने युग के सतही व्यंग्यकारों से ऊपर उठाती है वरन् उनके साहित्य को आकर्षक और रोचक बनाने के साथ-साथ सामाजिक संदर्भों से भी जोड़ती है, प्रेम जनमेजय ने अपनी रचनाओं में आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में आए परिवर्तन का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है। व्यंग्य को हथियार मानते हुए उसे सावधानीपूर्वक प्रयोग करना प्रेम जनमेजय का अभीष्ट रहा है, ताकि उसे भौतिक और सामाजिक यथार्थ की गहराई से जोड़कर पाठकों को सही सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर किया जा सके, उनका संपूर्ण साहित्य वर्तमान की वास्तविकताओं के चित्रण द्वारा, उसके प्रति वितृष्णा एवं घृणा पैदाकर, स्वर्णिम भविष्य की संभावनाओं से परिपूर्ण करती है। उनका मानना है कि सामाजिक अनुभव के बिना सच्चा और वास्तविक साहित्य लिखा ही नहीं जा सकता। उन्होंने अपने व्यंग के द्वारा बार-बार पाठकों का ध्यान व्यक्ति और समाज की उन कमजोरियों और विसंगतियों की ओर आकृष्ट किया, जो हमारे जीवन को दूभर बना रही हैं। बदलते सामाजिक परिवेश के बदलते जीवनमूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित करते आधुनिक भारतीय के जीवन-संघर्षों को पूर्णता एवं विश्वसनीयता के साथ चित्रित करने वाले डॉ॰ प्रेम जनमेजय का स्थान हिंदी व्यंग्य साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. कहानी की समाजशास्त्रीय समीक्षा, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ॰ 3
2. प्रेम जनमेजय, व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, ग्रंथलोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ॰ 31
3. कल्पांत, अक्टूबर 2010, पृ॰ 11
4. प्रेम जनमेजय, बेशर्ममेव जयते, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ॰ 88
5. प्रेम जनमेजय, कौन कुटिल खल कामी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 87
6. प्रेम जनमेजय, बेशर्ममेव जयते, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ॰ 36
7. उपर्युक्त, पृ॰ 38

8. प्रेम जनमेजय, आत्मा महाठगनी, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ॰ 31
9. प्रेम जनमेजय, कौन कुटिल खल कामी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 76
10. प्रेम जनमेजय, आत्मा महाठगनी, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ॰ 23
11. प्रेम जनमेजय, बेशर्ममेव जयते, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ॰ 107
12. प्रेम जनमेजय, कौन कुटिल खल कामी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 31
13. प्रेम जनमेजय, व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, ग्रंथलोक, दिल्ली, 2009, पृ॰ 177
14. प्रेम जनमेजय, डूबते सूरज का इश्क, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, 2007, पृ॰ 49
15. प्रेम जनमेजय, पुलिस! पुलिस!, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ॰ 35
16. प्रेम जनमेजय, कौन कुटिल खल कामी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 127
17. उपर्युक्त, पृ॰ 124
18. प्रेम जनमेजय, कौन कुटिल खल कामी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 19
19. उपर्युक्त, पृ॰ 16
20. उपर्युक्त, पृ॰ 38
21. प्रेम जनमेजय, पुलिस! पुलिस!, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ॰ 31
22. प्रेम जनमेजय, बेशर्ममेव जयते, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ॰ 89
23. उपर्युक्त, पृ॰ 25
24. प्रेम जनमेजय, कौन कुटिल खल कामी, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2008, पृ॰ 24
25. प्रेम जनमेजय, व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, ग्रंथलोक, दिल्ली, 2009, पृ॰ 51
26. सुभाषचंदर, हिंदी व्यंग्य का इतिहास, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ॰ 441
27. प्रेम जनमेजय, व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, ग्रंथलोक, दिल्ली, 2009, पृ॰ 50

73 **साक्षर अपार्टमेंट्स**
ए-3, **पश्चिम विहार**
नई दिल्ली 110063

 ISSN 0975-735X

डॉ॰ मीना अग्रवाल के मुक्तक संग्रह 'सफर में साथ-साथ' में नारी-मन की बात

डॉ॰ दीपक विश्वासराव पाटिल

भारतभूमि पर सदियों से अनेक साहित्यकारों ने जन्म लिया और अपने चिंतन द्वारा साहित्य-सर्जन कर भारतभूमि का उद्धार किया है। इन सभी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से माँ सरस्वती की साधना और आराधना की है। साहित्य को इन सरस्वती के पुजारियों ने अनेक रूपों में व्यक्त किया है। साहित्यकार एक ऐसा शिल्पी है, जो अपने साहित्य-सर्जन से मनुष्य को सजाता है, सँवारता है। समाज को समयानुसार सोच प्रदान करता है। साहित्य का मूल प्रयोजन मानवहित में है, क्योंकि साहित्य को जन्म देना मातृत्व की साधना के समान है।

डॉ॰ मीना अग्रवाल भी एक ऐसी ही साहित्यकार हैं। सामाजिक यथार्थ को लेकर लिखने वाली डॉ॰ मीना अग्रवाल एक जागरूक और सचेत साहित्यकार तथा मुक्तककाव्यकार हैं। डॉ॰ मीना अग्रवाल ने अपने मुक्तकों में नारी की विविध प्रतिक्रियाओं को सीधे-सादे ढंग से व्यक्त किया है। वह समकालीन महिला लेखिकाओं में अग्रस्थानी हैं।

डॉ॰ मीना अग्रवाल का 'सफर में साथ-साथ' मुक्तक संग्रह 2015 में हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर से प्रकाशित हुआ है। इस मुक्तक-संग्रह के संदर्भ में वह लिखती हैं कि 'इन मुक्तकों में नारी की भावनाएँ और उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ सीधे-सादे ढंग से अभिव्यक्त की गई हैं। हिंदी-साहित्य में गीत तो निःसंदेह एक ऐसी विधा है, जिसमें नारी अपनी संपूर्ण प्रकृति और भावनात्मक पक्ष के साथ उभरती है। मैंने अपने इन मुक्तकों में भारतीय नारी के विभिन्न रूपों और भावनाओं को साकार करने का प्रयास किया है। नारी की कोमल भावनाएँ ही नहीं, नारी-समाज से जुड़े अनेक विषय भी इन मुक्तकों के माध्यम से व्यक्त करने की मेरी कोशिश रही है।'[1]

नारी गृहलक्ष्मी होती है, नारी यदि सुसंस्कृत, सुशिक्षित और सुविकसित हो तो वह अपने पति, संतान, परिवार और अपने समाज के लिए वरदान साबित हो सकती है। स्वतंत्र भारत की नारी को पुरुष के समान अधिकार कानूनी और सामाजिक दृष्टि से दिए गए हैं, लेकिन समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा सिद्ध किया गया कि उनका अधिकार मात्र ढकोसला है, क्योंकि समाज में नारी निरंतर शोषण, अपमान, यंत्रणा व उपेक्षा की शिकार रही है। वर्तमान समाज में नारी कई समस्याओं से घिरी हुई है जैसे नारी के समक्ष वर्तमान चुनौतियाँ : कन्या भ्रूणहत्या, मृत्युदर की अधिकता, देह का व्यापार, यौन-उत्पीड़न, बलात्कार, अपराध, विस्थापन, स्त्री-पुरुष संबंध इत्यादि। डॉ॰ मीना अग्रवाल अपने इस मुक्तक-संग्रह के माध्यम से नारी की दबी हुई भावनाओं को आवाज देती हैं। वे अपने पहले मुक्तक में लिखती हैं कि–

उल्लास को आधार न दे तो कहना
बदले में पुरस्कार न दे तो कहना
तुम धूप से पौधे को बचाओ, सींचो
तब फूल यह महकार न दे तो कहना।[2]

पूरी हुई दुनिया की कहानी हमसे
अँगनाइयाँ आबाद हैं घर की हमसे
हम साथ रहेंगी तो उजाला होगा
है रोशनी संसार की आधी हमसे।[3]

नारी संसार की संचालक-शक्ति है, नारी से ही संसार उत्पन्न हुआ है। आज की कन्या कल की माँ है, जिसे बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सँभालना है। आज कन्या भ्रूणहत्याओं का प्रमाण काफी बढ़ गया है, आज लड़कों के अनुपात में लड़कियों की संख्या कम है। आज हर किसी को अपने वंश के लिए पुत्र चाहिए, क्योंकि लड़की तो पराया धन मानी जाती है। समाज में कन्या के जन्म से ही पहले उसे पेट में ही मार देने की की प्रथा पनप रही है। संसार यह बात भूल चुका है कि नारी में कितनी शक्ति होती है। कन्या शादी के तुरंत बाद ही दूसरे घर को अपनाकर गृहस्थी में लग जाती है। वहाँ वह हर कार्य सोच-समझकर करती है। घर को महान और स्वर्ग बनाने के लिए खुद को अर्पित कर देती है। डॉ॰ अग्रवाल यही बात अपने मुक्तकों के माध्यम से कहती हैं। वे अपने मुक्तकों के माध्यम से समाज को संदेश देने का कार्य कर रही हैं–'तुम धूप से पौधे को बचाओ, सींचो, तब फूल यह महकार न दे तो कहना।'

घर में बच्ची का जन्म लेना न जाने क्यों अशुभ माना जा रहा है? घर में बेटा पैदा हो तो लडडू या पेड़े बाँटे जाते हैं और अगर लड़की हुई तो जलेबियाँ बाँटी जाती हैं। ऐसा क्यों? बेटा पैदा होने पर घर में खुशी का माहौल और लड़की के पैदा होने पर? डॉ॰ मीना अग्रवाल का एक मुक्तक इस संदर्भ में द्रष्टव्य है–

जाने नदिया यह सपनों की जम क्यों गई
जाने मुसकान होंठों पे थम क्यों गई
जन्म बेटी का होना अशुभ क्यों हुआ
किससे पूँछूँ कि माता सहम क्यों गई।[4]

डॉ॰ अग्रवाल ने उपर्युक्त मुक्तक में कन्या भ्रूणहत्या को लेकर जो बात कही है, वह समाज को सोचने पर विवश कर देनेवाली है। डॉ॰ अग्रवाल स्त्री को खेती के रूप में प्रस्तुत करती हैं और कहती हैं कि तुम अगर खेती को इसी तरह रौंदते रहोगे तो एक दिन यह खेती बंजर हो जाएगी या पूरी तरह नष्ट हो जाएगी। फिर उस दिन, उस समय जो अकाल आएगा वह इतना भयानक होगा कि पूरी मानवी सभ्यता को एक मिनट में राख कर देगा, मानवी सभ्यता की पहचान मिटा देगा। डॉ॰ अग्रवाल का यह मुक्तक द्रष्टव्य है–

विचारों का गगन, नयनों की आशा क्यों नहीं करते
तुम अपनों की तरह से मुझको अपना क्यों नहीं करते
अकाल इतना भयानक आएगा, यदि मुझको रौंदोगे
मैं खेती हूँ तो तुम मेरी सुरक्षा क्यों नहीं करते।[5]

 ISSN 0975-735X

बच्चों के भावी निर्माण का उत्तरदायित्व, अतिथियों का सम्मान, आरोग्य का ज्ञान, घर-परिवार की व्यवस्था, शिष्टाचार आदि कई बातें जो छोटी-छोटी लगती हैं, लेकिन काफी महत्त्वपूर्ण हैं, इन सभी बातों का ज्ञान महिलाओं से ज्यादा किसी को नहीं होता। संसार का हर महापुरुष प्रायः सुयोग्य नारियों के हाथों में पलकर ही संसार में कुछ कर पाया है। आज की नारी दुनिया बदलने की राह देख रही है, उसका मानना है कि दुनिया बदलेगी और नारियों की दुर्दशा का अंत होगा। कुछ नारियाँ विधाता को दोष दे शांत हो जाती हैं कि विधाता ने उनका भाग्य ऐसा ही लिखा होगा। डॉ॰ अग्रवाल ऐसी नारियों को सचेत करते हुए लिखती हैं–

यह स्वप्न न देखो कि दुनिया बदले
अच्छा हो कि जीवन का तरीका बदले
भगवान को विपदा के लिए दोष न दो
हम आप जो बदलें तो विधाता बदले।[6]

एक तरफ नारी अपने विधाता से अपने भाग्य को लेकर लड़ रही है तो दूसरी ओर नारी स्वभाव से लज्जालु होते हुए भी तलवार की धार की तरह घृणित भावनाओं को काटने में भी सक्षम है–

कभी तूफाँ की तीखी धार भी हूँ
कभी माझी, कभी पतवार भी हूँ
मैं पूरब देश की नारी हूँ लेकिन
मैं चुनरी ही नहीं, तलवार भी हूँ।[7]

नारी के हाथों में संसार को बनाने और बिगाड़ने की ताकत होती है। नारी के कई रूप हैं। हर रूप में नारी अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। रामायण में एक नारी (सीता) के कारण रावण का स्वर्णमहल ढह गया, तो मध्यकाल में एक नारी (मुमताज) के प्यार में ताजमहल का निर्माण हो गया। रामायण में सीता ने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया अपने पति और अपने परिवार की खुशी के लिए इसी नारी ने दुर्गा का रूप धारण कर कई राक्षसों का वध किया। अर्थात् नारी एक ऐसी पहेली है, जिसे आज तक कोई सुलझा नहीं सका है। डॉ॰ अग्रवाल ने इसी पहेली को अपने मुक्तकों के माध्यम से सुलझाने का प्रयास किया है। वे लिखती हैं–

पहेली हूँ मुझे सुलझा के देखो
मुझे नजदीक से अब आ के देखो
समर्पण में मुझे सीता के पाओ
मुझे हर रूप में दुर्गा के देखो।[8]

नारी हर समय सिर्फ अपने घर-परिवार की खुशी के बारे में सोचती है। वह हमेशा अपने पति की लंबी उम्र की दुआ करती है, अपने बच्चों की खुशी की कामना करती है, भले ही उसकी सारी खुशियाँ उसे कुर्बान करनी पड़ें। वह हमेशा अपने घर-परिवार की जरूरतों को ध्यान में रखकर अपना जीवन व्यतीत करती है। सबकी खुशी के लिए वह अपना सुख भी लुटा देती है। जब वह काम करती है, सबके लिए खाना बनाती है तो उसे खुद के खाने और सोने की चाह भी नहीं रहती। वह अगर रूठती भी है तो सबसे ज्यादा तकलीफ उसे ही होती है। डॉ॰ अग्रवाल का इस संदर्भ में यह मुक्तक बहुत ही सुंदर बन पड़ा है–

बस एक मीठे वचन पर सारा जीवन तज दिया मैंने
न साधन सामने रक्खे, न दौलत सामने रक्खी
गृहस्थी में कभी अपने लिए तो कुछ नहीं चाहा
मगर मैंने तुम्हारी हर जरूरत सामने रक्खी।[9]

खुशी के वास्ते सबकी, लुटा देती हूँ सुख अपने
जरा सोचो कि मैं जीवन में क्या अपने को देती हूँ
मुझे रहती नहीं इच्छा, न खाने की, न सोने की
मैं उससे रूठकर भी तो सजा अपने को देती हूँ।[10]

पुरुषसत्ता के आगे नारी अपने आपको कमजोर पाती है, लेकिन जब अत्याचार अधिक हो जाते हैं तो वही अबला नारी दुर्गा को रूप धारण कर पुरुषसत्ता को ललकारती है। नारी को ताकत से नहीं, प्यार से ही जीता जा सकता है। नारी प्यार में अपना सब-कुछ न्योछावर कर देती है। नारी की इसी भावना को अपने मुक्तकों के माध्यम से व्यक्त करते हुए डॉ॰ मीना जी कहती हैं–

मैं अपनेपन में सब कुछ हार देती हूँ, जो तुम चाहो
मेरा चिंतन, मेरा चित, मेरा जीवन जीत सकते हो
हजारों वर्ष में भी बात तुम इतनी नहीं समझे
बदन ताकत से, लेकिन प्यार से मन जीत सकते हो।[11]

नारी को पुरुष अपनी पत्नी तो स्वीकार करता है, पर उसे पत्नी का दर्जा शायद नहीं दे पाता। उसे लगता है कि औरत हमेशा उसके आसरे जीती है। वह सोचता है कि उसके सहारे के बिना नारी का अस्तित्व नहीं है। अकेली नारी को तो हमेशा इसी नजर से देखा जाता है कि यह पुरुष के बिना कैसे रह सकती है। उपर्युक्त मुक्तक से यह बात तो साफ है कि नारी के बदन को तो ताकत से पाया जा सकता है, लेकिन मन को पाने के लिए प्यार का होना जरूरी है। डॉ॰ मीना अग्रवाल अपने मुक्तक के माध्यम से यह बात स्पष्ट करती हैं कि नारी को पुरुष का साथ चाहिए सिर्फ अहसान से भरा हुआ सहारा नहीं। आज नारी सँभल चुकी है, वह अपने पैरों पर खड़ी हो चुकी है। नारी आज अकेली जरूर है, पर दुर्बल नहीं है, उसे किसी की दया पे जीना तो बिल्कुल भी गवारा नहीं है–

दया पे जीना किसी की मुझे गवारा नहीं
मैं अपने आपमें पर्वत हूँ, जल की धारा नहीं
अकेली होके भी, दुर्बल नहीं रही हूँ मैं
तुम्हारा साथ मुझे चाहिए, सहारा नहीं।[12]

आज पुरुष और नारी एक समान स्तर पर कार्य कर रहे हैं। आज नारी को पुरुष की परछाई नहीं, स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में माना जा रहा है। नारी भी पुरुष की भाँति एक जीव है, जिसे हँसने का, खेलने का, अपनी बात कहने का पूरा अधिकार प्राप्त है। लेकिन आज भी समाज में शादी के समय यह बात बराबर से चली आ रही है कि नारी पुरुष की सेविका है, या पुरुष ही नारी को अपनी सेविका समझता है। अपने पिता का घर छोड़कर उस नन्ही कली को जाना

 ISSN 0975-735X

है अपने पति के घर, जो उसके लिए बिल्कुल अंजान है, फिर भी कन्या का पिता वर को दहेज देता है। जिस तरह सब्जीमंडी में सब्जियों की बोली लगाई जाती है, उसी तरह वर की बोलियाँ लगाई जाती हैं। दहेज न मिलने पर या दहेज न दे पाने के कारण कई कलियाँ समय से पहले ही मुरझा जाती हैं, या उनकी जान ले ली जाती है। डॉ॰ अग्रवाल इस संदर्भ में कहती हैं–

वर की मंडी में लगती रहीं बोलियाँ
कोई दो लाख का, कोई नौ लाख का
क्या कहूँ, जल के वो किसलिए मर गई
कल जो गुड़िया-सी थी, ढेर है राख का।[13]

कुछ तो दुनिया का नक्शा नया चाहिए
कुछ तो माहौल बदला हुआ चाहिए
मुझको चाहत है जीवन में हमदर्द की
उसको साथी नहीं, सेविका चाहिए।[14]

नारी से ही पुरुष का निर्माण होता है, नारी ही पुरुष को आकार देती है, नारी से ही पुरुष अपने आपको पूर्ण पाता है, फिर भी उसी पुरुष द्वारा नारी का शोषण होता है, यह समाज की सबसे बड़ी विडंबना है। नारी हर बार टूटकर भी अपने अस्तित्व को सिद्ध करती है, वह कभी भी हारकर टूटती नहीं है। डॉ॰ अग्रवाल अपने इस मुक्तक के माध्यम से नारी के संघर्ष का चित्रण बखूबी प्रस्तुत करती हैं–

सौ बार टूट-टूट के साबित रही हूँ मैं
पीड़ाएँ झेल-झेल के हर्षित रही हूँ मैं
हाथों से अपने जिसको सँवारा, युवा किया
पुरुषों के उस समाज में शोषित रही हूँ मैं।[15]

नारी समाज के अत्याचार सहकर भी समाज के प्रति समर्पित भावना से कार्य करती रही है। नारी सदा से ही पीड़ित रही है। वर्तमान युग में नारी-शोषण के विरुद्ध एवं नारी-मुक्ति हेतु कई प्रयास होते रहे, पर विडंबना यह है कि वर्तमान भौतिकवादी एवं भोगवादी संस्कृति में नारी पर अत्याचारों का सिलसिला बढ़ता ही गया। आज भी नारी अनमेल विवाह, पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा से जूझ रही है। वह उत्तराधिकार से वंचित है। पुरुष जो चाहेगा वही होगा। न जाने कितने युगों से नारी का यौन-शोषण होता रहा है, नारी को भाग्य न समझकर भोग्या समझा गया है। नारी-अपहरण की तो लंबी परंपरा रही है तथा कितनी ही निर्मलाओं को अनमेल विवाह की बलिवेदी पर समय-समय पर चढ़ना पड़ा है।

डॉ॰ अग्रवाल नारी को अपने मुक्तकों में कमजोर नहीं दिखाना चाहतीं। डॉ॰ अग्रवाल जिस नारी को पाठकों के सामने लाना चाहती हैं, वह नारी एक आदर्श नारी है, जो सेवा को ही अपना धर्म मानती है, उस नारी की पहचान उसके त्याग की भावना में है, यह त्याग और सेवा की भावना उस नारी की शक्ति है। नारी की पहचान उसकी सेवा-भावना, त्याग की भावना, समर्पण-वृत्ति, सदाचार-संकल्प और मुहब्बत के व्यवहार से होती है। इन्हीं सारी बातों से उसे बल मिलता है। नारी का आँचल उसकी पताका बन जाता है। डॉ॰ अग्रवाल नारी के इस सदाचारी रूप को

इस तरह व्यक्त करती हैं–

मैं नारी हूँ, है त्याग पहचान मेरी
मेरा धर्म सेवा है, सेवा रहेगा
इसी से मुझे बल मिला, यश मिला है
जमाने में कद मेरा ऊँचा रहेगा।[16]

सदाचार-संकल्प संगम है मेरा
मुहब्बत का व्यवहार मरहम है मेरा
मैं रेशम-सी नाजुक हूँ, चट्टान भी हूँ
समय पर यह आँचल ही परचम है मेरा।[17]

किसी भी घर-परिवार, समाज एवं देश की उन्नति तभी संभव हो सकती है, जब नारी में शिक्षा, उद्योग और परिश्रम जैसे गुणों का विकास हो। वह आधुनिकता को अपनाए, लेकिन आधुनिकता की आड़ में अपनी संस्कृति को नजरअंदाज न कर दे। समाज के सुदृढ़ रहने के लिए समाज के दोनों पहियों का सही-सलामत होना बहुत जरूरी है, अगर एक पहिया लड़खड़ा जाएगा तो समाज को डूबने में ज्यादा देर नहीं लगेगी। आज भी कई महापुरुषों के नामों से पहले उनकी माता का नाम बड़े आदर से लिया जाता है जैसे–महात्मा गांधी, छत्रपति शिवाजी महाराज, महाराणा प्रताप, स्वामी विवेकानंद आदि। इसीलिए कहा जाता है कि नारी से ही नर की पहचान होती है।

डॉ॰ मीना अग्रवाल अपने मुक्तकों में नारी के विविध रूपों को प्रदर्शित करती हैं, जिसमें दहेज के कारण जलकर मरनेवाली नारी है, पैदा होने से पहले ही मारी जानेवाली कन्या है, पुरुषों के हाथों सताई जानेवाली अबला महिला है, प्यार में खुद को कुरबान कर देनेवाली नारी है। पर डॉ॰ अग्रवाल नारी का एक और आदर्श रूप पाठकों के सामने लाती हैं और वह रूप है शिक्षित होकर भी संस्कृति का सही अर्थ समझना, आधुनिकता का सही अर्थ जानकर उसे समझना, आदर्श मानव की स्थापना करना, खुद की पहचान को कायम रखना, अपने आदर्शों को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना और अपने मूल उद्देश्य से न बिछुड़ना आदि। यही भारतीय नारी की पहचान भी है। डॉ॰ मीना जी नारी के इस आदर्श रूप को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं–

हम डगर अपनी छोड़ें, यह संभव नहीं,
आत्मा अपनी बदलें, यह संभव नहीं
फैशनों की नुमाइश में रहते हुए
मूल से अपने बिछुड़ें यह संभव नहीं।[18]

मेरे सपनों का आदर्श मानव है
सोच यह मेरी बदले असंभव है
मेरी पहचान दुनिया में सबसे अलग
मैं हूँ भारत की नारी, मुझे गर्व है।[19]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि डॉ॰ मीना अग्रवाल ने अपने मुक्तकों में नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है। उनकी नारी सहनशील, समय के साथ परिवर्तनशील, समाज के बंधन को मौन रूप में स्वीकारने वाली, परिवार के लिए सर्वस्व त्याग करने वाली, जीवन

 ISSN 0975-735X

को ऊर्जा देनेवाली, शक्ति प्रदान करनेवाली और नवनिर्माण करनेवाली है। इसी के साथ नारी का ज्वालामुखी रूप, नारी का आदर्श रूप, नारी का प्यारभरा रूप, नारी का सहमा हुआ रूप, आधुनिक होते हुए भी अपने आँचल को सँभालनेवाली नारी का रूप, समर्पण भरा रूप पाठकवर्ग को सोचने के लिए विवश करता है तथा नारी के साथ भेदभाव की मानसिकता को बदलने के लिए प्रेरित किया है।

संदर्भ

1. डॉ॰ मीना अग्रवाल, सफर में साथ-साथ, भूमिका से, पृ॰ 9
2. डॉ॰ मीना अग्रवाल, सफर में साथ-साथ, पृ॰ 11
3. वही, पृ॰ 11
4. वही, पृ॰ 56
5. वही, पृ॰ 72
6. वही, पृ॰ 20
7. वही, पृ॰ 22
9. वही, पृ॰ 23
9. वही, पृ॰ 76
10. वही, पृ॰ 76
11. वही, पृ॰ 75
12. वही, पृ॰ 64
13. वही, पृ॰ 52
14. वही, पृ॰ 52
15. वही, पृ॰ 38
16. वही, पृ॰ 28
17. वही, पृ॰ 28
18. वही, पृ॰ 53
19. वही, पृ॰ 53

मु॰ पो॰ सौंदाणे
तहसील एवं जिला धुलिया
Patildipak22583@gmail.com

रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यासों की भाषा

कृष्णा यादव
हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर (राज॰)

भाषा संप्रेषण का माध्यम एवं साहित्य का मूल आधार है। भाषा के बारे में अज्ञेय ने लिखा है कि लेखक के नाते और उससे भी अधिक कवि के नाते मैं महसूस करता हूँ कि यही समस्या की जड़ है। मेरी खोज भाषा की खोज नहीं है। केवल शब्दों की खोज है। भाषा का उपयोग मैं करता हूँ, लेकिन कवि के नाते जो कहता हूँ वह भाषा के द्वारा नहीं, केवल शब्दों के द्वारा। मेरे लिए यह भेद गहरा महत्त्व रखता है।'[1] डॉ॰ रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यासों की भाषा के संदर्भ में डॉ॰ कैलाशचंद्र भाटिया ने लिखा है कि यदि कथोपकथन में प्रयुक्त भाषा को वास्तविक मान लिया जाए तो संक्षेप में निस्संकोच कहा जा सकता है कि पात्रों की भाषा भी खड़ीबोली ही है, जिसमें ब्रजभाषा की छाया कहीं-कहीं झलकती है और यत्र-तत्र स्थानीय शब्दावली का मिश्रण है।'[2]

उपन्यासकार अपनी भाषा के समूचे अर्थ को बाँध देने की क्षमता रखता है। रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यासों की भाषा के दो रूप दिखाई देते हैं—प्रथम वह जिसमें उन्होंने कथा लिखी है एवं घटनाओं तथा पात्रों का विश्लेषण किया है। इसके अंतर्गत उन्होंने अपने सभी आंचलिक उपन्यासों में खड़ीबोली हिंदी का प्रयोग किया है। द्वितीय वह भाषा, जिसका प्रयोग उन्होंने पात्रों के वार्तालाप में किया है। इस भाषा का संबंध अंचल एवं पात्रों के व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ है, जिसे वार्तालाप की भाषा भी कह सकते हैं। यह भाषा पात्रों के व्यवहार एवं परिस्थिति के अनुसार अनेक रूप ग्रहण करती है।

रांगेय राघव ने आंचलिक उपन्यासों में खड़ीबोली हिंदी को ही प्रधानता दी है। उनकी भाषा पर ब्रजांचल की जनभाषा का विशोष प्रभाव पड़ा, क्योंकि यहीं से उन्होंने शिक्षा, भाषा-संस्कार एवं जातीय संस्कार प्राप्त किए थे। कथानक, पात्र एवं वातावरण के अनुरूप ही उन्होंने राजस्थान और ब्रज अंचल के ठेठ शब्दों का प्रयोग किया है तथा भाषा को सहज एवं सुबोध बनाने का निरंतर प्रयास किया है। उनकी लेखनी के मूल में राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के ब्रजांचल का गरीब एवं शोषित वर्ग खड़ा हुआ था। मार्क्सवादी विचारधारा का भी उनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिसे उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है।

साहित्यकार भावुक होने के साथ ही विचारशील भी होता है। अपने भावों एवं विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति देते समय उसका मस्तिष्क विशेष रूप से क्रियाशील रहता है। अपने चिंतन, मनन एवं भावनाओं के साथ संबंध-निर्वाह करते समय लेखक अनेक ऐसे कथन

 ISSN 0975-735X

प्रस्तुत करता है, जिनको यदि सूक्ष्मता से देखा जाए तो वे सूक्ति होते हैं। सूक्तियों में विश्वसनीयता रहती है। देशकालातीत सत्य उनमें छिपा रहता है।'[3] उपदेश-प्रधान साहित्य की सृष्टि में सूक्तियाँ विशेष सहायक होती हैं। ये मंत्रों का-सा कार्य करती हैं। सूक्तिपरक कथनों का पालन करने के लिए समाज सरलता से तैयार हो जाता है। ऐसी भाषा अमूल्य होती है और मानव-हृदय तथा कानून की सामर्थ्य को भी मात कर देती है। रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यासों में सूक्ति-शैली का प्रयोग यदा-कदा ही हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'जब आदमी के पास कुछ ज्यादा साधन होते हैं, तब वह यह नहीं मानता कि इस संसार में सब इंसान समान हैं। लेकिन जब पास में कुछ नहीं रहता, तब वह इससे भी आगे बढ़कर बातें करने लगता है...अभावों से ग्रस्त रहने वाले जब सत्ता पा जाते हैं, तब अधिकार रखने के कौनसे हथकंडों का प्रयोग नहीं करते हैं।'[4]

रांगेय राघव ने विशिष्ट पात्रों के प्रसंग में ही साहित्यिक एवं प्रभावोत्पादक भाषा का प्रयोग विषयगत गरिमा के कारण ही अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना आदि शब्द-शक्तियों के माध्यम से किया है। यथा–

'वे नेत्र नहीं रहे थे। वह समुद्रों की अंतिम छोर थी, जिसने क्षितिज पर उठते हुए अरुण का अभिनंदन किया था। वह वनांतों की झूम नहीं थी। महकते हुए वसंत को आज कानन ने दोनों हाथ खोलकर उतर आने का आह्वान दिया था। वह महागिरियों का अभिमान नहीं था। हिमश्रृंगों का किरणों के ताप से पिघलने से पहले, रस बनने के पहले का जीवन-संचरण था।'[5]

रांगेय राघव जब सामाजिक अंतर्विरोधों का उद्घाटन करते हैं, तो उनके व्यंग्य में पैनापन और मार्मिकता आ जाती है। सामाजिक विकृतियों का उद्घाटन करते समय उन्होंने प्राय: व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है–

'हाँ, रोज नाइन मुझे नहलाने आती है। चमारिन मेरे कंडे थापती है। डोमनी मेरे आड़े नहीं आती। तेलिन मेरे पाँव धोती है। कुजड़िन मेरे द्वारा साग बेचती है। सुनारिन मेरे नथ में कील ठोकने आती है। बाजदारनी और गडवारिन... धिक् रे राजा मरद। तेरी आँखों में शील नहीं रह गया। औरत को बचाना तेरा काम है। तू अपने धरम मरजाद की टेक निबाहता है तो फिर मुझे रोकना तेरा काम है। तू मुझे बचा। मैं और नटनियों-सी नहीं हूँ। मैं क्या करूँ? जोबन दिखाती नहीं, दिख जाता है। उसे क्या डिबिया में बंद करके धर लूँ?'[6]

रांगेय राघव के पात्रों की भाषा उनके स्तर के अनुरूप है, क्योंकि उनमें अधिकांश पढ़े-लिखे नहीं हैं। अत: वे अपनी स्वाभाविक भाषा बोलते हैं। उन्होंने पूरे गद्यांश को आंचलिक भाषा में नहीं लिखा, अपितु पात्रानुकूल पूरे वाक्य का प्रयोग अवश्य किया है। देशज शब्दों का प्रयोग मुख्य रूप से पात्रों के स्तर के अनुसार ही किया है। परिस्थितिजनित सत्य का उद्घाटन करने में रांगेय राघव पूर्ण सक्षम हैं। सुखराम की मन:स्थिति का उन्होंने स्वाभाविक भाषा में चित्रण किया है–'कजरी आएगी। उसे घमंड होगा, पर मन में वह पानी-पानी होगी कि मुझे मेरा मर्द दूसरी के पास लाया है। क्यों लाया है, इसलिए कि वह अभी तक पहली को भूल नहीं सका। गोया कजरी अब प्यारी बाँदी है। ...कितना विक्षोभ भरेगा उसके मन में। अपनी ही सौत के सामने जाकर उसे सिर झुकाना पड़ेगा।'[7]

रांगेय राघव ने आंचलिक उपन्यासों में अवसरानुकूल तथा विषयानुकूल प्रसंगों में कथा को संवादों के माध्यम से आगे बढ़ाया है। उन्होंने भाषा के प्रवाह को यथास्थान मोड़ने का प्रयास किया है। घटना को सहज भाषा में आगे बढ़ाया है। यथा–'मैं उसी खानदान का आखिरी ठाकुर हूँ बाबू भैया।...उस दिन उसने कहा था–तो किला मेरा है। इसे कैसे भी जीतना होगा। यही मेम ने कहा था। आज भी कह रही है।'[8] इतना ही नहीं, उन्होंने प्रसंगानुकूल संवादों के माध्यम से कई स्थलों पर बिंब उपस्थित कर दिए हैं। यथा–

'मैं उसे देखता रहा...स्तब्ध...न जाने मुझे क्या हो गया...वह मेरे पाँवों पर गिर पड़ा...फिर भी मैं नहीं बोला...मुझे यही सुनाई पड़ा, बघेर मेरे सामने से...

'बघेर?'

'हाँ मास्टर साब!'

'मंगल!'

'मास्टर साब!'

'बघेर!'

'मैं मर गया हुजूर!...'[9]

रांगेय राघव ने विषयानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनके आंचलिक उपन्यासों का परिवेश ब्रजंचल होने के कारण उनके पात्रों के वार्तालाप में आंचलिक शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक है। यथा–

'आँच तेज कर दे परमेसुरी। सोने देगी कि यहाँ से हट जाऊँ? काँय-काँय मचा रखी है। हे भगवान! किसी को दो मत दीजो। कै तो आपस में कलेस करके चैन नहीं लेने देंगी, कै मिल के उसी को खा जाएँगी। एक से ही भर पाया। अब तो दो हो गईं।'[10]

इसके अतिरिक्त 'धरती मेरा घर' का पात्र कृष्ण भी पढ़ा-लिखा होने के कारण खड़ीबोली हिंदी बोलता है। यथा–'इस संसार में प्रेम कहाँ है। यहाँ तो सब कर्जे चुकाते हैं। मुझे किसने जन्म दिया? मुझे पाला गया है। उस दूध और रोटी की कीमत मुझे चुकानी है।'[11]

खड़ीबोली के अलावा विदेशी पात्रों ने कहीं-कहीं अँग्रेजी भाषा का भी प्रयोग किया है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में पोलिटिकल एजेंट सॉयर की पुत्री सूसन ने लॉरेंस को कहा था–'यू डेविल! स्टे व्हेअर यू आर। आइ'ल गेट योर बोंस क्रशड बाई हिम! यू थाट आई वाज हेल्पलेस! आइ'ल प्रिफर टू डाई दैन यू सरवाइव एन इगनोबल एंड सरवाइवल एक्जिस्टेंस!'[12]

इस प्रकार कथानक को ध्यान में रखते हुए, जहाँ भी संभव हुआ लेखक ने साहित्यिक भाषा का भी सफल प्रयोग किया है। अत: स्पष्ट है कि रांगेय राघव की भाषा-संपदा समृद्ध एवं भावों के प्रकाशन में समर्थ है। उनकी भाषा में भावना की गहराई और अनुभूति की सजगता है। उन्होंने इस विशेषता से पाठकों को अपने से जोड़ा है। रसास्वादन के कारण हर अंचल के पाठक उसे अपनी ही भाषा मानते हैं। उसमें संप्रेषणीयता का गुण है। इस दृष्टि से रांगेय राघव ने खड़ीबोली हिंदी में लोकभाषा की शब्दावली को सम्मानजनक स्थान दिया है।

संदर्भ

1. आलवाल, अज्ञेय, पृ॰ 10-11

 ISSN 0975-735X

2. रांगेय राघव : एक अंतर्यात्रा, सं॰ डॉ॰ कल्याणप्रसाद वर्मा, पृ॰ 121
3. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर चिंतन और साहित्य, डॉ॰ जयप्रकाशा नारायण, पृ॰ 286
4. धरती मेरा घर, रांगेय राघव, पृ॰ 53
5. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ॰ 65
6. वही, पृ॰ 32
7. वही, पृ॰ 98
8. वही, पृ॰ 98
9. धरती मेरा घर, रांगेय राघव, पृ॰ 21
10. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ॰ 46
11. धरती मेरा घर, रांगेय राघव, पृ॰ 67
12. कब तक पुकारूँ, रांगेय राघव, पृ॰ 388

पत्नी श्री रामविलास यादव
ग्राम-निहालपुरा, तहसील-नीमराना
जिला-अलवर 301703 **(राजस्थान)**
मो॰ : 08607460215

डॉ॰ एम॰एस॰ विमल के गीतों में बुद्ध के स्वर

डॉ॰ आर॰पी॰ अहरवाल
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत)
शास॰ महाराजा स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय
छतरपुर (म॰प्र॰)

भारतीय साहित्य में तथागत गौतम के संदेश भरे पड़ हैं। हर युग में बुद्ध का दर्शन प्रासंगिक है। समय-समय पर बौद्ध अनुयायियों ने गीत-कविताओं की रचना की है और कर रहे हैं। आधुनिकयुग में देखा जाए तो अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं, जिनमें बुद्ध की मानव-कल्याणकारी चेतना का प्रसार हो रहा है। चूँकि बौद्ध साहित्य बुनियादी रूप से पाली भाषा में लिखा गया है। कालांतर में इसका देश और दुनिया की अनेक भाषाओं में अनुवादित किया गया है। भारतीय लोकभाषाओं में भी बुद्ध के विचारों को रेखांकित किया जा रहा है ताकि जीवन को सार्थक बनाने हेतु लोक में उनका यथोचित उपयोग हो सके। डॉ॰ एम॰एस॰ विमल भी इसी धारा के कवि हैं, जिन्होंने उत्तर-भारत की लोकभाषा में (बृज, बुंदेली, भदावरी) में लोकप्रचलित गीतों की तर्ज पर अनेक गीतों की रचना की है। उनके गीत बुंदेलखंड, खासकर भिंड-दतिया, ग्वालियर, जालौन, इटावा व झाँसी आदि जिलों में विभिन्न मांगलिक अवसरों पर गाए जाते हैं। डॉ॰ विमल ने बुद्ध की देशनाओं को सरलीकृत करते हुए गीत विधा में पिरोने का सराहनीय कार्य किया है। उनके गीत न सिर्फ मांगलिक अवसरों हेतु उपयोगी हैं, बल्कि बुद्ध के संदेशों को जनमानस में ले जाने हेतु अनवरत रूप से आवश्यक हैं। तथागत बुद्ध के बोधिपक्षीय धर्म के बारे में डॉ॰ जे॰पी॰ शाक्य लिखते हैं–'तथागत बुद्ध ने बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, लोकानुकंपाय और देव मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए सैंतीस बोधिपक्षीय धर्मों का उपदेश अपने शिष्यों को दिया है। 1. चार स्मृति, 2. चार सम्यक् प्रधान, 3. ऋषिपाद, 4. पाँच इंद्रिय, 5. पाँच बल, 6. सात बोध्यांग, 7. आठ अष्टांग मार्ग। इनका विस्तार महापरिनिब्वाण सुंत (दीघ निकाय 2/3) में मिलता है। बोधिपक्षीय धर्म तथागत बुद्ध के अंतिम उपदेश हैं। बोधिपक्षीय धर्म विशुद्ध मार्ग है। यह बोधिपक्षीय धर्म अविवाद साधना मार्ग तथा बोधि की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'[1]

डॉ॰ विमल ने अपने गीतों में बुद्ध के संदेशों को रेखांकित किया है। उनके द्वारा संपादित पुस्तक 'बौद्धदर्शन एवं भारतीय संस्कृति में उन्होंने गद्यविधा में आलेख प्रकाशित किए हैं, जिनमें भी उन्होंने बुद्ध के संदेशों को उजागर किया है। तथागत बुद्ध के करुणामय मार्ग से कवि डॉ॰ विमल बेहद प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। इस बात की पुष्टि उनके द्वारा लिखे गए आलेख 'पशु पक्षियों का जीवन: चिंता और चुनौतियाँ' में होती है। इस आलेख को पढ़कर तथागत बुद्ध का हंस-संबंधी प्रसंग याद आ जाता है। डॉ॰ विमल पशु-पीड़ा का अनुभव करते हुए लिखते हैं,

 ISSN 0975-735X

'मनुष्य यदि गौर से देखें तो इन बैलों के चेहरों से पीड़ा और उदासी झलकते हुए पाएँगे। लेकिन कौन देखेगा, उनको? बैल भी रोते हैं, आँसू भी बहते हैं, उनकी आँखों से। वे बीमार होते हैं, उनको भी हरारत होती है। लेकिन कौन समझता है, उनके दु:ख-दर्द को? मनुष्य अपनी पीड़ा-हरारत तो लेकर बैठ जाता है। आराम करता है, दवाई लेता है। जरा-जरा सी परेशानी आने पर डॉक्टरों के पास जाता है, लेकिन वही मनुष्य बैलों के बारे में पूरी तरह निष्ठुर हो जाता है। जो बैल हरारत के कारण या बीमारी के कारण जितना कम काम करेगा, उतने ही ज्यादा पनेठा खाएगा या मार खाएगा। यह सब उसके साथ सदियों से हो रहा है।'[2]

उक्त गद्यांश में डॉ॰ विमल ने पशुओं की पीड़ा का उल्लेख किया है। इसी तरह उन्होंने अन्य पशु-पक्षियों की पीड़ा को समझा है और जहाँ भी मौका मिला, उसे रेखांकित किया है, चाहे गद्य हो या पद्य। विमलगीत नामक पुस्तक में उन्होंने तथागत बुद्ध के करुणामय मार्ग को अपनी शब्दावली में पिरोने का रोचक ढंग से प्रयास किया है। एक गीत में तथागत बुद्ध के त्याग के बारे में आपने लिखा है, 'शुद्धोधन के घर में जन्मे गौतम से बलवीर, माता-पिता, पत्नी-सुत छोड़ा निकल गए धर धीर।' इसी प्रकार गीत क्रमांक 16 में कवि ने बौद्धधर्म के पंचशील, अष्टांग मार्ग, दस पारमिताओं व प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित किया है। इस गीत के बोल हैं–

टेक : ओढ़ो बुद्ध की चुनरिया,
सो कबहूँ न मैली होय भिया।
जामें शील छपे हैं, सो
पंचशील उजियारे भिया। ओढ़ो...
जामे अष्टांग मारग प्यारे,
सो जीवन को सफल बनावे भिया। ओढ़ो...
जामें दस पारमिताएँ, सो
सुख-संपत्ति बढ़ावें भिया। ओढ़ो...
जामें जीवन की डोरी, सो
प्रतीत्य समुत्पाद कहाबे भिया। ओढ़ो...[3]

उक्त गीत में बुद्ध के पंचशील, दस पारमिताओं व प्रतीत्यसमुत्पाद पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार एक गीत में आपने तथागत बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद और उनसे शादी का आग्रह करने वाली चांडाल्य कन्या प्रकृति का जिक्र किया है, जिसमें जनमानस को बताया गया है कि किस प्रकार तथागत बुद्ध ने प्रकृति को संसार के झूठे प्रेम के बारे में बताया और किस प्रकार प्रकृति सहमत होकर बौद्ध भिक्षुणी बन गई थी। गीत के बोल इस प्रकार हैं–

टेक : प्रकृति ने खूब मनाए जू, आनंद हाथ न आए जू।
1. बेटी क्यों होती बेहाल, हम तो नीच जात चंडाल,
आनंद राजवंश के लाल, मैया ने समझाए जू
आनंद...
2. बेटी बोली अकल चलाय, आनंद को लेव घरै बुलाय,
हम लेहें उनको भरमाय, विरहा ने खूब सताये जू,

आनंद हाथ न आए जू...

3. आनंद को भोजन बनवाए, संग तथागत गौतम आए,
माँ-बेटी ने शीश झुकाए, मैया ने संत जिमाये जू
आनंद हाथ न...

4. विमल बुद्ध ने दये उपदेश, आनंद के कट गए कलेश,
माँ-बेटी ने बदले भेश, प्रकृति ने मूड़ मुड़ाये जू
आनंद हाथ न...[4]

उक्त गीत में डॉ॰ विमल ने आनंद और प्रकृति का प्रसंग लिया है कि किस प्रकार बुद्ध ने प्रकृति को समझाया। बुद्ध ने प्रकृति को समझाने के लिए किसी प्रकार का बलप्रयोग नहीं किया। जब उन्होंने प्रकृति से पूछा कि प्रकृति बताओ तुम्हें आनंद में क्या अच्छा दिखाई देता है, तब प्रकृति ने कहा कि आनंद की नाक, कान, आँखें, दाँत, जीभ आदि सब-कुछ अच्छे हैं। इस पर बुद्ध ने एक-एक करके सारे अंगों की गंदगी के बारे में बताया और कहा कि आनंद का सारा शरीर मलमूत्र का भंडार है, जिसे वह साफ-सुथरा व सुंदर समझती है, उसमें लेश-मात्र भी सच्चाई नहीं है, यह सब उसका भ्रम है। बुद्ध द्वारा तार्किक ढंग से प्रमाणित की गई बात को प्रकृति समझ गयी और उसने खुशी-खुशी अपना विचार बदल दिया। सिर्फ इतना ही नहीं, उसने अपनी माँ से अनुमति ली और सिर के बाल मुड़वाकर बौद्ध भिक्षुणी हो गई। इस तरह समझाते थे बुद्ध।

इसी प्रकार पुस्तक के गीत क्रमांक 27 में कवि ने किसा गौतमी का जिक्र किया है, जो भी एक दुखियारी थी। उसका इकलौता पुत्र मर गया था। तथागत के पास वह आती है और रोते हुए जिद करती है कि वे उसका पुत्र जिंदा कर दें। तथागत ने क्या किया? किसा गौतमी का क्या हुआ? यही सब इस गीत में है। गीत के बोल इस प्रकार है–

टेक : अब धरे कुँवर की लाश बाग में रोय रही है नारी।
किसा गौतमी बाको नाम,
श्रावस्ती बाके थे धाम, क्रूर मौत बन गई इक शाम,

तोड़ : मौत भई इकलौते पूत की, छाय गई अँधियारी...
अब धरे कुँअर...
पुत्र-शोक में भई बेहाल, गौतम ढिंग पहुँची तत्काल,
बोली जिंदा कर दो लाल।

तोड़ : भाँप लई पीड़ा कों सारी, गौतम गिरा उचारी।
अब धरें कुँअर...
बुद्ध ने धीरज दए बँधाय, बोले तुरत कछु समझाय,
पुत्र को जिंदा देय कराय।

तोड़ : एक मुठी राई के दाने, लाओ बीच मझारी...
अब धरें कुँअर...
शर्त रखी गौतम ने एक, राई के दाने लइयो नेक,
चाहे जाओ महल अनेक,

तोड़ : बा घर में कोई मरो न होवे, आदि से अंत अगारी।

 ISSN 0975-735X

अब धरें कुँअर...
किसा गौतमी पहुँची जाय, जा घर पहुँचे खाली आय,
मौत रही घर-घर में छाय।
तोड़ : विमल वापसी भई नारी की, समझ गई संसारी।
अब धरें कुँअर...[5]

उक्त गीत में बताया गया है कि जब किसा गौतमी जिद पड़ जाती है, तब तथागत उससे एक मुट्ठी राई के दाने लाने को कहते हैं। वह उत्सुक होकर राई के दाने लेने पास के गाँव में निकल जाती है, इस आशा के साथ कि राई के दाने मिलने पर तथागत बुद्ध उसके पुत्र को जिंदा कर देंगे। कृशा गौतमी जिस घर में जाती है और शर्त के अनुसार राई के दाने माँगती है, उसी घर से उसे खाली हाथ लौट जाना पड़ता है, क्योंकि ऐसा कोई घर न था, जिसमें कोई मौत न हुई हो। तथागत ने शर्त रखी थी कि राई के दाने उसी घर से लाए जाएँ, जिसमें कोई मरा न हो। ऐसा उसे कोई घर न मिला। वह अपने आप समझ गई कि तथागत उसे क्या समझाना चाहते थे। वापस आने पर वह सामान्य हो गई और बुद्ध को अपना गुरु बना लिया। कवि ने इस घटना को लोकभाषा में गीतों की कड़ियों में पिरोने का मार्मिक प्रयास किया है।

गीत क्रमांक 31 में कवि ने लोकप्रचलित महिला गीत की तर्ज पर एक सीख दी है, जिसमें एक महिला अपनी सखियों को बुलाती है और कहती है कि हे सखी बौद्ध बखरिया में आकर उसकी शोभा में और बढ़ोतरी करो। इस गीत में कवि ने सौंदर्य की ओर ध्यान केंद्रित किया है कि पंचशील से आच्छादित बखरी (मकान) कितनी सुंदर बनी है। गीत के बोल इस प्रकार हैं–

टेक : कछू अजब बनी, गुलजार बनी छविदार बनी,
सखी बौद्ध बखरिया अजब बनी-2
सो पंचशील की साजन बिछी है बिछाई-2
सो पचरंग ऊपर छत्त तनी
सखी बौद्ध बखरिया...
सो पंचशील की साजन लिखी है लिखाई-2
सो पचरंग पपीहा-मोर बनी
सखी बौद्ध बखरिया...
सो पंचशील की साजन बनी हैं रसोई-2
सो पचरंग बामें थार सजीं
सखी बौद्ध बखरिया...
सो पंचशील की साजन लगी फुलवारी-2
सो पचरंग महकें विमल कलीं
सखी बौद्ध बखरिया...[6]

डॉ॰ विमल अपनी पुस्तक 'बौद्धदर्शन एवं भारतीय संस्कृति' के संपादकीय में लिखते हैं कि 'भारत में तथागत बुद्ध पैदा हुए, जिन्होंने समूची दुनिया को ज्ञान, विज्ञान व मानवता का पाठ पढ़ाया। उन्हीं के कारण भारत को दुनिया भर में विश्व गुरु के रूप में सम्मान प्राप्त है। एक

समय था, जब हवेनसांग व फाह्यान जैसे लोग चीन से चलकर भारत आए और एक दशक से अधिक समय तक रहकर उन्होंने नालंदा विश्व विद्यालय से बुद्ध की शिक्षाओं का अध्ययन किया। यहाँ से जाने के बाद उन्होंने चीन में बुद्ध-दर्शन को प्रचारित-प्रसारित किया।'[7]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कवि डॉ॰ एम॰एस॰ विमल के गीतों में बुद्ध के स्वर को लोकभाषा में लाने का प्रयास किया गया है। यूँ तो बुंदेलखंड में इस धारा के अनेक कवि हुए हैं, जिनकी प्रेरणा से डॉ॰ विमल का कवि के रूप में उदय हुआ है। बुद्ध विचारधारा के प्रमुख कवियों में भदंत आनंददेव महाथेरा, भदंत नागसेन महाथेरा, कवि रतिभानु, कवि हरप्रसाद, कवि हनूवीर, कवि नाथूराम प्रमुख हैं। डॉ॰ विमल ने इन कवियों को बेहद नजदीक से देखा व सुना है, जैसा कि उनकी आत्मकथा 'कोशिश से कामयाबी' पढ़कर पता चलता है। बुद्ध विचारधारा के आधुनिक कवियों में डॉ॰ विमल एक नवोदित कवि हैं। गाँव-देहात से जुड़े होने के नाते, उनकी लोकभाषा में अच्छी पकड़ है। आज भारत में बुद्ध के संदेशों की महती आवश्यकता है। धीमी गति से चल रहे बुद्ध के विचारों को और अधिक गति देने की आवश्यकता है ताकि देश में व्याप्त अनेक सामाजिक बुराइयों को दूर किया जा सके। भारत में एकता और अखंडता स्थापित करने में बुद्ध की शिक्षाएँ महती भूमिका निभा सकती हैं।

संदर्भ

1. डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, बौद्धदर्शन एवं भारतीय संस्कृति, लता साहित्य सदन, पृ॰ 9
2. वही, पृ॰ 44
3. डॉ॰ एम॰एस॰ विमल, विमल गीत, गौतम प्रेस, पृ॰ 09
4. वही, पृ॰ 27
5. वही, पृ॰ 17
6. वही, पृ॰ 03

 ISSN 0975-735X

मिश्रबंधु-विनोद का हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्त्व

डॉ॰ पूनम अग्रवाल
एम॰ ए॰ (हिंदी, अँग्रेजी, संस्कृत)
पीएच॰डी॰ (हिंदी विभाग)
रामा जैन कॉलेज, नजीबाबाद

हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा का प्रर्वतन उन्नीसवीं सदी से माना जाता है। इस परंपरा में मिश्रबंधुओं के 'मिश्रबंधु विनोद' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये चार भाई थे– शिवबिहारी लाल मिश्र (जन्म सं॰ 1917), गणेशबिहारी मिश्र (जन्म सं॰ 1922), श्यामबिहारी मिश्र (जन्म सं॰ 1930) व शुकदेवबिहारी मिश्र (जन्म सं॰ 1935)। इनके पिता पं॰ बालदत्त मिश्र इटौंजा के रहने वाले थे, जो प्रसिद्ध महाजन, जमींदार और कवि थे। इन चारों भाइयों का जन्म इटौंजा में हुआ। सभी को हिंदी, उर्दू एवं अँग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। सभी साहित्य में रुचि रखने वाले थे। शिवबिहारी लाल मिश्र साहित्य-लेखन के क्षेत्र में पिछड़े रहे। मिश्रबंधु से तात्पर्य गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र तथा शुकदेव बिहारी मिश्र है। मिश्रबंधु विनोद तीनों भाइयों के सम्मिलित प्रयास का परिणाम है। इनमें भी दो अधिक क्रियाशील रहे, श्यामबिहारी मिश्र व शुकदेवबिहारी मिश्र। श्यामबिहारी मिश्र समस्त कार्य के निरीक्षक रहे।

मिश्रबंधुओं के 'हिंदी नवरत्न' एवं 'मिश्रबंधु विनोद' दो समालोचनात्मक ग्रंथ हैं। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य अनेक साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'लवकुश चरित्र' इनका प्रथम पद्य ग्रंथ है, जिसकी रचना सं॰ 1955 में अलीगढ़ में हुई। इनका पहला गद्य लेख हम्मीर हठ की समालोचना विषयक था, जो सरस्वती के प्रथम भाग में छपा। आत्मशिक्षण (निबंध), भारत विनय (काव्यग्रंथ), शिवाजी (नाटक), उत्तरभारत (नाटक) पूर्व भारत (नाटक), नेत्रोन्मीलन (नाटक), मदन-दहन व रघुसंभव (कालिदास के साढ़े तीन अध्यायों का स्वच्छंद अनुवाद), पद्यपुष्पांजलि (पद्य साहित्य), वीरमणि (उपन्यास), बूँदी बारिश (ब्रजभाषा का काव्य-ग्रंथ), विक्टोरिया अष्टादशी, हिंदी अपील, रूस का इतिहास, भारत का इतिहास (दो भाग) जापान का इतिहास एवं स्फुट लेख इनकी अन्य साहित्यिक रचनाएँ हैं। समस्त कृतियों में तीनों भाइयों की साझेदारी है।[1]

मिश्रबंधु विनोद चार भागों में प्रकाशित है, जिसके प्रथम तीन भाग सन् 1913 में प्रकाशित हुए तथा चतुर्थ भाग कुछ समय बाद सन् 1934 में। इस ग्रंथ का उपनाम 'हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन' है। ग्रंथ के नाम की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है, पहले इस ग्रंथ का नाम 'हिंदी साहित्य का इतिहास' रखने वाले थे, परंतु इतिहास की गंभीरता पर विचार करने से ज्ञात हुआ कि हममें साहित्य का इतिहास लिखने की पात्रता नहीं है। फिर भी इतिहास ग्रंथ में सभी छोटे-बड़े कवियों तथा लेखकों को स्थान नहीं मिल सकता। उसमें भाषा-संबंधी गुणों एवं

परिवर्तनों पर तो मुख्य रूप से ध्यान देना पड़ेगा, कवियों पर गौण रूप से, परंतु हमने कवियों पर भी पूरा ध्यान रखा। इस कारण यह ग्रंथ इतिहास से इतर बातों का भी कथन करता है, हमने इसमें साहित्य-संबंधी सभी विषयों एवं ग्रंथों के लाने का यथासाध्य पूर्ण प्रयत्न किया, परंतु जिन बातों का इतिहास में होना आवश्यक है, उन्हें भी ग्रंथ से नहीं हटाया। हमारे विचार में प्रायः सभी मुख्य एवं अमुख्य कवियों के तथा उनके ग्रंथों का गौरव प्रकट होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी कवि के विषय में कुछ जानना चाहे तो उसे भी उस विषय की सामग्री प्रचुर मात्रा में मिल सकती है। इन्हीं कारणों से साधारण कवियों एवं ग्रंथों के नाम छोड़कर इतिहास का शुद्ध स्वरूप स्थिर रखना आवश्यक समझ पड़ा, फिर भी इतिहास का क्रम रखने को हमने कवियों का काल-समयानुसार लिखा है और ग्रंथ के आदि में एक संक्षिप्त इतिहास भी दे दिया है। इन कारणों से हमने इसका नाम इतिहास न रखकर 'मिश्रबंधु विनोद' रखा, परंतु इसमें इतिहास ही का क्रम एवं इतिहास संबंधी सामग्री सन्निविष्ट रहने के कारण हमने उसका उपनाम 'हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन' भी रखा है।[2]

मिश्रबंधु एक ऐसा ग्रंथ बनाना चाहते थे, जिसमें महत्त्वपूर्ण कवियों, लेखकों एवं उनकी रचनाओं की समालोचना भी हो, साथ ही हिंदी का जन्म, विभिन्न परिस्थितियों में उसका विकास, विभिन्न कालों की साहित्यगत प्रवृत्तियों आदि का विस्तृत विवरण हो।

'हमने भाषा के उत्तमोत्तम शत नवीन और प्राचीन कवियों की कविता पर समालोचना करने का निश्चय किया है और इन समालोचनात्मक लेखों के आधार पर हिंदी का जन्म और गौरव या किसी एक नाम की पुस्तिका निर्माण करने का भी विचार है। इसमें हिंदी में उसके जन्म से अद्यावधि क्या-क्या उन्नति तथा अवनति हुई है और उसके स्वरूप में क्या क्या हेर-फेर हुए हैं, इसका वर्णन भी करना चाहते हैं।[3]

मिश्रबंधु जिस उद्देश्य को लेकर चले, उसको उन्होंने 'मिश्रबंधु विनोद' के रूप में प्राप्त किया। अपने प्रकांड संग्रह 'विनोद' में उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित अनेक वार्षिक एवं त्रैवार्षिक खोज रिपोर्टों में उपलब्ध सामग्री को आधार बनाया, जिसमें ज्ञात एवं अज्ञात एवं अल्पज्ञात अनेक रचनाओं का पता लगाया गया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा यू॰पी॰ सरकार की सहायता से हिंदी लिखित ग्रंथों की खोज का काम लगभग 40 वर्षों से चल रहा था। 'विनोद' में खोज के अतिरिक्त और भी बहुत सा मसाला है।'[4]

जिस समय मिश्रबंधुओं ने यह वृहत कार्य करने का बीड़ा उठाया, उनके पूर्व केवल तीन ग्रंथ रचे गए थे। फ्रेंच विद्वान गार्सा द तॉसी द्वारा रचित 'इस्त्वार द ला लितरेत्युत्तर ऐंदुई ऐंदुस्तानी' जिसमें हिंदी और उर्दू के ज्ञात कवियों का विवरण अकारादि क्रम से दिया गया है। इसका प्रथम भाग सन् 1839 ई॰ तथा द्वितीय भाग सन् 1847 ई॰ में प्रकाशित हुआ। यह फ्रेंच भाषा में था। अतः इसके उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरा, शिवसिंह सेंगर द्वारा सन 1883 ई॰ में रचित 'शिव सिंह सरोज' जिसमें लगभग एक हजार कवियों का जीवनचरित्र एवं उनकी रचनाओं के नमूने प्रस्तुत किए गए हैं। परंतु इसकी शैली अत्यंत प्राचीन होने के कारण इससे लाभ उठाना संभव नहीं था। तीसरा जॉर्ज ए॰ ग्रियर्सन द्वारा रचित 'द मार्डन वर्नाक्युलर लिट्रेचर ऑफ हिंदुस्तान' जिसका प्रकाशन सन् 1883 ई॰ में हुआ। इसमें 952 कवियों का परिचय मिलता है। इन तीनों ग्रंथों की ऐतहासिक महत्ता बहुत अधिक है, किंतु साहित्य के इतिहास की आलोचनात्मक व्याख्या की दृष्टि

 ISSN 0975-735X

से 'मिश्रबंधु विनोद' ही हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ है। यह ग्रंथ सब प्रयत्नों से कहीं अधिक नवीन ढंग की रचना है, जो समय की बहुत बड़ी आवश्यकता थी। अधिकतम कवियों और उनकी रचनाओं का समालोचनात्मक विवरण देकर इतिहास के प्रति उन्होंने हिंदीप्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया। इतिहास-लेखन की पूर्व परंपरा को आगे बढ़ाने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। आचार्य शुक्ल तक अपने इतिहास-लेखन में बहुत कुछ अंश तक उनके द्वारा दी गई सूचनाओं पर निर्भर रहे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया, 'कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्रायः 'मिश्रबंधु विनोद' से ही लिए हैं।'[5] 'रीतिकाल के कवियों का परिचय लिखने में मैंने प्रायः उक्त ग्रंथ से ही विवरण लिए हैं।'[6]

यह वृहत ग्रंथ चार भागों में प्रकाशित है, जो लगभग आठ खंडों मे विभक्त है। इसमें 4591 कवि संगृहीत हुए, जो खंडानुसार निम्नलिखित हैं–

प्रथम भाग	:	1	:	277
द्वितीय भाग	:	278	:	1321
तष्टतीय भाग	:	1322	:	2556
चतुर्थ भाग	:	2557	:	4591

अनेक कवियों की संख्या बटों में दी गई है, इस प्रकार कुल मिलाकर कवि संख्या 5000 के ऊपर तक पहुँचती है। बटों में संख्या देने का कारण स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'प्रथम संस्करण के समय यह सोचा गया कि लोगों ने जो हवाले दिए हैं, वे नवीन नंबर डालने में भ्रमात्मक हो जाएँगे। अतएव प्रथम तीन खंडों में नंबर पुराने ही डाले गए और जिन नंबरों के बीच जाँच से नए कवि मिले, उनके नंबर बटे से कर दिए गए। जैसे नंबर 1566 व 1567 के बीच में दो कवि नए मिले हैं, उनके नंबर 1566/1 व 1566/2 कर दिए गए हैं। अब इन नवीन नंबरों के बीच में भी नए कवि मिलते जाते हैं सो 1566/1अ, 1566/1आ आदि के समान नंबर डालने पड़ते हैं।[7] तथापि इससे ग्रंथ में 'गुत्थलपन आ जाता है और समझ पड़ता है कि जितनी सुविधा पुराने नंबरों के हवाले से होगी, उससे अधिक असुविधा इन नये बटे वाले नंबरों के लिखने में हो रही है।'[8]

परंतु एक अच्छे पाठक को कवियों के नंबर से तात्पर्य न होकर उसमें उपलब्ध समीक्षा से होता है जो उसे विचार करने के लिये दिशा प्रदान करती है।

कवियों के क्रम को लेकर भी बहुत से आलोचक भ्रमित हो सकते हैं, परंतु 'कवियों के पूर्वापर क्रम रखने में हमने जन्म संवत का विचार न करके काव्यारंभ काल के अनुसार क्रम लिखा है। साहित्यसेवा की दृष्टि से किसी का जन्म उसी समय से माना जा सकता है, जबसे यह रचना का आरंभ करे। इसी कारण छोटी अवस्था वाले लेखकों के नाम बड़ी अवस्था वालों के पूर्व आ गए हैं।'[9]

मिश्रबंधुओं ने कवियों को मूल्यांकन के आधार पर उनका सापेक्ष महत्त्व निर्धारित करने के लिए उन्हें श्रेणी में बाँटा है। उन्होंने किसी ग्रंथ का अनुसरण न करके स्वयं का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न किया। 'हमने काव्योत्कर्ष प्रदर्शनार्थ कुछ श्रेणियाँ स्थिर कर दी हैं और कुछ श्रेणियों का एक एक श्रेणी नायक बना दिया है विशेषतया कथाप्रसंग से संबंध रखने वाले कवियों की। 1. सेनापति 2. दास 3. पद्माकर 4. तोष 5. साधारण और हीन नामक श्रेणियाँ हैं।'[10]

'विनोद' का प्रथम भाग तीन प्रकरणों में विभक्त है–

1. संक्षिप्त इतिहास प्रकरण
2. आदि प्रकरण
3. प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण

मिश्रबंधुओं ने विनोद के प्रारंभ में संक्षिप्त इतिहास प्रकरण रखा तो है 'परंतु उसमें तत्कालीन विविध परिस्थितियों और उनका साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा उसका अंतरसंबंध निर्धारित नहीं किया। परिवार्श्विक परिस्थितियों की चर्चा है अवश्य, परंतु इतने क्षीण रूप में है कि साहित्य इतिहास का जिज्ञासु पाठक इससे संतुष्ट नहीं होता।'

अत्यंत संक्षेप में उन्होंने हिंदी की उत्पत्ति के विषय में कुछ ज्ञातव्य तथ्य बतलाने की चेष्टा की है। 'इस संबंध में उन्होंने ग्रियर्सन की सहायता ली है अथवा उस पर निर्भर हैं, अतएव जो भूलें ग्रियर्सन ने इस संबंध की हैं, मिश्रबंधु भी अपने को उनसे बचा नहीं पाए।'[12]

मिश्रबंधुओं ने अपने मिश्रबंधु विनोद के प्रथम भाग में कालविभाजन का प्रयास किया, जो प्रत्येक दृष्टि से ग्रियर्सन के प्रयास से बहुत अधिक विकसित कहा जा सकता है–

काल विभाजन	समय	कितनी कविता मिलती है
पूर्वारंभिक काल	700–1343	बहुत कम
उत्तराम्भिक काल	1344–1444	थोड़ी
पूर्व माध्यामिक काल	1445–1560	कुछ अधिक
पूर्व माध्यमिक काल	1561–1630	अच्छी मात्रा में
पूर्वालंकृत काल	1631–1790	बहुत अच्छी मात्रा में
उत्तरालंकृत काल	1791–1889	वर्धमान मात्रा मे
अज्ञात काल		साधारण
परिवर्तन काल	1890–1925	प्रचुरता से
वर्तमान काल	1926 से अब तक	बहुत अधिक

यह वर्गीकरण बहुत सम्यक एवं स्पष्ट है। 'विनोद' का द्वितीय भाग दो एवं तृतीय भाग तीन प्रकरणों में विभक्त है–

द्वितीय भाग : 1. पूर्वालंकृत प्रकरण
2. उत्तरालंकृत प्रकरण

तृतीय भाग : 1. अज्ञातकालिक प्रकरण
2. परिवर्तन प्रकरण
3. वर्तमान प्रकरण

चतुर्थ भाग में अड़तीस से लेकर बयालीस अध्यायों को विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत रखा गया है–1. शेष कविगण 2. प्राचीन कविगण 3. अज्ञात काल 4. पूर्वनूतन 5. उत्तर नूतन।

इस प्रकार 'विनोद' में कुल बयालीस अध्याय हैं। तृतीय भाग का प्रथम अर्थात् इकतीसवाँ अध्याय अज्ञातकालिक प्रकरण नाम से है 'क्योंकि बहुत से कवियों के विषय में प्रयत्न करने पर भी कालनिपरूण नहीं हो सका, परंतु इसी कारण उन्हें छोड़ देना अनुचित समझकर हमने उनके लिए यह अध्याय नियत कर दिया है।'[13]

इस अध्याय के माध्यम से अनेक अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाते हुए उनके साहित्यिक महत्त्व को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। इतिहास के रूप में इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें कवियों के विवरणों के साथ-साथ साहित्य के विभिन्न अंगों पर भी प्रकाश डाला गया है।

मिश्रबंधु भाषा की सहजता एवं स्वाभाविकता में विश्वास रखते हैं। उनके ग्रंथों में भाषा का रूप जनसाधारण की आम भाषा का है, भारी भरकम संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया। भाषा में कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। व्याकरणिक दृष्टि से कहीं-कहीं ढीलापन दिखाई पड़ता है। मिश्रबंधु भाषा को व्याकरण के क्लिष्ट नियमों में बाँधना नहीं चाहते। 'यदि हिंदी पर व्याकरण का बल बढ़ा तो यह मातृभाषा न रहकर मृतभाषाओं में चली जाएगी। इसलिए हम लोग सिद्धांत के रूप में संस्कृत के नियमों को हिंदी मे अमान्य समझकर शब्दों के वे रूप लिखते और इतरों से लिखवाना चाहते हैं, जो संस्कृत व्याकरण के नियमों से चाहे अशुद्ध हों, किंतु देश में उनका प्रचार हो।'[14] उनका मानना है कि हिंदीभाषा ही संस्कृत नियमों की तिरस्कार रूपा उत्पन्न हुई है।

साहित्य में अत्यधिक अलंकृत भाषा के वे पक्ष में नहीं थे। भाषा में आलंकारिकता उतनी होनी चाहिए, जितने किसी शशिवदनी रूपवती कन्या के सौंदर्य में वृद्धि करने के लिए कुछ आभूषण पहनाए जाते हैं। 'जैसे अंग-प्रत्यंगों को आभरणों से आच्छादित कर देने से कुछ ग्रामीणता एवं भद्दापन बोध होने लगता है, उसी प्रकार कविता को भी विशेष रूप से अलंकृत करने पर उसकी नैसर्गिक सुधराई में बट्टा लग जाना स्वाभाविक है।'[15]

मिश्रबंधुओं के लिपि-संबंधी विचार भी बड़े चिचित्र हैं। वे हिंदी के हित में यह आवश्यक समझते है कि एक ही शब्द अनेक प्रकार से लिखा जाए। शब्द का वर्णविन्यास चाहे जैसा हो उन्हें सब सहज स्वीकार है। कोकिल शब्द को कोइल या कोयल भी लिखें तो उसमें उनका कोई विरोध नहीं है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने सतसई शब्द के निम्नांकित 6 रूप दिए हैं—सतसई, शतसेय्या, सतसैया, सतसइया शतसेया, सतसई।

मिश्रबंधु ग्रंथों की अधिक संख्या में विश्वास नहीं रखते वरन ग्रंथों की गुणवत्ता पर ध्यान देने की सिफारिश करते हैं, 'जितने परिश्रम से दस ग्रंथ बनाए जाते हैं उतने से यदि एक बने तो शायद चमत्कार के कारण काल की करालता का वह चिरकाल तक सामना कर सके।'[16]

साहित्य के नाम पर चलने वाले व्यापार का विरोध करते हुए स्वीकार करते हैं, 'शुद्ध साहित्यसेवा और चमत्कृत ग्रंथों का अस्तित्व ही समय पर लेखकों तथा हिंदी साहित्य की गरिमा का कारण होगा, इतर कोई युक्ति काम न आवेगी।'

मिश्रबंधु साहित्य में चमत्कार की बात तो करते हैं, परंतु यह स्पष्ट नहीं करते कि चमत्कार से उनका क्या आशय है।

वे साहित्य के गौरव के लिए नवीनता का गुण आवश्यक मानते हैं। उनकी नवीनता यह है कि अपने ग्रंथ में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कवियों की पृथक-पृथक समालोचनाएँ कुछ विस्तृत रूप में प्रस्तुत की हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए रचनाओं के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। कवियों की तुलनात्मक समीक्षा का तो सूत्रपात एक प्रकार से मिश्रबंधु विनोद से माना जा सकता है। अपने समालोचना विषयक विचार प्रकट करते हुए वे लिखते हैं, 'समालोचना में मुख्य वर्णन कवि का

चाहिए और उसी की रचना के साथ जहाँ कहीं अच्छे सिद्धांत निकलें, उनका सूक्ष्मतापूर्वक विवरण लिख देना उचित है। जहाँ कविता का वर्णन मुख्य तथा सिद्धांतों का गौण होगा, वहाँ साहित्य समालोचना समझी जाएगी, किंतु जहाँ सिद्धांतों का प्रचुर कथन होकर कविता का सूक्ष्म वर्णन उदाहरण की भाँति दे दिया जायेगा, वहाँ साहित्यिक समालोचना के स्थान पर रचना कथित सिद्धांतों पर निबंध मात्र मानी जाएगी।'[18]

मिश्रबंधुओं का रुझान संस्कृत काव्यशास्त्र की ओर रहा। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित पाश्चात्य साहित्य की विधेयवादी प्रणाली पर ध्यान नहीं दिया, जिसका प्रयोग आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी किया।

'मिश्रबंधु विनोद' में कुछ विसंगतियाँ भी हैं, जिनका गणपतिचंद्र गुप्त ने इस प्रकार विवेचन किया है–

'उन्होंने भी ग्रियर्सन की भाँति सन् 700 से 1300 ई॰ तक के युग को हिंदी साहित्य के साथ संबद्ध कर दिया, जो वस्तुत: अपभ्रंश का युग है। वे मध्यकाल में लगभग दो सौ वर्षों के समय को भी साहित्य की प्रौढ़ता के आधार पर दो अवांतर भेदों पूर्वमाध्यमिक काल एवं प्रौढ़ माध्यमिक काल में विभक्त करते हैं, जिसका अर्थ है कि सौ वर्षों में ही साहित्य प्रौढ़ हो गया जबकि प्रारंभ में सात-आठ सौ वर्षों में भी वह एक सा रहता है। इसी प्रकार 'अलंकृत काल' के बाद परिवर्तन काल (1890-1923 वि॰सं॰) के रूप में केवल 35 वर्षों के समय को अलग स्थान देना भी अस्वाभाविक प्रतीत होता है। प्रत्येक काल के बाद दूसरा काल आने से पूर्व सदा परिवर्तन होता ही है, अत: यदि परिवर्तन काल की संज्ञा स्वीकार करें तो प्रत्येक काल के अंदर एक एक परिवर्तन काल देना होगा, जो अनावश्यक है। विभिन्न कालखंडों के नामकरण में भी एक जैसी पद्धति नहीं अपनाई गई है, जहाँ अन्य नामकरण विकासवादिता के सूचक हैं, वहाँ अलंकारकाल आंतरिक प्रवृत्ति पर आधारित है।'[11]

इन दोषों के होते हुए भी मिश्रबंधु विनोद की महत्ता एवं उसकी उपादेयता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मिश्रबंधुओं का यह प्रयास पर्याप्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रौढ़ है, इसमें कोई संदेह नहीं।

श्री रमाशंकर शुक्ल रसाल मिश्रबंधुओं को साहित्य के इतिहास का प्रर्वतक मानते हैं। उनके मतानुसार 'वास्तव में हिंदी साहित्य इतिहास का जन्म श्रद्धेय मिश्रबंधुओं द्वारा ही हुआ है और हिंदी संसार तथा हिंदी साहित्य उनका शाश्वत ऋणी तथा आभारी है। मिश्रबंधुओं ने ही साहित्य के इतिहास को नया मार्ग दिखलाया है।'[20]

मिश्रबंधुओं ने कहीं भी अपनी पुस्तक को हिंदी साहित्य का इतिहास सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया, क्योंकि वे जानते थे कि ऐतहासिक मूल्य एवं समीक्षा की दृष्टि से उसमें कमी है। परंतु फिर भी उसमें वह सारी सामग्री उपलब्ध है, जो एक इतिहासग्रंथ में होनी चाहिए। यह पहली पुस्तक है, जिसमें बड़े कवियों पर समीक्षात्मक टिप्पणी लिखी गयीं और मूल्यांकन के आधार पर उन्हें श्रेणीबद्ध किया गया। यह बहुत ही प्रौढ़ एवं सराहनीय प्रयास है। जंगल में रास्ता बनाने के समान। यदि मिश्रबंधु विनोद न लिखा गया होता तो आगे के हिंदी साहित्य के इतिहासकारों को काफी परेशानी उठानी पड़ती। यद्यपि आधुनिक साहित्यिक आलोचना की दृष्टि से यह रचना दोषरहित नहीं मानी जा सकती, लेकिन इनके कठिन परिश्रम ने आगे के साहित्यकारों

 ISSN 0975-735X

की बहुत मदद की। वास्तव में, मिश्रबंधुओं ने हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा में पथप्रदर्शक का कार्य किया है। उनका प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक कवियों एवं लेखकों को प्रकाश में लाना था, साथ ही हिंदी साहित्य में उनका महत्त्व स्थापित करना था, जिसमें वे पूर्णतया सफल हुए हैं। इसीलिए अपने ग्रंथ के आरंभ मे उन्होंने यह छंद लिखा है, जो विनोद के चारों भागों मे मिलता है–

ते सुकृति रससिद्ध कवि वंदनीय जग माहिं।
जिनके सुजस-शरीर कहँ जरा-मरन-भय-नाहिं।

कवियों के विस्तृत विवरण के साथ इसमें हिंदी साहित्य के ऐतहासिक वर्णन की भी काफी कुछ सामग्री उपलब्ध है, इसीलिए मिश्रबंधुओं ने अपने इस ग्रंथ का उपनाम 'हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन' रखा।

संदर्भ

1. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 227
2. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, पृ॰ 3-4
3. मिश्रबंधु विनोद, पृ॰ 1
4. मिश्रबंधु विनोद, पृ॰ 228
5. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ॰ 6
6. वही, पृ॰ 7
7. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 2, 3
8. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 3
9. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, भूमिका पृ॰ 6
10. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, भूमिका, पृ॰ 23
11. हिंदी साहित्येतिहास का विकास, पृ॰ 21
12. हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ॰ 119
13. मिश्रबंधु विनोद, तृतीय भाग, पृ॰ 951
14. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 337
15. मिश्रबंधु विनोद, तृतीय भाग, पृ॰ 1014
16. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 141
17. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 160
18. मिश्रबंधु विनोद, चतुर्थ भाग, पृ॰ 168
19. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त, पृ॰ 73
20. हिंदी साहित्य का इतिहास, रमाशंकर शुक्ल रसाल, भूमिका, पृ॰ 03

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संतसाहित्य की उपयोगिता

डॉ॰ ऋषिपाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
बाबू अनंतराम जनता कॉलेज
कौल, कैथल (हरियाणा)

वर्तमानयुग विज्ञान एवं संचार माध्यमों का युग है। विश्वग्राम कहे जाने वाला समस्त संसार एक मुट्ठी में समा गया लगता है। वैश्वीकरण के इस दौर में हम क्षण में ही विश्व के किसी भी देश में घर बैठे बाते कर सकते हैं व पलक झपकते ही हम कहीं भी पहुँच सकते हैं। जिन चमत्कारों की केवल कल्पना की जाती थी, आज वे सब साकार हो गए हैं। आज, वैश्वीकरण ने जहाँ व्यक्ति को विश्वकेंद्रित कर महिमार्मंडित किया है, वहीं बाजारवादी संस्कृति के दुष्प्रभावों ने उसके व्यक्तित्व को बौनापन भी प्रदान किया है। विश्वगुरु की पदवी को प्राप्त भारत देश वर्तमान में पाश्चात्य की चकाचौंध के वशीभूत अपने संस्कारों से विहीन होकर, इसके विपरीत मार्ग को अपना रहा है, जिसके कारण भारतवर्ष निरंतर पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। चारों ओर समाज में अहिंसा, आतंक, भेदभाव, गरीबी, मानवीय मूल्यों में गिरावट, नैतिक मूल्यों का पतन आदि विद्रूपताओं एवं विसंगतियों का बोलबाला है। वर्तमान में बाजारवादी संस्कृति ने व्यक्ति को असंतोष प्रदान किया है। वर्तमान भौतिकवाद एवं बाजारीकरण के इस युग में क्षेत्रवाद, जातिवाद का नंगा नाच, धार्मिकता-अधार्मिकता का सवाल, भौतिक सुखों को पाने की अमानवीय प्रतिस्पर्धा, अनपढ़ता, बेरोजगारी, नशा, नैतिक मूल्यों का पतन, राजनीतिक कुटिल चालें आदि कुचक्रों ने आज पुनः भारतीय समाज को विघटन के कगार पर लाकर पटक दिया है।

आज समस्त मानवता के समक्ष यही प्रश्न है कि इस सुंदर सृष्टि को विनाश के महा आतंकी राक्षस से कैसे बचाया जा सकता है? इस घोर विकट स्थिति को देखकर लगता है कि संतवाणी ही वह गुरुमंत्र है, जो मानव को आत्मपहचान कराने में समर्थ है, क्योंकि संतों की वाणी में अमोध शक्ति है। संतों के साहित्यिक उपवन में अनेक ऐसे मीठे मनोहर फल लगे हुए हैं, जिनके सेवन करने मात्र से अनेक कष्टों एवं पीड़ाओं से मुक्ति मिल सकती है। त्रिविध तापों से संतप्त जनता संतकाव्य के उपवन में आकर दुःख-निवृत्ति करती है। सही अर्थों में संतों ने जीवन और जगत की वास्तविकता को पहचाना था। संतों के नैतिक मूल्य बाहर से ओढ़े लबादे नहीं, उनके जीवन के निष्कर्ष हैं। डॉ॰ केशनीप्रसाद चौरसिया के शब्दों में, 'हिंदी संतसाहित्य 'महामानव समुद्र' भारत के हृदय की धड़कन का, यहाँ के जनजीवन की आशा-आकांक्षा का तथा हास्य- रुदन और हर्ष-विषाद का साहित्य है। संतसाहित्य की साधना लोकधर्म की संस्थापिका और प्रतिष्ठापिका है। भारतीय जनता की आशा-निराशा, प्रेम-घृणा अथवा उल्लास-उदासी का जैसा मूर्तिमान प्रतिबिंब संतसाहित्य के परिमार्जित दर्पण में उजागर हो उठा है, वह अन्यत्र कम ही सुलभ है।'[1]

 ISSN 0975-735X

संतसाहित्य समस्त जनजीवन को सदुद्देश्य की ओर प्रेरित करने वाला है। संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से जो चेतावनियाँ दी हैं, वे हमेशा समाज के लिए हितकारी एवं कल्याणकारी हैं। डॉ॰ हरिश्चंद्र वर्मा के शब्दों में, संतों की वाणी में समाज के 'नकारात्मक और सकारात्मक' दो पहलू हैं। नकारात्मक पहलू के अंतर्गत उन्होंने जाति-पाति, छुआछूत, सामाजिक विषमता, पाखंड, अत्याचार, जीव-हिंसा, भोगवाद, अंधविश्वास आदि मानवता-विरोधी प्रवृत्तियों के प्रति विद्रोह किया है। उन्होंने बिना किसी भेदभाव के हिंदू-मुसलमान की सामाजिक विकृतियों पर जमकर प्रहार किए हैं। सकारात्मक पहलू के अंतर्गत उन्होंने प्रेम, अहिंसा, सत्य, करुणा आदि शाश्वत मानवमूल्यों की प्रतिष्ठा की है।'[2] संतों का ब्रह्म दीनदयाल है, कृपाल है, भक्त-वत्सल और भयहारी है। संतों की ब्रह्मकल्पना ऊपर-ऊपर से विलक्षण है, लेकिन भीतर से बहुत ठोस और प्यारी है। डॉ॰ राजदेव सिंह लिखते हैं, 'संतों का राम न ज्ञानियों का अद्वैत ब्रह्म है, न भक्तों का सगुण ब्रह्म। वह इन दोनों के बीच का है। वह अद्वैत सत्ता है, लेकिन प्रेम का अविषय नहीं है, दया-माया से हीन नहीं है, भक्त का दु:ख-दर्द उस तक पहुँचता है।'[3] संतों ने अपनी वाणी में मानव को संन्यास लेना या घर त्यागना जरूरी नहीं, इस बात को स्पष्ट किया है।

अनेक संत गृहस्थी होते हुए भी संन्यासियों से भी उत्कृष्ट करनी कर गए। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, 'सांसारिक विषमताओं से घबराकर, वेशधारी साधु का रूप धारण कर, वे भागकर जंगलों में ब्रह्म की साधना करने नहीं गए। उन्होंने, नारी के कामिनी रूप की निंदा करके भी, सामान्य गृहस्थ जीवन को अपनाया।'[4] संतों की वाणी लोककल्याण की वाणी थी। समाज-कल्याण को ही संतों ने अपने काव्य और जीवन का प्रमुख उद्देश्य स्वीकार किया था। सभी संतकवियों ने जनकल्याण के विचार ही अपनी रचनाओं में व्यक्त किए हैं। उन्होंने तत्कालीन समाज की पीड़ा को समझा और उसका व्यावहारिक समाधान निकालकर जन-भाषा में जनता के सामने रखा। सभी संतों ने उन परंपराओं का घोर विरोध किया, जो समाज की प्रगति को अवरुद्ध किए हुए थी। संतों के साहित्य में एक ओर जहाँ ईश्वर-भक्ति की बात मिलती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक समता पर भी पूरा जोर दिया गया है। संतों ने सदैव सांप्रदायिक विद्वेष की भावना का जोरदार विरोध किया। उन्होंने तत्कालीन हिंदू-मुस्लिम संघर्ष की स्थिति के प्रति पारस्परिक सौहार्द का उपदेश दिया। संत रैदास लिखते हैं–

कृष्ण करीम राम हरि राघव जब लगि एक न पेषा।
वेद कतेब कुरान पुरातन सहज एक करि भेषा।[5]

संतकवियों की वाणी ने जो अलख जगाया, वह हमारे आज के टूटते-बिखरते जीवन के सापेक्ष उतना ही मूल्यवान है, जितना अपने युगीन संदर्भों में था। वर्तमानयुग में धनकेंद्रित उपभोक्तावादी संस्कृति की निस्सारता को संत कुंभनदास के शब्दों में समझा जा सकता है, जिन्होंने कहा था–**'संतन को कहा सीकरी से काम।'** धन-दौलत को पत्थर का टुकड़ा मानने वाली भारतीय संस्कृति ही वर्तमान परिस्थितियों में जन्मी असंतोष की लहर का अंत कर सकती है। संतों ने कथनी और करनी के एक होने की आवश्यकता का पर जोर दिया, जिसकी प्रासंगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अधिक है। कबीर ने हिंदू और मुसलमान दोनों के ढोंग, पाखंडों पर तीखा व्यंग्य किया है। कबीर जब यह कहते हैं–

हिंदुअन की हिंदुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।

कहै कबीर सुनौ हे साधौ, कौन राह ह्वै जाई।[6]

तो यह बात सीधे-सीधे आज के वैश्वीकरण से घिरे व द्रुतगति से विकास की ओर बढ़ते भारत व उसके समाज में भड़कने वाले हिंदू-मुस्लिम दंगे हमें संतों की वाणी के संदर्भ को समझने सोचने के लिए मजबूर करते हैं। संतों का मानना था कि समाज में व्याप्त पाखंडों को प्रोत्साहित करने में शास्त्रों का पर्याप्त हाथ है। उन्होंने अबोध जनता को पंडितों और मुल्लाओं के कुत्सित प्रभाव से बचने के लिए अपनी वाणी द्वारा लोगों को आगाह किया। कबीर कहते हैं–

पंडित वेद पुरान पढ़ै, और मौलाना पढ़े कुराना।
कहै कबीर वे नरक गए, जिन हिरदय राम न जाना।[7]

संतों ने अनेक सामाजिक, धार्मिक समस्याओं का समाधान अपने साहित्यिक गलियारे से दिखाने का प्रयास किया है। संतों का एकमात्र ध्येय एक साफ-सुथरा एवं स्वस्थ समाज निर्माण करना था। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित अंधविश्वासों, दुराग्रहों और निरर्थक रीति-रिवाजों को पाखंड मानकर घोर विरोध किया। आडंबरों में लिप्त साधुओं की आलोचना करते हुए संत दरिया साहब कहते हैं–

कहिं बाधि जटा सिरजूट रखे, कहिं मोर गुदर को सीवता है।
कहिं खाकिया खाक बधबरि है, कहिं पाँव उलटि के रीवता है।
कहिं मुदरा देन्हि स्रवन सोभा, कहिं साधि पवन को पीवता है।[8]

संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से तत्कालीन समाज में हिंदुओं की तीर्थयात्रा और मुसलमानों द्वारा हज-यात्रा की पवित्रता और भक्तिभावना को लेकर लोगों के मन में व्याप्त अंधविश्वासों को लेकर भी आवाज उठाई। संतों ने जोर देकर कहा कि भला ऐसे हज का क्या लाभ? कबीर आदि संत काजी को भी उपदेश देते हैं कि वह अपने शरीर में ही मक्का और काबा को देखें। जब ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है, केवल तीर्थ-स्थानों तक ही सीमित नहीं है, तो वहाँ भटकने की क्या आवश्यकता है? संतों का मानना है कि जो आदमी मन में विकार लेकर तीर्थ पर जाता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। वे मानते हैं कि सच्चा स्नान तो गुरु की सेवा है। कबीर इस प्रकार के आडंबरों का विरोध करते हुए लिखते हैं–

तीरथ करि-करि जग मुवा, ढूबे पांणी न्हाइ।
रामहिं राम जपंतड़ा, काल घसीट्याँ जाइ।[9]

संतों ने मुसलमानों को भी तीर्थस्थानों के चक्कर काटने से बचने के लिए अनेक बार आगाह किया है। कबीर कहते हैं–

कबीर हज करने होई गइआ, कैसी बार कबीर।
सांई मुझ महि किआ खता, मुखहु न बोले पीर।[10]

संतों ने तत्कालीन समाज में हिंदू और मुसलमानों में एकता कायम करने के भरसक प्रयास किए। संतों ने दोनों धर्मों की आंतरिक एकता को रेखांकित किया और उनके ऊपरी विभेदों को नकारा। उन्होंने मानवता को समान समझते हुए राम-रहीम का भेदभाव नहीं किया। डॉ॰ पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने ठीक कहा है, 'उस समय की यही स्पष्ट माँग थी कि हिंदू और मुसलमान अड़ोसी-पड़ोसी की भाँति प्रेम और शांति से रहें और इन उदार चेताओं को भी इस आवश्यकता का स्पष्ट अनुभव हुआ था। दोनों जातियों के दूरदर्शी विरक्त महात्माओं को जिन्हें जातीय पक्षपात

 ISSN 0975-735X

छू नहीं गया था, जिनकी दृष्टि तत्काल के हानि-लाभ, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से परे जा सकती थी, इस आवश्यकता का सबसे तीव्र अनुभव हुआ।'[11] हिंदू और मुसलमानों के धार्मिक व सामाजिक मतभेदों, परस्पर झगड़ों, विवादों कटुता आदि से दूर दादू इन दोनों धर्मों से दूर रहकर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने की बात अपनी वाणी के माध्यम से करते हैं–

दादू ना हम हिंदू होहिंगे, ना हम मूसलमान।
षट्दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान।[12]

सभी संतों ने हिंदू-तुर्क के नाम पर प्रचलित भेदभाव का घोर विरोध किया है। रज्जब हिंदू-मुसलमानों के बीच समभाव का उपदेश देते हुए लिखते हैं–

हिंदू तुरुक दुन्यूं जल बूँदा। कासूँ कहिए बांभण सूदा।
रज्जब समता ग्यान विचारा, पंत तत्त का सकल पसारा।[13]

बुल्लेशाह ने भी हिंदू और मुसलमानों में कोई भेद नहीं माना–

दुई दूर करो, कोई सोर नहीं। हिंदू तुरुक कोई होर नहीं।
सब साधु लखौ कोई चोर नहीं। घट-घट में आप समाया है।[14]

संतों ने जनसामान्य की कथनी व करनी में सामंजस्य स्थापित करने की बात पर जोर दिया। संतों के स्वयं व्यावहारिक आचरण और वाणी में एकता थी। कथनी और करनी की एकरूपता से मानव जीवन में सफलता प्राप्त कर लेता है। संतों का मानना है कि जिन लोगों के कर्म ही वाणी से विपरीत हों, तो उनके वचनों का प्रभाव अन्य लोगों पर क्या पड़ सकता है? ऐसे लोग समाज में विश्वास के पात्र नहीं समझे जाते। दादूदयाल कहते हैं–

दादू कथणी और कुछ, करणी केरे कुछ और।
तिन थैं मेरा जीव डरै, जिनके ठीक न ठौर।[15]

गरीबदास ने भी कथन के साथ-साथ आचरण को महत्त्व देने वाले लोगों को सही माना है। वे मानते हैं कि कर्म और वचन की समानता वाले व्यक्ति साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप हैं और कथन और करनी में भिन्नता जिन लोगों के व्यवहार में है, वे उन्हें दुष्ट और घृणित व्यक्ति मानते हैं–

गरीब करनी कूँ कुरबान जाँ, कथनी कथे किह कूत।
करनी बानी ब्रह्म है, कथनी बकते भूत।[16]

संतकवियों ने तत्कालीन अव्यवस्थित और विशृंखल समाज को जोड़ने के लिए अनेक उत्तम आदर्श स्थापित किए। मानवतावाद में अभेद की स्थापना तभी संभव है, जब सबमें एकता के दर्शन किए जाएँ। डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'सामाजिक, धार्मिक, दुर्व्यवस्थाओं का विरोध विविध संतों के उस असंतोष का फल है, जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था।'[17] संतों ने मनुष्य-मात्र में परमात्मा की ज्योति को समझने की बात पर जोर दिया। वे हमेशा जाति-पाति से ऊपर उठकर दिन रात नाम-स्मरण पर ही जोर देते थे। संत नामदेव कहते हैं–

हिंदू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत।
नामा सोई सेविया, जहँ देहुरा न मसीत।[18]

नारी-विमर्श को लेकर गुरु नानकदेव जी लिखते हैं 'तिन क्यूँ मंदा आखिऐ, जिन जमिओ

राजान।' वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में बाजारवादी संस्कृति ने पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष व अहंकार को जन्म दिया है, जिन्हें संतवाणी ही दूर कर सकती है। लोगों को प्रेम, प्यार, त्याग, समर्पण आदि का संदेश देते हुए कहा है 'प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय। राजा प्रजा जेहि रुचै, सिर दे ले जाय।' संतों की बात मानवता को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती है। विश्वग्राम कहे जाने वाले समस्त संसार एवं बाजारीकरण के दौर में अपरिमित सुविधाओं में जीवन की आवश्यकताओं का उद्घोष करने वाली जड़ सोच को कबीरदास की वाणी संयमित और अनुशासित करने की सामर्थ्य रखती है–

साईं एता दीजिए जामै कुटुंभ समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साध न भूखा जाय।[19]

उनका यह कथन मानवीय आवश्यकताओं को मर्यादा में बाँधने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। सभी संत भारतीय समाज के संरक्षक व पोषक थे। वे भेदभाव तथा वर्ण-व्यवस्था की विकृतियों को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। संतों ने ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त करने की आवाज उठाई। रविदास ने समाज की इस पीड़ा को अपनी वाणी के माध्यम से बड़ी सहजता से व्यक्त किया है–

रविदास जन्म के कारनै, होत न कोऊ नीच।
नर को नीच कर डारि है, ओछै करम की कीच।[20]

संतों ने तत्कालीन समाज में आंतरिक नैतिक बल और स्वाभिमान के सहारे छुआछूत की व्यापक भावना के विरुद्ध भी आवाज उठाई। दिनेशचंद्र भारद्वाज के शब्दों में, 'संपूर्ण समाज विभिन्न जातियों में विभाजित हो गया था, जिसमें परस्पर आदान-प्रदान की कम संभावनाएँ रहती थीं। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ और वैश्यों का समाज में उच्च स्थान था, परंतु शूद्रों की दशा पूर्व की अपेक्षा और गिर गई थी।'[21] कबीर तत्कालीन समाज में होने वाले इस अनर्थ को देखकर बहुत दु:खी थे। उन्हें ब्राह्मणों के मिथ्याडंबरों से घृणा थी। वे लिखते हैं–

जे तू बाँभन बाँभनी जाया, तो आन बाट ह्वै काहे न आया।[22]

समत्व की भावना को लेकर दादूदयाल लिखते हैं–

आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल बिचारिए, तो दूजा कौण गँवार।[23]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि संतों ने समाज की एकता और अखंडता को बनाए रखने में अपना अहम योगदान दिया। उन्होंने धर्म और उसमें निहित समस्त आडंबरों एवं अंधविश्वासों का सदैव पर्दाफाश किया है। संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से धार्मिक भेदभाव को मिटाकर सब जातियों में भावात्मक एकता लाने का भरसक प्रयास किया। संत मानवतावादी थे। उन्होंने सभी बाह्याचारों, शास्त्र और शास्त्रवाद तथा अवतारवाद का विरोध किया ताकि व्यक्ति व्यक्ति से जुड़ सके। इस घोर संकटकाल में संतवाणी ही दिशाहीन, भटकते मानव को सच्ची जीवन-पद्धति प्रदान करती है। संतवाणी ही मानवमूल्यों का मंगलकोष है। हम कह सकते हैं कि धर्म और विभिन्न संप्रदायों के संदर्भ में संतकवि जितने उस समय प्रासंगिक थे, आज भी उतने ही या शायद उससे भी अधिक प्रासंगिक हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संतसाहित्य ही संसार में विज्ञान व साहित्य, यंत्र एवं मनुष्य के बीच सुमेल कराने में सक्षम है। हम कह सकते हैं कि युगों-युगों

से पीड़ित और दिग्भ्रमित मानवता के लिए संतसाहित्य हमेशा ज्योतिर्मय एवं अमृत संजीवनी था, आज भी है और आगे भी रहेगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संतसाहित्य व्यक्ति व समाज को संयमित और अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए अपनी उपयोगिता को सार्थक बनाता है।

संदर्भ

1. केशनीप्रसाद चौरसिया, मध्यकालीन हिंदी संत विचार और साधना, पृ॰ 55
2. डॉ॰ हरिश्चंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 118
3. डॉ॰ राजदेवसिंह, संतसाहित्य : पुनर्मूल्यांकन, पृ॰ 113
4. परशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ॰ 526
5. लोकप्रिय संत-भक्तकवि संत रैदास, संपादक : योगेश गुप्त, पृ॰ 19
6. वियोगी हरि, संतसुधा सार (कबीर), खंड 1, पृ॰ 109
7. सं॰ श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 28
8. धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, संतकवि दरिया : एक अनुशीलन, पृ॰ 143
9. सं॰ श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 243
10. सं॰ रामकुमार वर्मा, संत कबीर, पृ॰ 277
11. सं॰ पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदीकाव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृ॰ 15
12. सं॰ सुधाकर द्विवेदी, स्वामी दादूदयाल की वाणी, 13/50
13. संत सुधासार (बिहार वाले दरिया साहब), खंड 2, पृ॰ 530
14. संतबानी संग्रह (बुल्लेशाह), भाग 1, पृ॰ 190
15. संतबानी संग्रह (कबीर), भाग 1, पृ॰ 93
16. गरीबदास की बानी, गुरुग्रंथ साहिब, पृ॰ 95
17. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ॰ 94
18. सं॰ वियोगी हरि, संतसुधा सार, पद 18,, पृ॰ 8
19. सं॰ पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 160
20. सं॰ डॉ॰ बी॰पी॰ शर्मा, संतगुरु रविदास वाणी, पद 83, पृ. 103
21. दिनेशचंद्र भारद्वाज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पृ॰ 30
22. सं॰ श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पद 41, पृ॰ 79
23. सं॰ परशुराम चतुर्वेदी, दादूदयाल ग्रंथावली, पृ॰ 273

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचाण्डिया निबंधकार के रूप में

रेणु शर्मा
शोधछात्रा, हिंदी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचण्डिया अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे। सहज, सरल, सौम्य, सहिष्णु, सद्भावी और सच्चरित्र एवं मानवमूल्यों से संपन्न डॉ॰ प्रचण्डिया ने साधुवत् साहित्य-साधना की। डॉ॰ प्रचण्डिया का कर्मक्षेत्र सहस्रधारा तीर्थ के समान बहुआयामी एवं बहुविस्तृत था। डॉ॰ प्रचण्डिया हिंदीभाषा और साहित्य के प्रोफेसर थे। प्रचण्डिया काव्यकार, गीतकार, निबंधकार जीवनीकार, संस्मरणकार, उपन्यासकार थे। उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी अनवरत रूप से चलाई।

निबंध का अर्थ

'निबंध' शब्द 'नि' उपसर्ग 'बंध' धातु से 'ध' प्रत्यय के योग से बना है। 'बंध' का अर्थ है। बाँधना, रोकना, नम करना। 'नि' का अर्थ है अच्छी तरह से (पूर्णतया) और 'ध' का अर्थ है–संग्रह। 'अच्छी तरह से बँधा हुआ।' प्रथमतः साहित्य को भोजपत्रों पर लिख जाता था। तदुपरांत उन भोजपत्रों को भली-भाँति बाँध दिया जाता था। इस प्रकार बाँधने की क्रिया को 'निबंधन' कहा गया और कालांतर में 'निबंध' शब्द अस्तित्व में आया।[1]

निबंध की परिभाषा

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने निबंध की अलग-अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं–

1. मातेन के अनुसार 'निबंध संस्मरण, उद्धरण, अंतर्कथाओं का सम्मिश्रण मात्र है।'[2]
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'निबंध उसी को कहना चाहिए, जिसमें व्यक्तित्व अथवा व्यक्तिगत विशेषताएँ हो।'[3]
3. गुलाबराय के अनुसार 'निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगीतबद्धता के साथ किया गया हो।'[4]

प्रचण्डिया जी निबंधकार के रूप में

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचण्डिया जी ने निबंधों की रचना करके गद्य साहित्य को समृद्ध किया है। प्रचण्डिया जी ने 'स्वकथ्य' में स्वीकार किया है कि इन निबंधों में उन सभी भव्य भावनाओं का सामंजस्य है, जिनसे नित्य निरंतर चिंतवन तथा चर्या में चरितार्थ करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इच्छाओं का निरोध व्यक्ति-विकास का मूलाधार है। प्रचण्डिया जी ने इच्छाओं को निरोधने

 ISSN 0975-735X

के लिए महात्मा गांधी द्वारा बताए गए एकादश व्रतों का विधान प्रस्तुत किया है। प्रचण्डिया जी द्वारा लिखे गए मौलिक निबंधों में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विविध बिंदुओं पर मौलिक चिंतन और मूल्यांकन व्यक्त हुआ है।

अपने निबंधों द्वारा उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि किसी भी देश का वास्तविक विकास उसकी ऊँची-ऊँची इमारतों, कल-कारखानों, बाँध एवं उद्योग लगाने भर से नहीं होता अपितु देश का सच्चा निर्माण उसके नागरिकों के चरित्र-निर्माण में निहित है। सच्चरित्रता के अभाव में जीवन से प्रामाणिकता और दायित्व-निर्वाह का शुभ संकल्प सांत-समाप्त हो जाता है।[5]

कश्मीर विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी प्रोफेसर डॉ॰ रमेशकुमार शर्मा ने प्रचण्डिया जी के निबंधों के विषय में लिखा है–'मैं एक रात में ही सभी निबंध पढ़ गया, अच्छे लगे, अच्छी अनुभूति सर्वदा शुभ अभिव्यक्ति में फलित होती है।'[6]

आचार्य देवेन्द्रमुनि शास्त्री ने प्रचण्डिया जी के निबंध के विषय में कहा है–'शब्दों में छुपे अर्थ को जब डॉ॰ प्रचाण्डिया जाग्रत-उद्घाटित करते है तो ऐसा लगता है कि शब्दों में मर्म को सहज भाषा में जनग्राहय बना देने की उनकी अपनी ही अद्भुत कला है।'[7]

डॉ॰ प्रचण्डिया जी को अपनी रचना लिखने की प्रेरणा विविध स्रोतों से प्राप्त हुई है, यह विविधता उनके रचना-संसार में भी देखने को मिलती है। प्रचण्डिया जी को निबंध लिखने की प्रेरणा पद्मश्री यशपाल जैन और उपाध्याय अमरमुनि से प्राप्त हुई। यही विविधता विधाओं के रुप में रूपायित हुई। धीरे-धीरे उनकी अभिव्यक्ति का दायरा बढ़ने लगा निबंध, ललित निबंध, वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, उपदेशात्मक निबंधों की रचना की। उनके प्रमुख निबंध-संग्रह इस प्रकार से हैं–

1. अनुभूति और अभिव्यक्ति (2001)
2. शब्द बोलते हैं जब अपना अर्थ (1992)
3. चिंतन का चंदन (2003)
4. शोधश्री (2006)

अपने निबंधों में प्रचण्डिया जी ने जीवन के विविधि पक्षों का वर्णन बड़ी सजीवता के साथ किया है। उनके निबंधों को निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **विचारात्मक निबंध**

विचारात्मक निबंधों की रचना करके प्रचण्डिया जी ने बुद्धितत्व को उजागर किया है। विचारात्मक निबंधों में किसी विचारधारा, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक समस्या आदि का विश्लेषण/स्पष्टीकरण होता है। प्रचण्डिया जी के निबंधों में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, समानता, स्वदेशी, राष्ट्रीय चेतना, समाज चेतना, देव और दानव, सुखी जीवन का आधार, सुखी जीवन कैसे जिएँ आदि पक्षों को ध्यान में रखा गया है। उदाहरणस्वरूप–'किसी (आगत) जिज्ञासु ने महात्मा गांधी से पूछा? बापू! हम चाहते हैं कि हमारे परिवार में सुख और शांति का संचार हो उठे। कृपया कोई उपाय बतलाइए। गांधी जी चरखा कात रहे थे, चरखे की ओर इंगित (इशारा) करते हुए कहा, जीवन में श्रम के संस्कार जगाइए। 'स्वावलंबी सदा सुखी रहता है।'[8]

प्रचण्डिया जी का मानना है कि जब हम स्वयं उठेंगे, तभी हम गिरते हुओं को उठाएँगे, मनुष्य के अंदर ये संस्कार स्वयं ही जाग्रत हो जाएँगे। कहा भी गया है–'सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से उसका असर राष्ट्र पर भी हो'[9] मनुष्य को सदैव अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ना चाहिए। निराश और निराश्रित होकर पुरुषार्थ से पीछे हट जाने पर जीवन प्रमाद और मूर्च्छा से सम्पृक्त हो जाता है। ऐसे लोगों को प्रचण्डिया जी प्रेरित करते हुए कहते हैं–उठिए! अपनी हिम्मत, अपने मनोबल को जाग्रत कीजिए, उसके विषय में उन्होंने एक प्रसिद्ध लोकोक्ति का प्रयोग भी किया है–'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'[10]

जीवन में इच्छाओं को निरोधने तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना जाग्रत करने के लिए, कितनी वीरांगनाओं तथा वीरों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, अपने देश की माटी की महक उनके रोम-रोम में समाई हुई है। तभी तो उनके स्वर से इकबाल की प्रसिद्ध पंक्तियाँ फूट पड़ती हैं–'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा, हम बुलबुले हैं इसके....'।[11]

2. **वर्णनात्मक निंबध**

प्रचण्डिया जी ने विचार, अनुभूति, कल्पना जीवन, धर्म, आत्मा धर्म के विविध रूप, पदयात्रा, व्रत आदि विषयों को वर्णनात्मक निबंधों के अंतर्गत समाहित किया है। धर्म के विषय में प्रचण्डिया जी लिखते हैं–धर्म का कोई भी रूप-रंग नहीं होता है। ये तो आस्था-प्रधान मान्यताएँ हैं। आचार्यों द्वारा कहा भी गया है–'चारित खलु धम्मो' अर्थात् चरित्र ही धर्म है।'[12] धर्म के रूप अलग-अलग परमात्मा एक ही है, जिसने एक को जान लिया, उसने सभी को जान लिया, (एंग जाणइ सत्व जाण इ)

प्रचण्डिया जी के निबंधों में कहा गया है कि मर्यादित जीवन जीना एक कला है, 'पदयात्रा' भी चलने की कला का परिणाम है। लेकिन अब यह शब्द 'भ्रमण' संतों से जुड़ गया है। पदयात्रा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अर्थात् अनेकविधि से उपयोगी है। इसी प्रकार दान का वर्णन भी किया गया है। आहारदान, औषधिदान, ज्ञानदान, अभयदान, इन दोनों में अभयदान को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उनका मानना है कि जिस समाज में दान की प्रथा और प्रवृत्ति जीवित है, वहाँ पारस्परिक समता और सौहार्द का वातावरण चिरंजीवी रहता है। दान-संबंधी निम्न उदाहरण इस प्रकार है–

पंछी के पानी पिये सरिता घटे ना नीर।
दान किये धन ना घटे, जो सहाय रघुवीर।[13]

प्रचण्डिया जी ज्ञान को मानवीय विकास का द्वार मानते हुए कहते हैं कि मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार तत्त्व वस्तुतः 'ज्ञान' है। 'प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पशु और मनुष्य में जो अंतर स्पष्ट किया है, उसका आधार ज्ञान ही है। संसारी मनुष्य जन्मतः कर्म करता है, खाना उसका प्रारंभिक कर्म है और कर्म से निष्कर्म होना अंतिक कर्म है।'[14]

उपदेशात्मक एवं नीतिपरक निबंध

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचण्डिया जी ने हिंदूधर्म, जैनधर्म आदि प्रमुख धर्मों को ध्यान में रखते हुए उपदेशात्मक एवं नीतिपरक निबंधों की रचना की है। उनके निबंध मनुष्य को सद्गति की ओर प्रेरित करते हुए संसार के छल-कपट, लोभ, मोह, माया, सांसारिक आकर्षण पंचविकारों तथा

सप्तव्यसनों से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हैं। वैदिक धर्म, बौद्धधर्म, जैनधर्म, इस्लाम तथा संसार के तमाम धार्मिक मान्यताओं की अनुपालना इन निबंधों में की है।

प्रचण्डिया जी ने गीता के पष्ठ अध्याय के बत्तीसवें श्लोक का उदाहरण देते हुए कहा है 'जो सभी मनुष्य जीवों को अपने समान समझता है, दूसरों के सुख, दु:ख, में स्वयं के सुख-दु:ख की अनभुति करता है, वही परम योगी है। उन्होंने अपने निबंधों में कहा है कि मनुष्य का आहार सात्त्विक होना चाहिए, प्राकृतिक होना चाहिए, संसार के प्रत्येक धर्मग्रंथ में शाकाहार की प्रशांसा की गई है और मांसाहार की निंदा की गई है। सभी धर्मों के पवित्र ग्रंथों से उदाहरण लेते हुए मांसाहार की निंदा की है।

नानक के अनुसार

मांस-मांस सब एक है, मुरगी, हिरन, गाय।
आँख देख नर खात है, वे नर नरक हि जाय।[15]

शाकाहारी प्राणियों में पशु भी है, पक्षी भी है, पर मनुष्य श्रेष्ठ शाकाहारी है। कविवर पंत ने भी कहा–

सुंदर है विहग, सुंदर सुमन।
मानव तुम सबसे सुंदरतम्।[16]

उपदेशात्मक निबंध में प्रचण्डिया जी स्वीकार किया है कि वे सत्य को ईश्वर के रूप में देखते हैं। तीन बंदरों के ब्याज से वे प्राय: कहा करते थे–बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत कहो।'[17]

'सांच बराबर तप नहीं' निबंध में उन्होंने बताया है कि आत्मा का स्वाभाव वस्तुत: सत्य धर्म है। सामान्यत: हम सत्य वचन को ही सत्य धर्म मान लेते हैं। ऐसा मान लेना वस्तुत: सत्य नहीं है। वचन और वाणी पुद्गल पर्यायजन्य है, जबकि सत्य है आत्मा का स्वाभाव। स्वभाव आत्मा में रहता है, जबकि वाणी शरीर में समाई रहती है। वाणी को आत्म सत्य से अनुप्राणित तो किया जा सकता है फिर भी वह आत्मा का सत्य नहीं हो सकता है। वाणी का सत्य अभिव्यक्त होता है, जबकि आत्मिक सत्य सर्वथा है, अनुभूति का विषय।[18]

सुखी जीवन का आधार

व्यसन मुक्ति। व्यसन मुक्ति का आधार है श्रम। सम्यक श्रमसाधना से जीवन में सद्संस्कारों का प्रवर्तन होता है। इससे जीवन में स्वावलंबन का संचार होता है। सप्त व्यसनों से दूर रहना चाहिए अर्थात् जुआ, मांसाहार, मद्यपान, शिकार, चोरी, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन से ग्रसित होकर प्राणी लोक में पतित होता है, मरणांत उसे नरक में ले जाया जाता है। संसार के अन्य जितनें भी व्यसन हैं वे सभी इन व्यसनों में अंतर्भुक्त हो जाते हैं।'[19]

आत्मपरक एवं भावपरक निबंध

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचण्डिया जी ने जैन आचार्यों से संबंधित आत्मपरक एवं भावपरक निबंध लिखे, आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न विषयों पर उनके द्वारा दिए गए मत-मतांतरों को अपने निबंधों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। करकंडचरिउ का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन करते हुए प्रचण्डिया जी ने लिखा है 'अभिव्यक्ति आदमी की स्वंयभू शक्ति है'।[20] जिसका विकास अभ्यास

द्वारा संपन्न होता है। अभ्यास के अभाव में विद्या भी विष हो जाती है–'अनभ्यासे विष विद्या'। कवि के द्वारा जो कार्य संपन्न किया जाता है, वस्तुतः वही काव्य है। स्वयंभू जो अपनी अनुभूति के लिए किसी का भी ऋणी न हो।

प्रचण्डिया जी ने कबीर, जायसी, तुलसी और सूरदास को लेकर भी आत्मपरक निबंधों की रचना की है। भक्तिकाल स्वर्णयुग का प्रवर्तन करता है। ये कवि इस स्वर्णिम काव्य-संपदा के उन्नायक कविर्मनीषी हैं। जगत में कुछ ऐसी विरल विभूतियाँ जन्म लेती हैं, जो अपने नक्षत्रत्व और कृतित्व में मात्र वंशवंद्य ही नहीं, अपितु लोकवंद्य होकर समाज में समादृत होती हैं। श्रीमद्भागवत्कार ने 'ऋषभदेव' को अवतारी पुरुष की संज्ञा दी है और ईश्वर का आठवाँ अवतार के रूप में उल्लिखित किया है।[21]

प्रचण्डिया जी के निबंधों का भावपक्ष

प्रचण्डिया जी के निबंधों का भावपक्ष उतना ही समृद्ध है, जितना की कलापक्ष। भाव अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। प्रचण्डिया जी के निबंधों में व्यक्तित्व की छाप, मस्तिष्क ही नहीं, हृदय को गुदगुदाने की क्षमता, प्रभान्विति और विषयानुकूलता है। उनके निबंधों में सभी भव्य भावनाओं का सामंजस्य है। शब्द अर्थशक्ति को विराट बनाता है। भाव हर व्यक्ति के हृदय में जाग्रत होते है, परंतु भाव अभिव्यक्ति की कला हर किसी को प्राप्त नहीं है। जिस भाग्यशाली को प्रकृति का यह वरदान प्राप्त होता है, उसे अन्य वरदान की अपेक्षा नहीं रहती।[22]

डॉ॰ महेन्द्रसागर प्रचण्डिया को सहज रूप में अभिव्यक्ति की चामत्कारिक कुशलता प्राप्त है, यही अभिव्यक्ति उनके निबंधों में विविध रुपों में दिखाई देती है। उनके निबंधों के भाव तेजस्विता को भरने वाले हैं। भावों में चिंतन की गंभीरता है। चिंतन को उपयुक्त शब्द-सौंदर्य प्रदान करने की आकर्षक कला है। शब्दों के मर्म को रहस्य भाषा में जनग्राह्य बना देने की उनकी अपनी कला है। भाव एवं विचार निबंध की आत्मा होती है। भाषा शरीर और शैली प्राण। निबंधों में कम शब्दों में अधिकाधिक भावों की अभिव्यक्त से निबंध में निखार आता है।[23]

प्रचण्डिया जी के निबंधों की शिल्प-योजना

प्रचण्डिया जी के निबंधों की शिल्प-योजना अपने-आपमें अद्वितीय है। यह पाठकों में प्रेरणा जाग्रत करती है। डॉ॰ प्रचण्डिया जी ने अपने निबंधों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज तथा अरबी-फारसी, भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। निबंधों की भाषा में मुहावरे, लोकोक्तियों, सूक्तियों का प्रयोग करके उसे एक विशिष्ट गति प्रदान की है। सहजता, सरलता, व्यावहारिकता, भावविषयानुरूपता, प्रवाहमयता आदि सभी गुण उनके निबंधों में देखने को मिलते हैं। निबंधों में वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, संवादात्मक उद्धरण शैली का निर्वाह बखूबी हुआ है। उनके द्वारा प्रयुक्त रूढ़ एवं पारिभाषिक शब्द नए अर्थ के साथ मुखरित होकर ऐसे लगते हैं मानो अपना शाश्वत रूप प्रकट कर रहे हैं। प्रत्येक शब्द सार्थकता, ग्राह्यता और जीवन-स्पर्शिता देनेवाला और मनुष्य की चेतना को प्रज्ञा-प्रवीणता प्रदान करता है।

निष्कर्ष

निबंध हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधाओं में से एक है। निबंध गद्य का सुंदरतम बौद्धिक विधान है। किसी विषय पर ऐसी नियमित सीमित आकार की किंतु सुगठित

गद्य-रचना जिसमें लेखक के निजी विचारों और भावों की बुद्धिप्रेरक योजना और सरस प्रभावी शैली की प्रतिष्ठा रहती है, निबंध कहलाती है। किसी भी लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व की परख के लिए निबंध विधा एक सहज स्वाभाविक कसौटी सिद्ध होती है।

प्रचण्डिया जी ने गद्य की समस्त विधाओं को समृद्धि प्रदान की है। उन्होंने इन बातों का वर्णन अपने निबंधों में किया है। प्रचण्डिया जी का मानना है कि 'मेरे निबंधों का कथ्य पाठकों में मानवीय संस्कार जगाने में अहम भूमिका का निर्वाह करेगा।'[24] उनके निबंध संग्रह विविध विचारों को मणियों की भाँति सँजोये हुए हैं।

संदर्भ

1. लेखिका, कंचन आतवानी, अनुभूति और अभिव्यक्ति का मूल्य और मूल्यांकन, पृ॰ 276
2. डॉ॰ राहुल, बीसवीं सदी हिंदी के मानक निबंध, पृ॰ 30
3. डॉ॰ बाबूराम, हिंदी निबंध का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 20
4. डॉ॰ बाबूराम, हिंदी निबंध का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 20
5. सं॰ आदित्य प्रचाण्डिया, महेन्द्रसागर प्रचाण्डिया समग्र, गद्य खंड एक, पृ॰ 22
6. वही, पृ॰ 5
7. वही
8. वही, पृ॰ 39
9. वही
10. वही
11. वही, पृ॰ 90
12. वही, पृ॰ 90
13. वही
14. वही, पृ॰ 92
15. वही, पृ॰ 509
16. वही, पृ॰ 219
17. वही, पृ॰ 26
18. वही, पृ॰ 57
19. वही, पृ॰ 208
20. वही, पृ॰ 509
21. वही, पृ॰ 211
22. वही, पृ॰ 423
23. लेखिका, कंचन आतवानी, अनुभूति और अभिव्यक्ति का मूल्य और मूल्यांकन, पृ॰ 63
24. वही, पृ॰ 86

हरियाणा का ऐतिहासिक नगर फिरोजा–ए–हिसार का कलात्मक अध्ययन

डॉ॰ सुषमा सिंह
शोध निदेशिका, ललित कला विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक
ज्योति रानी
शोध छात्रा, ललित कला विभाग
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

हरियाणा का अस्तित्व प्राचीनकाल से ही ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में मान्य रहा है। यह राज्य आदिकाल से ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की धुरी रहा है। प्राचीन काल से ही हरियाणा में कलाओं ने बहुत उन्नति की है। वास्तुकाल की दृष्टि से भी हरियाणा में बहुत उन्नति हुई। प्राचीनकाल से ही लोग वास्तुकला का प्रयोग कर रहे हैं। बनावली (हिसार) में जो खुदाई हुई है, वहाँ वास्तुकला के सबूत मिले हैं। महाभारत, बौद्धग्रंथ तथा अन्य साहित्यिक ग्रंथ इस विषय में कुछ अच्छी जानकारी देते हैं। हरियाणा के विषय में वैदिक साहित्य में अनेक उल्लेख हैं। इस प्रदेश में की गई खुदाइयों से यह ज्ञात होता है कि सिंधु सभ्यता और मोहनजोदड़ो का विकास यहीं पर हुआ था। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार ऐतिहासिक कालीन हड़प्पा परवर्ती हड़प्पा आदि अनेक संस्कृतियों के प्रमाण हरियाणा के बनावली, सीसवाल, कुणाल, मिर्जापुर, दौलतपुर और भगवानपुरा आदि स्थानों के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं।

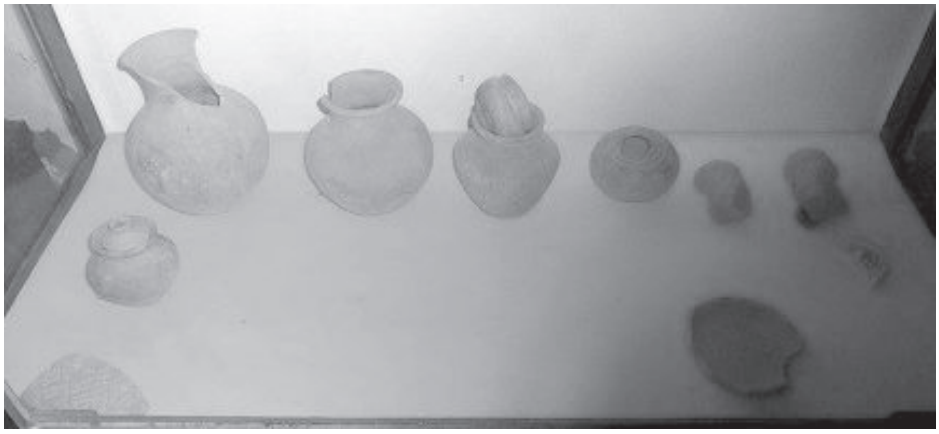

महाभारत काल से शताब्दी पूर्व आर्यवंशी कुरुओं ने यहीं पर कृषियुग का आरंभ किया।

 ISSN 0975-735X

बौद्धकाल के प्रारंभ में भी इस प्रदेश में बहुत खोज़े हुईं, जिनकी वजह से इतिहास का अंधकारमय अध्याय प्रकाश में आया। बौद्धकाल के प्रारंभ में सौहल महाजनपदों की चर्चा विस्तारपूर्वक हुई है। हरियाणा में दो प्रकार की सामग्री मिली है।

चलसामग्री तथा अचलसामग्री

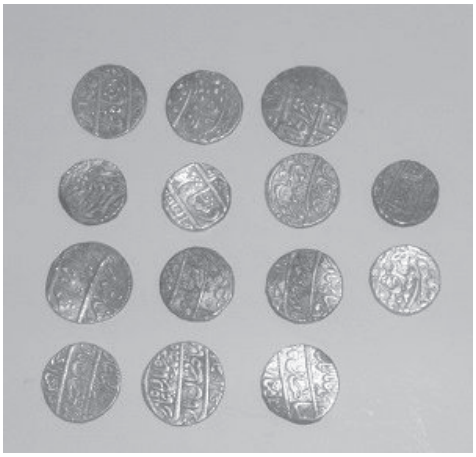

चलसामग्री में ज़िला लेख, सिक्के, औजार हैं, जो अस्थायी और चलायमान है, दूसरे प्रकार की सामग्री स्थिर चीजें जैसे इमारतें, बाग-बगीचे आदि। अब तक पुरातात्त्विक अन्वेषणों और खुदाइयों से जो पुरातात्त्विक सामग्री प्राप्त हुई हैं, उसे पाँच वर्गों में बाँटा गया है–1. अभिलेख, 2. सिक्के, 3. मुद्रक, 4. मूर्तियाँ, 5. स्मारक आदि

हरियाणा प्रदेश में बहुत सी जगहों पर पत्थर की शिलाओं, ताम्रपत्रों और लाटों आदि पर खुदे हुए लेख प्राप्त हुए हैं। ये लेख मुख्यत: पाँच प्रकार के हैं। प्रथम धार्मिक लेख, दूसरे प्रशंसात्मक अभिलेख तीसरे स्मारक लेख, चौथे आज्ञापात्र तथा पाँचवें दानपात्र हैं। अभिलेखों की तरह सिक्के भी बहुत काम की चीज हैं। हरियाणा के विभिन्न जिलों से हमें बहुत से सिक्के प्राप्त हुए हैं। जिनसे यहाँ के इतिहास के निर्माण में बहुत सहायता मिलती है। 200 ई॰ पूर्व से 300 ई॰ पूर्व तक का इस प्रदेश का इतिहास तो काफी हद तक इन सिक्कों के आधार पर टिका है।

हरियाणा के विभिन्न स्थानों से मिले सिक्कों को निम्न पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है। प्रथम आहत मुद्रण, जो कि सुध नौरंगावाद, आग्रोहा आदि स्थानों से मिले हैं। दूसरे विदेशियों के सिक्के जो दूसरी शताब्दी ईसापूर्व से पहले के हैं। तीसरे गणराज्यों के सिक्के जो दूसरी शताब्दी ईसापूर्व से चौथी शताब्दी तक के हैं। चौथे गुप्त सम्राटों के सिक्के हैं, जो मीतायल (भिवानी) से प्राप्त हुए हैं। पाँचवें प्रतिहार तथा राजपूत शासकों के सिक्के हैं। मुद्राओं की तरह मुद्रकों का भी इतिहास के साधन के रूप में काफी महत्त्व है। हरियाणा के अग्रोहा नौरगांबाद खोकराकोट, (रोहतक), दौलतपुर (कुरुक्षेत्र) आदि स्थानों से बहुत सारी मुद्रका प्राप्त हुई है।

मूर्तियाँ भी इतिहास के निर्माण में काफी योगदान देती हैं। हरियाणा से प्राप्त मूर्तियाँ अधिकतर धार्मिक संप्रदायों–वैष्णव, बौद्ध, जैन से संबंधित हैं। कुछ मूर्तियाँ प्रस्तर को बनी हैं, जो मिट्टी को पकाकर बनाई गई हैं। कुछ धार्मिक मूर्तियाँ भी पक्की मिट्टी की मिली है। प्रथम मुगलकालीन मूर्तियाँ हैं। दूसरी कुषाणकालीन मूर्तियाँ हैं इसका प्रधानकेंद्र रोहतक के आस-पास है। तीसरे बौद्ध एवं जैन मूर्तियाँ हैं। चौथे-पूर्व मध्यकाल की मूर्तियाँ हैं। ये उत्तरी हरियाणा से प्राप्त हुई हैं और अधिकांश प्रतिहार-तोमर युगीन हैं। ये वे चीजें हैं जैसे समाधी, भवन, दुर्गा मंदिर आदि है जिन्हें स्थानांतरित नहीं किया जा सकता। बहुत से स्मारकों का आक्रमणकारियों द्वारा विध्वंस

हो चुका है।

हरियाणा की हवेलियाँ भी वस्तुशिल्प की सुंदरता और संचना के लिए जानी जाती हैं। ये हवेलियाँ हरियाणा की गलियों को सुंदरता प्रदान करती हैं। इन भवनों में अनेक चबूतरे होते हैं। उन पर उकेरी हुई कालाकृतियाँ इस क्षेत्र की समृद्ध विरासत की याद दिलाती हैं। हरियाणा में बहुत से प्राचीन संग्रहालय तथा कुछ नए बनाए जा रहे। झज्जर का गुरुकुल, हिसार की जहाज कोठी, जींद का संग्रहालय तथा राखी गढ़ी में बनाया जा रहा संग्रहालय हरियाणा की विरासत और संस्कृति में चार चाँद लगा रहे हैं। ये संग्रहालय हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को सहेजे हुए भौगोलिक, ऐतिहासिक हैं। इस प्रकार हरियाणा सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध राज्य है।

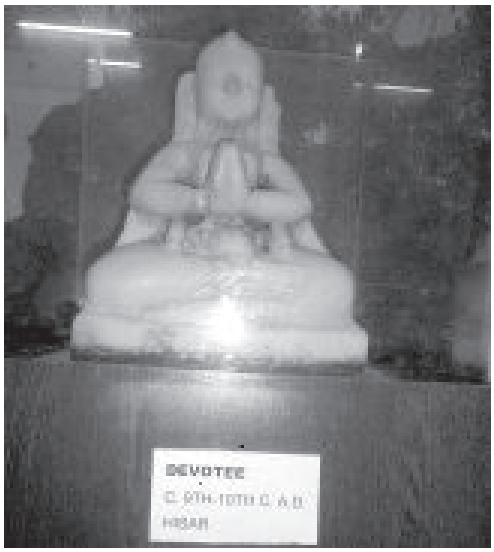

इस प्रकार हिसार का अस्तित्व प्राचीनकाल से ही ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में मान्य रहा है। हिसार भारत के राष्ट्रीय राजमार्ग नं॰ 10 पर ही दिल्ली से 154 कि॰मी॰ की दूरी पर स्थित है। हिसार का नाम आज देश के प्रमुख शहरों में शुमार हो चुका है। इस नगर की जलवायु शुष्क है और यहाँ का तापमान गर्मियों में 48 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। हिसार नगर 'स्टील सिटी' के नाम से विख्यात है। शीघ्र ही मैगनेट सिटी के रूप में उभरकर सामने आएगा। यहाँ पर स्थापित पशुपालन के विविध संस्थानों के कारण यह नगर आज भी विश्वभर में पशुधन का सबसे बड़ा केंद्र माना जाता है।

हिसार ने प्राचीनकाल से ही शौर्य, राष्ट्रीय प्रेम, बलिदान व देश पर मर मिटने, अपने पराक्रम और शौर्य के अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। प्राचीनकाल से हिसार में कलाओं ने बहुत उन्नति की है। हिसार नगर की स्थापना फिरोजशाह तुगलक ने सन् 1354 में की। उसने इस नए नगर हिसार-ए-फिरोजा को महलों, मस्जिदों, बगीचों, नहरों और अन्य इमारतों से सजाया था। 'हिसार' का अर्थ किला या घेरा है। सुल्तान फिरोजशाह ने यहाँ जिस किले का निर्माण कार्य शुरू करवाया, उसका नाम 'हिसार-ए-फिरोजा' पड़ा यानि फिरोज का हिसार। अब केवल हिसार रह

 ISSN 0975-735X

गया है। किले का निर्माण वास्तव में सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने अपनी देख-रेख में करवाया था। किले में बना गुजरी महल सुंदरतम इमारत है। किले के अंदर के कई अन्य भवनों का निर्माण भी करवाया था। किले का निर्माण चूना और ईंटों से किया गया था। किले के चार दरवाजे थे, दिल्ली गेट, मोरी गेट, नागोरी गेट और तलाकी गेट। महल को सुंदर नक्काशीदार लाल बलुआ पत्थर से सुसज्जित किया गया था। महल के निर्माण में अधिकतर साम्रगी हिंदू एवं जैन मंदिरों के अवशेषों की प्रयोग की गई थी। किंवंदती के अनुसार सुल्तान फिरोजशाह ने हिसार-ए-फिरोजा अपनी महबूबा गुजरी के लिए बनवाया था।

किले के अंदर एक मंदिर है, जिसे लाट की मस्जिद के नाम से जाना जाता है। फिरोजशाह की लाट किले की शान है। यह अशोक की लाट बताई जाती है। मस्जिद के साथ दिवान-ए-आम है। किले के पश्चिमी किनारे पर बारादरी है। इसके 12 द्वार और एक से दो मीटर की चौड़ी दीवारें इस भवन को ठंडा रखती हैं।

किले का दिवान-ए-आम, जहाँ सुल्तान फिरोजशाह खुली कचहरी लगाता था, बड़ा भव्य है। इसका हाल 80 फुट लंबा, 21 फुट चौड़ा है। इसके बीच 40 स्तंभ हिंदू मंदिरों के हैं। बादशाह का आसन ऊँचा बना है। आसन जिसे तख्त भी कहा जाता है,

हिसार जिले में अंसरक्षित मकबरे हैं। 1. यह असंरक्षित मकबरा गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय में स्थित बड़ा मंडल है, जो गुंबद से ढका है। इसका निर्माण ईंटों द्वारा किया गया है। यह हिसार के अन्य मकबरों से भिन्न दिखता है। शिलालेख की सुंदर लिखावट नींव के पत्थरों की लिखावट से भिन्न है और तुगलक काल की प्रतीत होती है।

2. यह असंरक्षित मकबरा गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय में स्थित चार मकबरों के समूह में से एक है जो की महल के पूर्व में स्थित हैं। यह इमारत एक वर्गाकार मंडल है। 3. यह असंरक्षित मकबरा भी गुरु जंभेश्वर विश्वविद्यालय में स्थित चार मकबरों के समूह में से एक है। हिसार में यह अकेली इमारत है, जिसमें प्रार्थना हाल अलग है। मकबरे के अंदर पत्थरों से बनी कब्र है। यह पूरा ढाँचा छोटी ईंटों से बना है, जिसे प्लस्तर द्वारा ढका गया है। गुंबद तथा प्रार्थना दीवार उसी समय के बने हुए प्रतीत होते हैं, तथा मुगलकाल के हैं। इस इमारत को आज भी पवित्र स्थल माना जाता है।

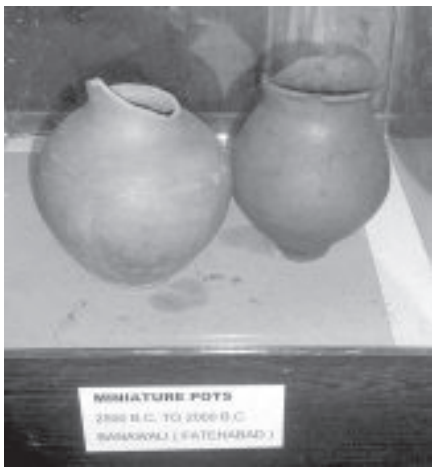

हिसार जिले में पुरातात्त्विक संग्रहालय स्थापित है, जो जहाज कोठी के नाम से जाना है। आयरलैंड के एक निवासी सर जार्ज थाम्स, जिसने सिरसा से रोहतक तक के क्षेत्र पर अपना शासन स्थापित किया, ने 1796 में जहाज कोठी का निर्माण अपनी रिहायश के लिए करवाया था। उन्होंने बहुत ही सुंदर वास्तुकला का प्रमाण दिया। जहाज कोठी का नक्शा समुद्री जहाज की तरह प्रतीत होता है। इस कोठी के चारों तरफ पानी भरा हुआ था। यह देखने में बहुत सुंदर प्रतीत होती है। लेकिन धीरे-धीरे

इसका स्वरूप बिगड़ता गया और नाम भी। समय गुजरने के साथ-साथ जार्ज कोठी को जहाज कोठी के नाम से जाना जाने लगा।

अब इस ऐतिहासिक स्मारक में क्षेत्रीय पुरातात्त्विक संग्रहालय स्थापित है। इस संग्रहालय में हमारी प्राचीन सभ्यता के बहुत से अवशेष मिलते हैं। इस संग्रहालय में हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की खुदाई से निकला सामान रखा हुआ है तथा कई शताब्दी पुराने शिलालेख रखे हैं, जो अलग-अलग जगह से खुदाई के दौरान मिले हैं। जहाज कोठी में अलग-अलग समय की मुद्राएँ, मुगलकाल की, कुषाणकाल की तथा ब्रिटिशकाल की मुद्राएँ, मोहनजोदड़ो से निकली सामग्री तथा अलग-अलग जगह से निकली मूर्तियाँ जैसे कि महावीर जैन की मूर्तियाँ, त्रिमूर्ति, मुगलकाल की मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

जहाज कोठी में रखे मुगलकालीन सिक्के, कुषाणकालीन सिक्के तथा ब्रिटिश समय के सिक्के हमें हमारी प्राचीन सभ्यता से अवगत कराते हैं। जहाज कोठी ऐतिहासिक व प्राचीन सभ्यता का अद्‌भुत नमूना है।

राखी गढ़ी में बनाया जा रहा संग्रहालय हरियाणा की विरासत और संस्कृति में चार चाँद लगा रहे हैं। ये संग्रहालय हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता को सहेजे हुए भौगोलिक, ऐतिहासिक हैं। हिसार जिले के अध्ययन से प्रिहड़प्पन सेटलमैंट और प्रागैतिहासिक काल के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। अग्रोहा, राखीगढ़ी, बनावली, कुनाल की खुदाई से पहली बार मानव-सभ्यता के अवशेष मिले हैं, इस प्रकार हिसार का अस्तित्व प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में मान्य रहा है।

संदर्भ

1. Acharya, Madhava (2008), Protected sites and Monuments in Haryana. Department of Archacology and Museums, Haryana.
2. Acharya, Madhava (2008) , Kunal Excavations, Department of Archaeology and Museums, Haryana.
3. Bahla, L.C and S.C. Gupta, 'Couns of India' Kapoori Devi Charitable Trust (Regd.)
4. सैनी, जगदीश 2013 अंजाम-ए-मौहब्बत, राधे कृष्णा आफसेट प्रेस, हिसार।
5. Shrivastava, R.K (2013) , हिसार-ए-फिरोजा, जिला प्रशासन, हिसार एवं क्षेत्रीय अभिलेखागार, हिसार मंडल, हिसार।
6. Vardhan, Vijai, Rakhighari Rediscovered A Publication of Department of Archaeology and Museums Government of Haryana.
7. Vardhan Vijai, The Magnificient Monuments of Narnaul, A Publication of Department of Archaeology and Museums.
8. सैनी, जगदीश, इतिहास के झरोखे में, राधे कृष्णा आफसेट प्रेस, हिसार।
9. भीमादेवी मंदिर, पिंजौर एक परिचय, हरकल्याण प्रिंटिंग प्रैस, पंचकुला।
10. Haryana Through the ages Directorate of Archeology and Museums Haryana.

पत्नी श्री आशीष मेहता
म॰ नं॰ 17, 8 **मारला कालोनी, पटेलनगर**
हिसार 125002 **(हरियाणा)**
09466826608

ISSN 0975-735X

सिटी पैलेस म्यूजियम उदयपुर के दरबारी चित्रकारों एवं चित्रों का व्याख्यात्मक वर्णन

डॉ० मनीषकुमार जायसवाल
प्रवक्ता चित्रकला
एस०डी० इंटर कॉलेज, सहारनपुर

सिटी पैलेस म्यूजियम उदयपुर में शस्त्रों एवं अन्य आलंकारिक कलाओं एवं मेवाड़ के दरबारी चित्रों का अद्वितीय संग्रह है। यहाँ के चित्र उदयपुर के कलाकारों द्वारा मेवाड़ के राजाओं के लिए 18वीं शाताब्दी से लगातार परंपरागत रूप से बनाए गए हैं। इन चित्रों के सीधे लंबवत् आकार आकर्षक एवं प्रभावशली हैं। इन चित्रों में दरबार के चित्र, जलूस के दृश्य, त्योहार के दृश्य, चित्रित किए गए हैं। इस म्यूजियम में इन चित्रों के अतिरिक्त दरबारी व्यक्ति-चित्र तथा घटनाओं से संबंधित चित्र प्रदर्शित हैं। दरबारी दृश्य एवं शिकार के दृश्य, सिटी पैलेस एवं जनाना महल में संगृहीत किए गए हैं। यहाँ पर संगृहीत व्यक्ति-चित्र परंपरागत मुगल शैली के व्यक्ति-चित्र से छोटे हैं। यहाँ संगृहीत भीड़-भाड़ वाले दृश्य, जलूस, त्योहार, शिकार से कम प्रभावशली हैं, क्योंकि इन चित्रों का आकार बड़ा है। इन चित्रों के चित्रकारों ने कल्पना का अत्यधिक सहारा लिया है। यहाँ पर अत्यधिक भीड़-भाड़ वाले दरबारी चित्र बड़े आकार में संगृहीत हैं, जैसे जलूस के दृश्य, त्योहार के दृश्य, पूजा के दृश्य, यहाँ पर जिन चित्रों का संकलन है, उसमें प्रत्येक चित्रों में चित्रकारों के नाम नहीं लिखे हुए हैं। परंतु कुछ ऐसे चित्र हैं, जिन पर चित्रकारों ने उन चित्रों में अंकित सभी आकृतियों के नामों का उल्लेख चित्र के पीछे किया है। यहाँ संगृहीत चित्र संग्रामसिंह द्वितीय से शुरू होते हैं, क्योंकि इनके समय से ही दरबारी लोकजीवन का चित्रांकन बड़े आकार के चित्रों में किया गया है। इन संयोजनों में भवन की वास्तुकला पृष्ठभूमि को समान रूप से महत्त्व दिया गया। इस समय के चित्रों में चित्रकारों ने नाम का उल्लेख संभवतया इसलिए नहीं किया है, क्योंकि ये चित्र कई चित्रकारों के सहयोग से निर्मित हुए हैं।[1] महाराणा जगतसिंह, महाराणा प्रतापसिंह, महाराणा राजसिंह के समय के चित्रों पर चित्रकारों के नाम नहीं लिखे मिलते हैं। महाराणा अरिसिंह के समय के चित्रों में कलाकारों के नाम प्रदर्शित हैं। ये कलाकार अधिकतर चित्तौड़ के हैं, में 'प्यारा और नाग' ये दोनों भगवानदास के पुत्र थे। स्याजी और सुख्खा, भीमा और केशुराम चित्रकार आपस में सहयोगी चित्रकार थे। महाराणा अरिसिंह के शासनकाल में बहुत अच्छे कलाकार थे, परंतु उन्होंने राज्य की अर्थ-व्यवस्था नष्ट होने के कारण दरबार छोड़ दिया था, जिसमें बख्ता नामक चित्रकार ने देवगढ़ के उत्तरी ठिकाना में अपना नाम उन्नत किया। भीमा के समय का एक चित्रकार, जो जलूस का चित्र बनाता था 1802 में उसके द्वारा बनाया गया

जलूस का चित्र म्यूजियम में संगृहीत है। महाराणा भीमसिंह के समय में भीड़-भाड़ वाले दृश्यों को चित्रित किया गया, जिसमें 'गणगौर उत्सव' रानियों के साथ, 'होली', 'दीपावली' आदि। महाराणा जवानसिंह के समय में दरबारी चित्र तथा शिकार के चित्र अधिक बने। इस समय का प्रसिद्ध चित्रकार 'तारा' था, जिसने महाराणा स्वरूपसिंह के समय में भी काम किया। इसे शही होली, घुड़सवार युद्ध-चित्रों में महारत हासिल थी। इस समय (1850) तारा और उसके पुत्र, उसके शिष्य उदयपुर के चित्रकारों में थे। जिन्होंने यूरोपीय दर्शनात्मक तकनीक और फोटोग्राफी कला को प्रदर्शित किया। ये चित्र महाराणा शंभूसिंह और महाराणा सज्जनसिंह के समय के है।। उस समय के चित्रों में फोटोग्राफी प्रभाव है। शिकार चित्र महाराणा फतहसिंह का प्रथम मनोरंजक विषय था। इनके शासनकाल के प्रारंभ में 'तारा पुत्र शिवलाल' और उसके भाई मोहनलाल ने शिकार के दृश्यों को बनाया, शिवलाल ने शिकार के मारने के दृश्य को व्याख्यात्मक रूप में चित्रित किया तथा अप्राकृतिक वातावरण में कठोर लकड़ियों कलकृतियों से युक्त भू-दृश्य में चित्रित किया। महाराणा भोपालसिंह के समय के प्रधानसिंह, पन्नालाल एवं छगनलाल के चित्र सिटी पैलेस म्यूजियम उदयपुर में सुरक्षित हैं।[2]

बाद के चित्रों में फोटोग्राफी से चित्र बनाने की परंपरा पनपने लगी। इसके बाद एक बार पुनः छोटे चित्र बनाए गए, जिसमें मुख्यतः महाराणा भोपालसिंह के दरबार में 'गणगौर घाट का निरीक्षण करते हुए' सामंतों के साथ चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त महाराणा संग्रामसिंह के समय के जगन्नाथ चित्रकार और कवि, दोनों थे। इसमें चित्रकार तुकाराम, गंगाराम नारायण, नागा, अलाबगास, चित्रकार जीवा, शांभू रघुनाथ, श्री बीका, शहजी, भोपा, जुगरसी भीमा, मंसाराम प्रेम जी, कवला प्रथम, बख्ता, चोखा कँवला बैजनाथ, घासी हरिराम, कुंदनलाल, चित्रकार पन्नालाल मेवाड़। चित्रकार पन्नालाल जी, गौण चित्रकार छगनलाल जी गौण चित्रकार नंदलाल जी कलाविद् गोवर्धन जोशाी का नाम उल्लेखनीय है। इन चित्रकारों को महाराणाओं ने संरक्षण प्रदान करके अपनी कला-अभिरुचि का परिचय दिया। इनमें कुंदनलाल प्रथम चित्रकार थे, जिन्हें महाराणा फतहसिंह जी ने जे॰जे॰ स्कूल ऑफ आर्ट से कला की शिक्षा दिलाई तथा तीन वर्ष के लिए यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन फाइन आर्ट्स स्कूल में अध्ययन के लिए भेजा।[3] इसके अतिरिक्त मेवाड़ के राजाओं के ऐतिहासिक क्रम के साथ-साथ उनके राजाश्रय के चित्रकारों का भी एक उल्लेख मिलता है, जिनके चित्र सिटी पैलेस म्यूजियम में संगृहीत हैं। संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है–

चित्रकार श्रंगधर 7वीं शाताब्दी में महत्त्वपूर्ण चित्रकार थे। प्रसिद्ध इतिहासकार 'लामातारा नाथ' ने इन्हें मध्य प्रदेशा के राजा शिल के शासन में होना सिद्ध किया है।[4]

आलेखकार कमलचंद-यह गुहिल महाराणा तेजसिंह के समय में पंडित रामचंद्र के शिष्य थे तथा आहरण में चित्रित 1260 ई॰ के श्रावक प्रतिक्रमण 'सुत्त चुर्णो' के आलेख्यकार थे, का उल्लेख मिलता है।[5]

आचार्य मंडल–यह महाराणा कुंभाकालीन प्रमुख शिल्पी थे। इनका मेवाड़ के समस्त सूत्रधार शिल्पियों में महत्त्वपूर्ण स्थान था।[6]

पंडित भीखमचंद–ये महाराणा कुंभाकालीन 1435 ई॰ के उल्लेखनीय चित्रकार थे। राशिकाष्टक नामक सचित्र ग्रंथ की रचना थी।

कीरतदास–इन्होंने गीतगोविंद सार, जो जाथन में निर्मित हुआ, उसमें उनका उल्लेख किया।

नाना मीठाराम–इनका उल्लेख भागवत पुराण में मिलता है। इनके चित्र बहुत प्रसिद्ध हुए। भारतीय लघु चित्रों के अतिरिक्त विशव चित्रकला जगत् में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।[7]

साहीबदीन–महाराणा जगतसिंह प्रथम के काल के प्रसिद्ध चित्रकार थे। इन्होंने रागमाला, गीतगोविंद, रसिकप्रिया, भागवत पुराण एवं रामायण के चित्रों की रचना मेवाड़ शौली में की, जिसका उल्लेख 'मारूसंग' के चित्र पर स्पष्ट है।[8]

पंडित जगन्नाथ–यह महाराणा संग्रामसिंह के शसनकाल के महत्त्वपूर्ण कवि और चित्रकार थे। इन्होंने बिहारी सतसई, गीतगोविंद के चित्रों की रचना की तथा अंतिम पृष्ठ पर इनका नाम भी अंकित है।[9]

उपर्युक्त चित्रकारों के मेवाड़ शौली में चित्र प्राप्त होते हैं, परंतु सिटी पैलेस म्यूजियम उदयपुर में जो चित्र बड़े आकार के हैं, उन चित्रों को बनाने वाले कुछ विशिष्ट चित्रकारों के नाम निम्नवत् हैं–

अलाबगास पुत्र प्यारेलाल अम्बा, बख्ता, भीमा छगनलाल चोख, दयाल पुत्र चुतारा घासी, जीवा, केशुराम लीलाधर, मोहनलाल, नाथू, पन्नालाल, प्यारा, नागा पुत्र भगवान, रघुनाथ पुत्र छगनलाल, रघुनाथ पुत्र मलूकचंद शहजी शम्भू, शिव पुत्र नाग शिव पुत्र पीठा, शिवलाल, सुखा स्याजी, तारा आदि।

सिटी पैलेस म्यूजियम में संगृहीत कुछ विशिष्ट चित्र हैं। उनका संक्षिप्त वर्णन निम्न है–

1. महाराणा संग्रामसिंह जेठी पहलवानों को सिटी पैलेस से देखते हुए।
2. महाराणा संग्रामसिंह गणगौर (नौका जलूस में)।[10]
3. मोर चौक पर महाराणा भीमसिंह ब्रिटिश अधिकारी की अगुआई करते हुए–इस चित्र के संयोजन में बुद्धिमता योजना के द्वारा कस्बे का दृश्य प्रांसगिक विवरणों के साथ दर्शाया गया है, जिसमें वातावरण का प्रभाव तथा यूरोपीय छाया, प्रकाश का प्रयोग किया गया है। यह गणगौर रात्रि संग्रामसिंह के समय के सबसे महत्त्वपूर्ण चित्रों में से एक है।[11]
4. महाराणा स्वरूपसिंह चौगॉन से हाथियों के युद्ध को देखते हुए।
5. महाराणा स्वरूपसिंह घोड़े की पीठ पर बैठकर सिटी पैलेस में होली खेलते हुए–यह चित्र उदयपुर 1851 में चित्रकार तारा के द्वारा बनाया गया है।
6. महाराणा शंभूसिंह वर्षा ऋतु के समय घोड़े पर बैठकर भ्रमण करते हुए–यह चित्र 1868 उदयपुर में चित्रकार शिावलाल द्वारा बनाया गया है।
7. महाराणा फतहसिंह खास औदी से जानवरों की लड़ाई देखते हुए–यह चित्र उदयपुर में 1890 ई0 में चित्रकार शिवलाल द्वारा बनाया गया है। इस चित्र की माप इंच 38.5x41.5 इंच है।[12]
8. महाराणा फतहसिंह राजकुमार भोपाल सिंह का स्वागत करते हुए-यह चित्र 1899 में उदयपुर में चित्रकार लीलाधर द्वारा बनाया गया है। चित्र का माप 23.5x19.5 इंच है।
9. महाराणाफतह सिंह शीतला माता के जलूस में।
10. महाराणा फतहसिंह भालू का शिकार करते हुए।
11. महाराणा फतहसिंह बमनियाँ मैगरा पर तेंदुए का शिकार करते हुए–यह चित्र 1961 के लगभग उदयपुर में संभवत: चित्रकार पन्नालाल द्वारा चित्रित किया गया है। इस चित्र का माप 25x41 इंच है।

12. महाराणा फतहसिंह गणगौर का त्योहार मनाते हुए–यह चित्र 1929 ई0 में उदयपुर में चित्रकार पन्नालाल के द्वारा चित्रित किया गया है। इस चित्र का माप 38x56 इंच है।[13]
13. महाराणा भोपालसिंह दशाहरा पर राजसी घोड़े और हाथियों का निरीक्षण करते हुए– यह चित्र 1939 में चित्रित किया गया है तथा पन्नालाल छगनलाल के द्वारा बनाया गया है। इसका माप लगभग 37x62 इंच है।
14. महाराणा भोपालसिंह गणगौर जलूस में हाथियों पर बैठे हुए–यह चित्र 1940 में उदयपुर के चित्रकार छगनलाल द्वारा बनाया गया है। इस चित्र पर उसके हस्ताक्षर बॉयीं तरफ के किनारे पर हैं, जिस पर 'छगनलाल गो' लिखा है। इस चित्र का माप 27x39.5 इंच है।
15. महाराणा भोपालसिंह बोकाडिया में एक चीते का शिकार करते हुए–
16. महाराणा भोपालसिंह अपने जन्मदिन के समारोह के जलूस में–यह चित्र 1945 के लगभग का है। चित्रकार रघुनाथ के द्वारा बनाया गया है। इसमें कहीं-कहीं रंग छूट गए हैं। इस चित्र का माप 17.5x23 इंच है।
17. महाराणा सज्जनसिंह शीतला अष्टमी के उत्सव पर–यह चित्र उदयपुर में प्रारंभिक बीसवी शाताब्दी में संभवत: चित्रकार छगनलाल पन्नालाल के द्वारा बनाया गया है। इस चित्र का संग्रहालय क्रमांक 10/69 है। इस चित्र का माप 36x59 इंच है। इस चित्र में पाश्चात्य प्रभाव दिखाई पड़ता है।[14]

संदर्भ

1. डॉ॰ मोतीचंद, मेवाड पेटिंग, पृ॰ 41
2. बी॰सी॰ प्रींसोप, इंपीरियल इंडियन एंड आर्टिस्ट जर्नल्स लंदन
3. आर॰के॰ वशिाष्ठ, आर्ट एंड आर्टिस्ट ऑफ मेवाड़
4. पर्सी ब्राउन, द हेरीटेज ऑफ इंडिया इंडियन पेंटिग पृ॰ 41
5. संवत 1286, वरीष श्री समधे
6. डॉ॰ मोतीचंद, न्यू डाक्योमेंट ऑन जैन पेंटिंग, पृ॰ 60
7. रामचंद्र अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका वर्ष 44, पृ॰ 289
8. डगलस वेस्ट एवं वेसिलग्रे, पेटिंग ऑफ इंडिया, पृ॰ 264
9. हरमन गवेत्स, बुलेटिन आफ द बड़ौदा म्यूनियम एंड पिक्चर गैलरी
10. जनरल टॉड, एनल्स एंड एक्जीक्यूटिज ऑफ राजस्थान, पृ॰ 667
11. जेम्स टॉड, रनल्स एंड एक्जीक्यूटिज, पृ॰ 551
12. टॉप्स फील्ड, केटलर एंबैसी, पृ॰ 355
13. टॉप्स फील्ड, पेंटिंग फ्राम राजस्थान, पृ॰ 14-15
14. वेल प्रिंसेप (ब्रिटिशा कलाकार), इंपीरियल इंडिया, पृ॰ 171-72

मोती बाग गली नं॰ 01
न्यू माधोनगर
सहारनपुर (उ॰प्र॰) 247001
9084122233, 415976404

ISSN 0975-735X

भारत में सांप्रदायिक सद्भाव : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ॰ गीता यादव
प्रवक्ता राजकीय महिला महाविद्यालय
नारनौल (हरियाणा)

बहुत कम लोगों का इस तथ्य की ओर ध्यान गया है कि संप्रदायवाद एवं धर्मनिरपेक्षता दोनों की तुलना में भारत में 'सांप्रदायिक सद्भाव' काल की दृष्टि से अधिक स्थायी एवं पुरातन तथा विस्तार की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक समाजी एवं वास्तविकता के रूप में विद्यमान रहा है। इसके दुर्बल अथवा प्रभावहीन हो जाने पर ही सांप्रदायिकता हावी होती है। फिर भी सांप्रदायिकता यदा-कदा प्रकट होने वाली दुर्घटना है। यद्यपि उसके भयानक एवं विध्वंसकारी परिणामों को ही देखकर संविधान-निर्माताओं ने, जो राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेता भी थे, धर्मनिरपेक्षता का 'आदर्श' अपनाया है। स्वतंत्रता-प्राप्ति तथा संविधान-निर्माण के इतने वर्ष बाद भी यह अभी एक आदर्श एवं दूरगामी लक्ष्य ही है। फिर भी 'सांप्रदायिक सद्भाव' की वास्तविकता को ही भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का यथार्थ माना जा सकता है।

'सांप्रदायिक सद्भाव' का मूल आधार विभिन्न धर्मों की मूलभूत एकता और समानता है। हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख तथा इसाई सभी धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि उनकी आंतरिक आध्यात्मिक अनुभूति में आधारभूत सामंजस्य पाया जाता है। केवल कुछ धर्मों के बाहरी रूपों का अंतर तथा निहित स्वार्थ संघर्ष का कारण बन जाते हैं।[1] इससे धर्म संप्रदायवाद का रूप धारण कर लेता है। इस स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि 'सांप्रदायिक सद्भाव' को अच्छी तरह से समझा जाए तथा उसे प्रबल बनाने का प्रयास किया जाए।

'सांप्रदायिक सद्भाव' की अवधारणा

सांप्रदायिक सद्भाव की अवधारणा के विषय में अमेरिका के सामाजिक दार्शनिक थियोडोर ब्रेमाल्ड ने बताया है कि 'सांप्रदायिक सद्भाव' को समझने के लिए दो दार्शनिक विचारधाराएँ आवश्यक हैं–

1. अनिवार्यवाद और निरंतरवाद
2. प्रगतिवाद और पुनः रचनावाद।

प्रथम दो विचारधाराओं के अनुसार, सांप्रदायिक सद्भाव का उद्देश्य ईश्वर को समझना तथा पूजना है। उनके अनुसार आध्यात्मिक तथा नैतिक नियमों का स्रोत मनुष्य न होकर ईश्वर होता है। द्वितीय दो विचारधाराओं के अनुसार, सांप्रदायिक सद्भाव मानववाद पर बल देता है। अर्थात् मनुष्य अपना लक्ष्य स्वयं है। अतः उसकी सत्ता किसी काल्पनिक सामूहिक अहंता यथा राष्ट्र, जाति

या वर्ग में विलीन नहीं हो जाती तथा इस प्रकार के समवायों के नाम पर मानवीय हितों का उत्सर्ग करने की माँग करना अवांछनीय है। मनुष्य ही नैतिक नियमों का स्रोत माना जाता है। ब्रेमाल्ड यथार्थवादी-मानववाद में विश्वास करते हैं। अत: नैतिकता, आध्यात्मिकता को मानवीय गुणों का विकास वाला मानते हैं।[2]

सांप्रदायिक सद्भाव की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए नोमानी ने बताया है[3] कि, 'आधुनिक सांप्रदायिक सद्भाव के अंतर्गत जीवन का वह संपूर्ण दर्शन आ जाता है जिसमें संवैधानिक प्रावधान, धर्म व राजनीति का अलगाव, सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर को समझना, सभी धर्मों के सदस्यों में समानता, विज्ञान एवं तकनीकी के मूल्यों को स्वीकार करना, मानव-जाति के सांस्कृतिक तथा सामाजिक सुधार राष्ट्रीयता की स्वच्छ भावना को तर्क पर आधारित करना तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्मिलित होते हैं।[4]

समाजविज्ञानियों ने सामाज विज्ञान में 'सामाजिक एकीकरण' के अर्थ को सांप्रदायिक सद्भाव से मिलता-जुलता माना है। इसके अंतर्गत विभिन्न जातियों, उपजातियों, प्रजातियों, विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, रीतिरिवाजों, कर्मकांडों, भाषाओं तथा समूहों आदि का सहयोग तथा एकता आती है। इसके अनुसार उनमें किसी प्रकार की अलगाव तथा टकराव की भावना नहीं हो तथा समस्त समाज सहिष्णुता एवं समन्वयपूर्वक जीवन व्यतीत करे।[5]

सांप्रदायिक सद्भाव अँग्रेजी शब्द 'कम्युनल हारमनी' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ समुदायों को जोड़ना होता है। अर्थात् विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं तथा क्षेत्रों के आधार पर लोगों के समुदायों तथा संघों को एकता के सूत्र में बाँधना। महात्मा गांधी के अनुसार, 'सांप्रदायिक सद्भाव एक आदर्श है, जिसमें सभी लोग अपने-अपने धर्मों को सच्चाई और लगन के साथ 'मैत्री-धर्म' के रूप में मानकर चलें, चाहे वह हिंदूधर्म हो अथवा इस्लाम, ईसाई एवं पारसी।'[6] सुभद्रा जोशी के अनुसार, 'सांप्रदायिक सद्भाव दिलों की अटूट एकता का नाम है।' जो व्यक्ति राष्ट्रीयता की भावना को समझते हैं, वे एक-दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते। यदि वे ऐसा करते हैं तो एक राष्ट्र समझे जाने योग्य नहीं हैं।[7]

प्राचीन एवं मध्यकाल में भारतवर्ष में धार्मिक सहिष्णुता की एक दीर्घकालीन परंपरा रही है। मध्यकाल में तो तुकाराम, नामदेव, कबीर, नानक, दादू आदि संतों ने लोकजीवन में विभिन्न धर्मों एवं संप्रदायों के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया, किंतु उनके प्रयास अँग्रेजी शासन की 'फूट डालो और शासन करो' नीति के आगे प्रभावहीन हो गए।

स्वशासन, सत्ता में भागीदारी तथा लोकतंत्र की संभावनाओं के साथ विभिन्न संप्रदायों, जातियों तथा वर्णों के मध्य अपने आप तथा विदेशी शासकों की कूटनीति के कारण सत्ता-संघर्ष, प्रतियोगिता तथा सांप्रदायिक विद्वेष प्रारंभ हो गया।

वस्तुत: 'सांप्रदायिक सद्भाव' से संबंधित अधिकांश विचार एवं दृष्टिकोण ब्रिटिश कूटनीति, निहित सांप्रदायिक स्वार्थ, राजनीति की आवश्यकताओं से प्रभावित रहे हैं। सर सैय्यद अहमद खाँ (1817-1898) ने अपने राजनीतिक-सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में ऐसे विचार प्रकट किए, जिनसे यह आशा बँधी कि उनके व्यक्तित्व में एक भारतीय राष्ट्रवादी और हिंदू-मुस्लिम एकतावादी नेता मिलेगा।[8] 1887 से पूर्व उनके भाषणों से अधिकांशत: यही ध्वनित हुआ कि वे एक राष्ट्रवादी थे और हिंदू-मुस्लिम एकता के पोषक थे।[9] उन्होंने यह भी अनुभव किया कि

 ISSN 0975-735X

ब्रिटिश संसद सदस्यों को भारतीय जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से निरंतर अवगत कराते रहना जरूरी है। इसके लिए उन्होंने एक संस्था की आवश्यकता अनुभव की और फलस्वरूप 1886 में 'ब्रिटिश भारतीय संघ' अस्तित्व में आया।[10]

सर सैय्यद ने इल्बर्ट बिल का समर्थन किया, जिसका ध्येय न्यायिक प्रशासन से जातीय भेदभाव को मिटाना था। 1884 में पंजाब भ्रमण के भाषणों में उन्होंने कहा, 'हमें अपनी सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए एक होकर कार्य करना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम जीवित रह सकेंगे और यदि ऐसा करने में हम असमर्थ रहे तो यह हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए घातक होगा।'[11] अपने एक अन्य भाषण में उन्होंने हृदय को छू देने वाले शब्दों में कहा कि हमारा भारत देश उस नई दुल्हन के समान है, जिसमें हिंदू और मुसलमान दो सुंदर तथा चमकीले नेत्र हैं। यदि दोनों परस्पर सहयोग और मेल से रहते हैं तो दुल्हन सदैव सुंदर बनी रहेगी, पर यदि वे दोनों नेत्र विरोधी दिशाओं में देखते हैं तो दुल्हन निश्चित रूप से तिरछी देखेगी अथवा अंधी हो जाएगी।[12] सर सैय्यद अपने राष्ट्रवादी और हिंदू-मुस्लिम एकतावादी स्वरूप को अधिक समय तक बनाए न रख सके। असलियत प्रकट होकर रही है और 1887 से तो वे स्पष्ट रूप से प्रतिक्रियावादी और संप्रदायवादी धारा में बढ़ने लगे। सर सैय्यद में संप्रदायवादी बीज एकाएक ही नहीं उगे वरन् ये छद्म वेश में पहले से ही विद्यमान थे।

जिन्ना अपने प्रारंभिक राजनीतिक जीवन में राष्ट्रवादी और हिंदू मुस्लिम एकता के प्रतीक के रूप में प्रकट हुए। 'सूरत की फूट' के बाद वे उदारवादी काँग्रेस में सम्मिलित हो गए। 1906 में स्थापित मुस्लिम लीग की सदस्यता उन्होंने सांप्रदायिक होने के कारण ग्रहण नहीं की। तत्कालीन उदारवादियों की भाँति सरकार का विरोध करते हुए उन्होंने यथासंभव शिष्टाचार और उदारवादिता की सीमा का अतिक्रमण कभी नहीं किया।

जिन्ना ने काँग्रेस और लीग को निकट लाने की दिशा में काम किया और फलस्वरूप 1916 में काँग्रेस-लीग का लखनऊ समझौता सामने आया। यद्यपि इसे उस समय 'हिंदू-मुस्लिम एकता की आधारशिला' माना गया, लेकिन शीघ्र ही यह दुखद तथ्य खुलकर सामने आ गया कि लीग के साथ समझौता तभी संभव हुआ, जब काँग्रेस ने पृथक निर्वाचक मंडलों के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया। जिन्ना ने स्पष्ट कर दिया कि पृथक निर्वाचक मंडलों की माँग मुसलमानों के लिए एक नीति का नहीं वरन् आवश्यकता का विषय है। धीरे-धीरे वे सांप्रदायवादी बनते चले गए।

गांधी के नेतृत्व में जब अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम अपनाया गया तो 1920 में उन्होंने काँग्रेस को सदैव के लिए त्याग दिया। यद्यपि जिन्ना राजनीतिक कारणों से हिंदू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता पर बल देते रहे।

1927 में मुस्लिम लीग के दो दल हो गए। एक दल का अधिवेशन मोहम्मद सफी के नेतृत्व में लाहौर में और दूसरा जिन्ना के नेतृत्व में कलकत्ता में हुआ। 1937 के चुनावों में मुस्लिम लीग को कोई विशेष सफलता नहीं मिली, तब जिन्ना ने इस प्रकार आरोप लगाना शुरू कर दिया कि भारत के मुसलमान काँग्रेसी सरकार से न्याय की कोई आशा नहीं कर सकते, और उन्होंने काँग्रेस पर भारी आरोप लगाए। जब काँग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दिया तो उसे मुस्लिम लीग ने 'मुक्ति दिवस' निजात या छुटकारे का दिन मनाए जाने का एलान किया।[13]

1940 के आते-आते वे सर इकबाल द्वारा सुझाई गई भारत-विभाजन योजना की

व्यावहारिकता का अनुभव करने लगे और शीघ्र ही 'द्विराष्ट्र सिद्धांत' तथा 'पाकिस्तान की माँग' के मुख्य समर्थक बन गए। संप्रदायवाद के आधार पर पाकिस्तान से निर्माण करने के बाद जिन्ना से पुनः उदारवादी बनने का प्रयास किया, किंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

गोपालकृष्ण गोखले (1866-1915) ने हिंदू-मुस्लिम एकता को भारत राष्ट्र के लिए कल्याणकारी माना और स्वयं को यथासंभव ऐसे विवादों में पड़ने से बचाए रखा, जिनसे इन दो संप्रदायों के बीच कटुता पैदा होने की संभावना हो। राष्ट्रीय एकता और सार्वजनिक नीति के आध्यात्मीकरण के अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए गोखले ने 12 जून को 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की तथा अनेक लेख लिखे। उनका मरणोपरांत प्रकाशित वसीयतनामा बहुत उपयोगी माना जाता है।

बाल गंगाधर तिलक (1856-1920) की सनातन हिंदूधर्म में पूर्ण निष्ठा थी। हिंदूधर्म की महानता, उदारता एवं सहिष्णुता के वे प्रबल प्रशंसक थे। उन्होंने हिंदूधर्म से संबंधित समस्त मान्यताओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक ग्रंथों आदि का गहन अध्ययन किया था। तिलक ने हिंदुओं की सांप्रदायिक एकता पर बल दिया। वे हिंदुओं के विभिन्न मत-मतांतरों को समन्वित कर समस्त हिंदू मतावलंबियों को एकजुट होने का आह्वान कर रहे थे।[14]

तिलक ने राष्ट्रीय शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग धार्मिक शिक्षा को माना था। तिलक की मान्यता थी कि धार्मिक शिक्षा झगड़ों और पारस्परिक कलह को दूर करने की कुंजी है। यदि हिंदुओं को सच्चे हिंदूधर्म और मुस्लिम धर्म के लिए सम्मान और सहिष्णुता का प्रसार होगा। तिलक का कहना था कि चरित्र-निर्माण के लिए धर्मनिरपेक्षता व शिक्षा पर्याप्त नहीं है, उसके लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। तिलक को इस बात से बड़ी ग्लानि थी कि भारतीयों में अनुशासन और अतीत के प्रति सम्मान के भाव लुप्त होते जा रहे थे और वे जीवन के भौतिकवादी मूल्यों तथा पाश्चात्य जीवन-पद्धति के पीछे दौड़ रहे थे। इसके लिए दोष धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का था।

मोहनदास करमचंद गांधी (1869-1948) की 'सांप्रदायिक सद्भाव' या सांप्रदायिक सौहार्द' की 'सर्वधर्मग्राही-मानवतावादी' धारणा थी, जो उनके जीवन तथा भारत के स्वाधीनता-संग्राम से जुड़ी हुई होने के साथ-साथ उससे ऊपर उठी हुई है। उसे जानने के लिए उनके जीवन-दर्शन को समझना आवश्यक है।[15]

गांधीजी की मान्यता थी कि नैतिकता सबका आधार है। गांधीजी के अनुसार, अहिंसा या मूल सत्य में अंतर्निहित है और इस प्रकार सत्य और अहिंसा को संयुक्त रूप में वह कसौटी माना जा सकता है, जिस पर गांधीजी अपने सभी कार्यों की परीक्षा करना चाहते थे। गांधीजी की अंतर्चेतना इन्हीं दो अवधारणाओं सत्य व अहिंसा पर ही प्रेरित होती थी। सत्य और अहिंसा पर आधारित संपूर्ण मानव-जाति से इस लगाव के कारण ही गांधीजी की आस्था राष्ट्रवाद के संकुचित स्वरूप में नहीं थी।

गांधी का धर्म 'संप्रदायवादी' नहीं था। वह मानव-समाज का शाश्वत तत्त्व है, जो हिंदुत्व, इस्लाम और ईसाइयत से परे है। गांधी ने हिंदूधर्म में गहरी आस्था प्रकट की, क्योंकि यह धर्म अन्य सब धर्मों के साथ शांतिपूर्वक रहने में विश्वास करता है और इस प्रकार का कोई दावा नहीं करता कि सत्य एक मात्र उसी में है। 'सब धर्म एक-दूसरे के साथ शांति से रहें, यही हिंदूधर्म है।[16]

गांधी जी यद्यपि सभी धर्मों को सत्य मानते थे, किंतु उनका यह विश्वास नहीं था कि वे सर्वथा त्रुटिहीन हैं। सभी धर्म मनुष्यकृत हैं, अतः उनमें अपूर्णता रहना स्वाभाविक है। दुनिया के सभी महान् धर्मों की आधारभूत शिक्षाओं में गांधीजी का विश्वास था। धर्म-परिवर्तन में उन्हें कोई आस्था न थी। उनके आश्रम में मुसलमान, इसाई और पंडित सभी थे, लेकिन उन्होंने किसी को भी हिंदू बनने या धर्म-परिवर्तन को नहीं कहा।[17]

'सांप्रदायिक सौहार्द' करने की दिशा में गांधी जी के प्रयासों का मूल्यांकन डॉ॰ राजेंद्रप्रसाद ने इन शब्दों में किया है, 'हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने में गांधीजी के प्रयास की दीर्घ तथा दुखद इतिहास एक ओर पाकिस्तान की स्थापना में तथा दूसरी ओर उनके अपने जीवन के बलिदान में समाप्त हुआ।'[18] गांधी जी ने कहा, 'मैं दोनों वर्गों को जोड़ने के लिए सीमेंट बनने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि यदि आवश्यकता हो तो अपना खून देकर भी इनको जोड़ने का सीमेंट बन सकूँ।' गांधी जी ने यह किया भी यद्यपि उनका प्रयास सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित करने में असफल रहा।

गांधी जी ने यह भी कहा कि 'मेरे मरने के बाद नेहरू मेरी ही भाषा बोलेगा। जवाहरलाल नेहरू 15 अगस्त, 1947 से लेकर 27 मई 1964 के दिन तक अर्थात् मृत्यु के समय तक भारत के प्रधानमंत्री रहे।' स्वतंत्रता-प्राप्ति से विभाजन के पश्चात् भी, जवाहरलाल नेहरू को सांप्रदायिकता की समस्या से जूझते रहना पड़ा।

नेहरू को धार्मिक राष्ट्रवाद से सहानुभूति न थी। उन्होंने कहा था कि 'यदि राष्ट्रीयता का आधार धर्म है तो भारत में न केवल दो वरन् तमाम राष्ट्र मौजूद हैं। भारत की राष्ट्रीयता न हिंदू राष्ट्रीयता है, न मुस्लिम वरन् विशुद्ध भारतीय है।'[19] नेहरू अंतर्राष्ट्रवाद के पोषक थे। 'विश्वशांति और विश्वसंप्रदाय के विचार में नेहरू का बड़ा विश्वास था। नेहरू ने कहा था–'मेरी राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता पर आधारित है और आधुनिक विश्व, विज्ञान व्यापार और यातायात के साधनों के कारण अंतर्राष्ट्रीयता की नींव पर खड़ा है। कोई भी राष्ट्र विश्व से विमुख नहीं रह सकता।'[20] नेहरू का अंतर्राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण कोरा आदर्शवादी नहीं था। उन्होंने उसे व्यवहार में लागू करना चाहा। ज्यों-ज्यों उनकी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति बढ़ती गई, वे अपने अंतर्राष्ट्रीय विचारों को मूर्तरूप देते गए। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राज्यों के आचरण का एक नया मौलिक सिद्धांत सन् 1955 दिया जो 'पंचशील' के नाम से विख्यात है।[21] इसमें भिन्न पाँच सिद्धांत प्रतिपादित किए गए–1. एक-दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और सर्वोच्च सत्ता के लिए पारस्परिक संबंध, 2. अनाक्रमण, 3. एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप, 4. समानता और पारस्परिक लाभ एवं 5. शांतिपूर्ण सहअस्तित्व तथा आर्थिक सहयोग।

नेहरू ने कहा, 'हम देश में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता सहन नहीं करेंगे। हम एक ऐसे स्वतंत्र धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण कर रहे हैं, जिसमें प्रत्येक धर्म तथा मत को पूरी स्वतंत्रता तथा समान आदर-भाव प्राप्त होगा और प्रत्येक नागरिक को पूरी स्वतंत्रता तथा समान अवसर की सुविधा प्राप्त होगी।[22]

समाजवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए लोहिया ने सांप्रदायिकता का विरोध तथा सांप्रदायिक एकता का समर्थन किया है। भारत में सांप्रदायिक समस्या के कई कारण हैं, जिनमें हिंदू-मुसलमान मन की मिथ्या धारणा प्रमुख है। जब तक इस कटु सांप्रदायिकता का अंत नहीं

होता, तब तक समाज में समता, संपन्नता और सहयोग की स्थिति नहीं आ सकती। इसलिए सांप्रदायिकता समाप्ति के प्रयास निरंतर और निष्ठा के साथ होने चाहिए। लोहिया के मत में मुख्यत: पाँच प्रकार के सुधार इस दिशा में किए जा सकते हैं–

1. हृदय-परिवर्तन
2. इतिहास की सही व्याख्या
3. राजनीति में सुधार
4. भाषा-संबंधी उदार नीति तथा
5. धार्मिक प्रयास

लोहिया ने हिंदुओं और मुसलमानों का एक जुलूस में चलने, जगह-जगह समता का प्रचार करने और संपूर्ण देश में एकता की बिजली दौड़ाने के लिए आह्वान किया। उनके विचार में सांप्रदायिकता का अंत केवल उस समय हो सकता है, जब लोग हिंदू और मुसलमान की हैसियत से इकट्ठे नहीं होंगे।[23]

'सांप्रदायिक सद्भाव' की अवधारणा को नए सिरे से तथा पूरी तरह समझने की अत्यंत आवश्यकता है। 'अल्पसंख्य' एवं 'बहुसंख्य' की वास्तविकताओं को अनदेखी करके उन्हें तोड़-मरोड़कर सांप्रदायिकता के साथ जोड़ दिया गया है।

'सांप्रदायिकता' एवं 'संप्रदायवाद' को एकाकार करके तत्सम बना दिया गया है। 'सांप्रदायिकता' विरोधपूर्ण सामाजिक स्थिति का नाम है और 'संप्रदायवाद' झूठे आधारों पर अपने संप्रदाय के हितों के नाम पर अभिजन वर्ग तथा उसके नेताओं द्वारा अपने स्वार्थों को अनैतिक तथा हिंसात्मक उपायों द्वारा आगे बढ़ाने का प्रयास। इस 'संप्रदायवाद' को भी केवल धर्म से जोड़कर स्वतंत्रता से पहले तथा बाद में लगातार भ्रांतियाँ उत्पन्न की गई हैं। यथार्थ स्थिति यह है कि केवल धर्म ही संप्रदायवाद का आधार नहीं होता। भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, आर्थिक हित आदि भी संप्रदायवाद के स्रोत हो सकते हैं। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 'सांप्रदायिक सद्भाव' तथा 'धर्मनिरपेक्षता' एक ही नहीं है। अधिक से अधिक 'सांप्रदायिक सद्भाव' को 'धर्मनिरपेक्षता' की पूर्ण शर्त माना जा सकता है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि सांप्रदायिक सद्भाव वाली राजनीतिक व्यवस्था के लिए धर्मनिरपेक्ष होना भी अंतिम लक्ष्य बन जाय।

संदर्भ

1. सैय्यद अहमद अब्बास, सांप्रदायिक सद्भाव, लखनऊ यूनिवर्सिटी प्रेस, 1968, पृ॰ 17
2. टी॰एन॰ जगदीशन, पी॰एस॰ श्रीनिवास, विकास प्रकाशन, दिल्ली, 1979, पृ॰ 10
3. रशीद नोमानी, भारतीयकरण, हिंदी ग्रंथ अकादमी, बिहार, 1979, पृ॰ 35
4. एम॰एस॰ धुर्ये, शिक्षा का सामाजिक प्रकरण, नया शिक्षक, वर्ष 10, अंक 4, अप्रैल-जून, 1968, पृ॰ 5
5. ए॰आर॰ देसाई, सोशल बैंक ग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, एशिया पब्लिशर्स, बंबई, 1966
6. महात्मा गांधी, दी वे टू कम्यूनल हारमनी, कलेक्टेड वर्क, दिल्ली, 1958
7. सुभद्रा जोशी, सांप्रदायिक सद्भाव सम्मेलन में दिया गया भाषण, राजस्थान पत्रिका, मार्च 22, 1987
8. अवस्थी एवं अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशल साइंसेज, दिल्ली, 1980, पृ॰ 387

 ISSN 0975-735X

9. के॰ दामोदरन, इंडियन थोट, ए क्रिटिकल सर्वे, पृ॰ 383
10. एम॰एस॰ जैन, आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक विचारक, मनोहर प्रकाशन, दिल्ली, 1980, पृ॰ 27
11. के॰ दामोदरन्, पूर्वोक्त, पृ॰ 386
12. सर सैय्यद अहमद खाँ, दी काज ऑफ दी इंडियन रिवोल्ट, पृ॰ 12
13. के॰ दामोदरन्, पूर्वोक्त, पृ॰ 383
14. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, पूर्वोक्त, पृ॰ 187
15. बी॰आर॰ नंदा, महात्मा गांधी-ए-बायोग्राफी, जार्ज अलेन एंड उनयिन प्रेस, लंदन, पृ॰ 36
16. अबुल कलाम आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम, राष्ट्रीय प्रेस, दिल्ली, 1964
17. लूई फिशर, पूर्वोक्त, पृ॰
18. राजेंद्रप्रसाद, आत्मकथा, राष्ट्रीय प्रेस, दिल्ली, 1965
19. अशोक महाजन, हिंदुस्तान (नवंबर 14, 1971)
20. अशोक महाजन, हिंदुस्तान (नवंबर 14, 1987)
21. फ्रेंक मारेस, जवाहरलाल नेहरू जीवनी, हिंदी अनुवाद, पृ॰ 3
22. फ्रेंक मारेस, पूर्वोक्त
23. ओंकार शरद, लोहिया, पृ॰ 187

हरियाणा में सांप्रदायिक सद्‌भाव

(संदर्भ : महेंद्रगढ़ और नारनौल)

डॉ॰ गीता यादव
प्रवक्ता राजकीय महिला महाविद्यालय
नारनौल (हरियाणा)

'सांप्रदायिक सद्‌भाव' भी कोई सर्वथा एकाकी तथा पृथक विषय नहीं है। इसका अध्ययन संपूर्ण भारत के व्यापक क्षेत्र में किया जाना चाहिए। भारत में दो राज संस्कृतियाँ रही हैं–(1) ब्रिटिश भारत के प्रांतों में पाई जाने वाली, तथा (2) देशी रियासतों में पाई जाने वाली। ब्रिटिश भारत में पाई जाने वाली राज॰ संस्कृति तथा राजनीतिक विकास पूरी तरह सांप्रदायिकता से प्रभावित रहे हैं। किंतु देशी रियासतें न्यूनाधिक रूप से 'सांप्रदायिक सद्‌भाव' का घर बनी रही हैं तथा भारत में विलीन हो जाने पर भी उनकी वह सद्‌भावपूर्ण परस्परता निरंतर पाई जाती है। रियासतों में से हरियाणा के समष्टि संदर्भ को चुना गया है। हरियाणा को संपूर्ण भारतीय व्यवस्था का अंग मानकर लिया गया है। हरियाणा में एकीकरण से पूर्व राजा–महाराजाओं के शासन की पृष्ठभूमि रही थी। इस समय भी यहाँ धार्मिक सहिष्णुता पाई जाती थी।

स्वतंत्रता के पश्चात् भी हरियाणा में 'सांप्रदायिक सद्‌भाव' बने रहने के समष्टिगत बाह्य एवं आभ्यांतरिक कारक पाए गए हैं। बाह्य कारकों में भारतीय राज–व्यवस्था की प्रकृति विशेषत: काँग्रेस का केंद्र में दीर्घकालीन एकदलीय प्रभुत्व, शक्तिशाली प्रधानमंत्री व्यवस्था तथा राज्यों का केंद्र पर निर्भर बने रहना है। स्वयं भारतीय संविधान मौलिक अधिकारों को धर्म, जाति, जनसंख्या, भाषा, संस्कृति आदि का भेदभाव किए बिना सभी नागरिकों को प्रदान करता हुआ 'सांप्रदायिक सद्‌भाव' की संवैधानिक प्रावधानों को मानने के लिए बाध्य है। उन्हें केंद्र द्वारा 'सांप्रदायिक सद्‌भाव' को बनाए रखने के लिए निर्देश दिए जा सकते हैं तथा इस दिशा में असफल होने पर अनुच्छेद 356 के अंतर्गत उस राज्य को अल्पकाल के लिए केंद्राधीन अथवा 'राष्ट्रपति शासन के अधीन' घोषित किया जा सकता है। वैसे भी केंद्र की ओर से राज्यपाल राज्य का शीर्षस्थ सर्वोच्च अधिकारी होता है। उच्चस्तरीय नौकरशाही सर्वत्र भारतीय सेवाओं से निर्मित होने के कारण केंद्रीय 'धर्मनिरपेक्ष' नीतियों को प्राथमिकता मिलती है। भारत के अर्द्धसंघीय व्यवस्था के अधीन केंद्र अत्यधिक शक्तिशाली है और उसके आदेश–निर्देशों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। वैसे भी जनताकाल को छोड़कर (1977–79) यहाँ भी काँग्रेस का ही शासन रहा है।

स्वयं हरियाणा एक नवीन राजनीतिक शासनिक इकाई है, जिसका निर्माण देशी रियासतों के भारतीय में विलयन तथा 'हरियाणा' के रूप में एकीकरण माध्यम से हुआ। देशी राजा–महाराजाओं ने स्वदेशी होने के कारण अपनी प्रजाओं में 'सांप्रदायिक सद्‌भाव' को बनाए

 ISSN 0975-735X

रखने का निरंतर प्रयास किया तथा अपने प्रशासन में सभी धर्मों, जातियों, क्षेत्रों आदि के योग्य व्यक्तियों को स्थान दिया। स्वतंत्रता के पश्चात् हरियाणा राज्य के मंत्रीमंडलों तथा विधान सभाओं में सभी धर्मों, दलों, जातियों, क्षेत्रों, अल्पसंख्य वर्गों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रतिनिधित्व मिलता आया है। अकाली दल, मुस्लिम लीग आदि राजनीतिक दलों को छोड़कर अन्य दलों में भी प्राय: सभी धर्मों, जातियों तथा वर्गों के लोग पाए जाते हैं।

हरियाणा का भौगोलिक परिवेश भी अनुकूलता लिए हुए है। इस विशाल प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व कम है तथा सामान्यत: वर्ग की कमी, आवागमन के साधनों का अभाव तथा सीमित प्राकृतिक साधन एक-दूसरे को अलग बनाए रखते हैं। हरियाणा की सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषता भी बोलियों तथा पहिनावे के अतिरिक्त लगभग एक सी पाई जाती है। यद्यपि मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि हिंदुओं की जाति-प्रथा तथा इससे संबंधित व्यवहारों को स्वयं नहीं अपनाते, किंतु इनका सम्मान करते हैं। हिंदुओं के व्यवहारों भी उनका न्यूनाधिक प्रभाव पाया जाता है। 'सांप्रदायिक सद्भाव को कम करने वाले अनेक तत्त्व जैसे क्षेत्रीयता आदि का यहाँ पर अधिक प्रभाव नहीं पाया जाता है।' प्राय: सभी राजनीतिक दल हरियाणा की राजनीतिक व्यवस्था के मूल ढाँचे से संतुष्ट हैं।

एक विचित्र विशेषता इस प्रदेश के धार्मिक स्थानों एवं तीर्थों में दिखाई देती है। यहाँ किसी स्थान या नगर में यदि किसी एक धर्म या संप्रदाय के तीर्थ स्थल या धार्मिक स्थान हैं तो यहाँ कुछ अन्य धर्मों के भी तीर्थ स्थल या स्थान देखने को मिलते हैं। यह 'सांप्रदायिक सद्भाव' लाने का सांस्कृतिक-धार्मिक प्रयास कहा जा सकता है। यही बात यहाँ के लोक संतों, धर्मसुधारकों आदि के विषय में कही जा सकती है। यह आम जनता के जीवन में घुल मिल गए हैं और उन्हें 'देवता' मानकर पूजा तथा याद किया जाता है। यद्यपि इन सबके साथ-साथ हिंदुओं की बहुसंख्या होने तथा उनमें 'धार्मिक सहिष्णुता' की भावना का पाया जाना भी है।

यहाँ भाषा तथा बोलियों के विषय में भी विचारों का अभाव है। उन्नीस देशी राजे-रजवाड़ों में अपनी-अपनी स्थानीय बोलियाँ या उपभाषाएँ थीं, जिन्हें 'हरियाणवी' का उप प्रकार माना गया है। प्रत्येक उप प्रकार या उपभाषा भी बोलियों के रूप में अनेक प्रकार पाए जाते हैं।[34] किंतु इन्हें समझने में आम जनता को कोई अधिक कठिनाई नहीं होती। ये सभी उपभाषाएँ एवं बोलियाँ हिंदी के निकट मानी जाती हैं, जिसे सभी लोग व्यवहार में लाते हैं। एक विशेष बात यह है कि प्रत्येक उपभाषा या बोली के बोलने वालों में प्राय: सभी धर्म, जातियों, वर्गों आदि के लोग पाए जाते हैं। हरियाणा की अधिकांश जनता के पिछड़े होने के कारण यह 'भाषायी समरसता' और भी अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। यद्यपि जातियाँ विशेष व्यवसायों, धंधों तथा जीवन-निर्वाह के साधनों से जुड़ी पाई जाती है। किंतु स्वतंत्रता के पश्चात् हुए सत्ता-परिवर्तन तथा लोकतंत्र के आविर्भाव से शनै: शनै: मूलभूत परिवर्तन आ रहा है। संविधान द्वारा स्वीकृत न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के प्रावधानों के अंतर्गत सभी लोग स्वेच्छानुसार व्यवसाय, धंधों आदि को करने के लिए स्वतंत्र हैं। कुछ जातियों, धर्मों आदि के अनुयायियों के विशिष्ट धंधों, व्यवसायों आदि से जुड़े रहने पर आम लोगों में आक्रोश अथवा विरोध नहीं पाया जाता। इनके साथ ही हरियाणा की सरकार भी अपने राजनेताओं तथा नौकरशाही के समेत इस दिशा में सक्रिय रही है। गृह विभाग तथा पुलिस प्रशासन 'सांप्रदायिक सद्भाव' को तोड़ने वाली घटनाओं के प्रति सजग रहा है।

हरियाणा में सांप्रदायिक सद्भाव की वास्तविक स्थिति को ज्ञात करने के लिए महेंद्रगढ़ तथा नारनौल दो मध्यम तथा बड़ी श्रेणी के नगरों को चुना गया है। यहाँ सभी धर्मों, जातियों, भाषाओं, वर्गों, क्षेत्रों तथा संस्कृतियों के लोग रहते हैं, किंतु हिंदुओं तथा हरियाणवी संस्कृति एवं भाषा की प्रधानता है। प्रारंभ से ही यह कला, संस्कृति, परंपराओं तथा अन्य विविधताओं का क्षेत्र रहा है।

महेंद्रगढ़ तथा नारनौल में 'सांप्रदायिक सद्भाव' का प्रतिमान खोजने के लिए अनुसूचियाँ, सहभागी अवलोकन तथा विशिष्ट व्यक्तियों से साक्षात्कार का उपयोग किया गया।

उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर कतिपय महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किए, जिनका संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है।

महेंद्रगढ़

यहाँ के निवासी उत्तरदाताओं की सूचना एवं अनुभव के अनुसार न केवल साथ-साथ रहते हैं, अपितु एक-दूसरे धर्मों के सभी मोहल्लों में निश्चितता पूर्वक रहते हैं। उनके बच्चों, कतिपय मंदिर-मस्जिद केंद्रित निजी विद्यालयों को छोड़कर सरकारी या सरकारी सहायता-प्राप्त विद्यालयों में प्राथमिक से लेकर स्नातक तक शिक्षा उन्हीं संस्थाओं में समान रूप से प्राप्त करते हैं तथा विश्वविद्यालयों में जाने अथवा उनके छात्रावासों में रहने वालों के लिए भी समान रूप से ही है।

विशेषतया महेंद्रगढ़ में सभी धर्मों के लोग सद्भाव एवं मैत्रीपूर्वक रहते हैं। वे एक-दूसरे के धर्मों, धार्मिक राज्यों का सम्मान करते हैं। यहाँ तक कि बड़े त्योहारों तथा पर्वों में प्राप्त स्तर पर भाग लेते हैं। अधिकांश व्यक्ति सांप्रदायिक प्रभाव को अपने धर्म का अभिन्न अंग मानते हैं। लगभग सभी अपने धर्म का अभिन्न अंग मानते हैं। लगभग सभी अपने धर्म के प्रति आस्था रखने का दावा करते हैं। यद्यपि उसके बारे में तथा दूसरे धर्मों के बारे में अधिक जानकारी नहीं रखें तो वे अपनी धार्मिक जिज्ञासा व पिपासा शांत करने के विभिन्न स्थानों पर जाते हैं, किंतु नहीं जाने वाले भी हैं। स्त्रियाँ प्राय: धार्मिक स्थलों पर जाने में अधिक रुचि रखती हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि धर्म-परिवर्तन की स्वतंत्रता के पक्ष में आधे से अधिक व्यक्ति विचार रखते हैं तथा उसे किसी भी अशांति का कारण नहीं समझते किंतु वे उसे प्रचार या शिक्षा द्वारा ही दिए जाने को उचित मानते हैं। उनमें काफी लोग अन्य धर्मावलंबियों के हितों तथा अधिकारों के समर्थक हैं, परंतु इस मामले में राज्य के हस्तक्षेप को उचित नहीं मानते।

धर्म की तुलना में राज्य, समाज अथवा राष्ट्र की सर्वोपरिता के बारे में भिन्न-भिन्न विचार थे। उनकी दृष्टि से धर्मनिरपेक्षता धर्म से पूर्ण पृथकता नहीं होकर सभी धर्मों को समान भाव से देखना है। यही नहीं महेंद्रगढ़ में प्रत्येक क्षेत्र के बहुसंख्यक अन्य सभी प्रकार के अल्पसंख्यकों विशेषत: धार्मिक अल्पसंख्यों के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं। वे जानते हैं कि उन्हें संविधान के अंतर्गत सभी भौतिक अधिकार बराबरी के प्राप्त हैं। इन्हें अन्य धर्म के लोगों से पर्याप्त सहयोग मिलता है। अधिकांश लोगों को अपने धर्म से संबंधित उत्सवों, प्रदर्शनों आदि को संगठित करने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं होती। वे लोग अन्य धर्मावलंबियों द्वारा सामान्य जीवन में अपने किए गए व्यवहार से काफी संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं। भिन्न धर्मावलंबियों द्वारा सामान्य जीवन में अपने किए गए व्यवहार से काफी संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

महेंद्रगढ़ शहर में सभी राजनीतिक दल हैं, किंतु यहाँ धर्म के प्रति झुकी हुई 'भारतीय

 ISSN 0975-735X

लोकदल पार्टी' के होते हुए भी कोई कटुता नहीं दिखाई देती। यहाँ सांप्रदायिक दंगे कभी हुए भी नहीं हैं।

किंतु लगभग आधे लोग राजनीति को सांप्रदायिकता के प्रसार में सहायक मानते हैं। वे नहीं चाहते हैं कि राजनेता सार्वजनिक स्थलों पर जाएँ। तथा पवित्र धार्मिक स्थलों का राजनीतिक कार्यों के लिए उपयोग करें। धर्म से संबंधित राजनेता अपने संप्रदाय का अधिक भला नहीं करते और अपने ही स्वार्थपूर्ति में लगे रहते हैं।

यहाँ अधिकांश लोग यह मानते हैं कि चुनाव जीतने में उस क्षेत्र में अपने स्व धर्मावलंबियों की बहुसंख्या का होना आवश्यक है। फिर भी कुछ लोग ऐसा होना अनिवार्य नहीं मानते। हिंदू बहुल्य के संदर्भ में सभी लोग अपने को सुरक्षित अनुभव करते हैं। सरकार अपने मंत्रिमंडलों, विधानसभाओं आदि में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दे रही है, नौकरशाही के विषय में भी उनका ऐसा ही विचार है।

सांप्रदायिक सद्भाव को आगे बढ़ाने में शिक्षा-प्रणाली का महत्त्व स्वीकार किया गया है। संपूर्ण मानव बंधुत्व तो अभी दार्शनिक अवधारणा का धार्मिक विचार या आदर्श मात्र है। किंतु उनमें आस्था रखते हुए भी अपने धर्म के विषय में तथा अन्य धर्मों के विषय में सीमित आस्था रखते हुए भी यह अनुभव करते हैं कि सभी धर्मों में मूल समानताएँ पाई जाती हैं।

नारनौल

जब हम नारनौल में 'सांप्रदायिक सद्भाव' की अवस्थाओं का प्रतिमान निर्धारण करने हेतु देखते हैं तो हम उसे महेंद्रगढ़ की तुलना में चौथे-पाँचवें स्तर तक ही पाते हैं, यद्यपि वे भारतीय संवैधानिक, राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रभावित होकर 6-7वें स्तर तक गतिविधि करते दिखाई पड़ते हैं।

नारनौल के लोग भी महेंद्रगढ़वासियों की तरह सुख-शांतिपूर्वक साथ-साथ रहते हैं तथा धर्मांतरण द्वारा बने हुए मुसलमानों की यथास्थिति को भी स्वीकार कर चुके हैं। यद्यपि धर्मांतरण मुसलमान (कायमखानी) अपने राजपूत होने के स्तर को भुला नहीं पाते और उसे बार-बार याद करते हैं। मुसलमानों के इस वर्ग के रीति-रिवाज, हिंदू-मुस्लिम मिश्रित हैं। वे अलग-अलग क्षेत्रों में तो रहते हैं पर उनके एक-दूसरे के क्षेत्रों में आने जाने, दुकानें आदि खोलने तथा ग्राहकों द्वारा वस्तुएँ लेने-देने पर रोक नहीं है।

शासन-सत्ता तथा विशेषाधिकारों से वंचित होने पर मुसलमानों की आर्थिक स्थिति कुछ गिरी हुई हो गई थी, उनमें से अनेक परिवारों के अरब देशों में जाने से तथा वहाँ से बहुत अच्छी मात्रा में धन प्राप्त करने से उनकी आर्थिक स्थिति काफी कुछ सँभल गई है तथा वे हिंदुओं तथा जैनों से बराबरी करने लगे हैं। कुछ सामंतवादी, रूढ़िवादी तथा स्थानीय लोग कट्टरता के आधार पर अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहते हैं।

यहाँ मुसलमान धार्मिक, सांस्कृतिक तथा भाषायी रूप से अल्पसंख्य हैं और अधिकांशत: अशिक्षित हैं। वे अन्य संप्रदायों की तुलना में अपेक्षाकृत कम मात्रा में अपनी संतानों को शिक्षा हेतु सरकारी शिक्षण-संस्थाओं में भेजते हैं। प्रारंभिक स्तर में वे मौलवियों के पास धार्मिक तथा 'उर्दू' शिक्षा हेतु मदरसों में अवश्य जाते हैं।

उनका पहिनावा (दाढ़ी, बुरका आदि) रीति-रिवाज, जीवनचर्या आदि भी परंपरागत ही है तथा उसे वे बदलने में रुचि नहीं रखते।

प्रायः हिंदुओं के एक भाग के धर्मांतरित होने के कारण वे हिंदू रीति-रिवाजों को तो अच्छी तरह समझते हैं, किंतु जैनधर्म आदि के बारे में अनभिज्ञ हैं तथा उन्हें हिंदुओं का ही एक भाग मानते हैं। जैन लोग हिंदू सामाजिक जीवन से मिलते हैं तथा सक्रिय रूप से उनके उत्सवों, त्योहारों आदि में भाग लेते हैं, जबकि मुसलमान उतना नहीं कर पाते।

आजीविका, उद्योगधंधों, व्यवसायों आदि दृष्टियों से वे एक-दूसरे से पृथक् हैं। दोनों अनुसूचित या हरिजन वर्गों से पहले जैसा ही व्यवहार करते हैं, चाहे उन्हें सरकारी पद मिल गए हैं या शिक्षित आदि हो गए हैं।

नारनौल में बहुसंख्य हिंदू संख्या में अधिक होते हुए भी अपने-आपको अल्पसंख्यकों के बराबर ही अनुभव करते हैं। मुसलमान संख्या में कम होते हुए भी पूर्व शासक वर्ग होने, अरब देशों से प्राप्त आमदनी के कारण धनी होने अधिक जागरूक तथा पृथक्ताभाव रखने के कारण अधिक प्रभावपूर्ण हैं तथा वे अन्य बहुसमुदायों में अपने-आपको कम नहीं समझते। वे संगठित होकर चुनाव में भाग लेते हैं तथा उनके प्रतिनिधि पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद् तथा राज्यस्तर पर सक्रिय हैं। उनके राजनीतिक स्तर पर मुसलमानों के हितों को प्रभावित करने तथा प्राथमिकता देने वाले राजनीतिक दलों से अधिक रुचि रखते हैं। कुछ लोगों की राष्ट्रशक्ति बँटी हुई भी दिखाई पड़ती है, भले ही उनका सीधा संबंध नहीं हो। इसका कारण यह भी है उनके कुछ ऐसे संबंधी पाए जाते हैं तथा उनके संबंध निरंतर बने हुए हैं। अधिकांशतः राष्ट्र, राज्य या समाज को अपने धर्म से ऊपर नहीं मानते। वे पृथकता या अपनी ही विशेष पहचान बनाए रखना चाहते हैं, लेकिन ये सब वे कानून एवं संविधान तथा सामाजिक मान्यता की सीमा में रहकर ही करना चाहते हैं।

'सांप्रदायिक सद्भाव' के महेंद्रगढ़-नारनौल के प्रतिमान की विशेषताएँ समष्टि तथा व्यष्टि संदर्भ से उत्पन्न हैं। हरियाणा की ऐतिहासिक घटनाओं, देशी रियासतों, सांप्रदायिकता से मुक्त प्रभाव, कृषिप्रधान सामंतवादी अर्थ-व्यवस्था, निर्धनता, आंशिक तथा भौगोलिक दूरियाँ इसमें पृष्ठभूमिगत कारक हैं। स्वतंत्रता के बाद काँग्रेस का दीर्घकालीन शासन एवं संविधान का प्रभावी क्रियान्वयन भी प्रेरक तत्त्व हैं। स्वयं ही संपूर्ण हरियाणा की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विशेषताओं का व्यष्टि में भी पाया जाना है। यद्यपि महेंद्रगढ़-नारनौल की भी अपनी विशेषताएँ हैं। महेंद्रगढ़ यदि विशाल, विविधतापूर्ण तथा आधुनिकता की ओर आमुख है तो नारनौल में मुसलमान शासकों में से अधिकांश का हिंदू (राजपूत) से धर्मांतरित होना तथा उनकी पुरानी छाप को बनाए रखना है।

अंत में, इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय राजव्यवस्था में 'सांप्रदायिक सद्भाव' को नए सिरे से स्थान दिया जाए तथा 'अल्पसंख्य' और 'बहुसंख्य' की धारणाओं को वास्तविक बनाया जाए। कोई भी भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का अनुभवपरक राजनीतिक सिद्धांत विकसित नहीं किया जा सकता। यदि उसे वास्तविक 'सांप्रदायिक सद्भाव' की धारणाओं पर आधारित नहीं किया जाता। हरियाणा का 'सांप्रदायिक सद्भाव' महेंद्रगढ़ नारनौल प्रतिमान अन्य क्षेत्रों में शोध के लिए मार्गदर्शन का काम दे सकता है तथा नीति-निर्माताओं, राजनेताओं, प्रशासकों तथा नागरिकों को दिशा-निर्देश दे सकता है।

 ISSN 0975-735X

मुगल और बघेल संबंध : एक अध्ययन

डॉ॰ अनिलकुमार सिंह
अतिथि विद्वान इतिहास
शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म॰प्र॰)

शोधसार : मुगलों तथा बघेलों के संबंध 1527 ई॰ के खानवा युद्ध से प्रारंभ होते हैं। इस युद्ध में गहोरा के बघेल राजा वीरसिंह ने बाबर के विरुद्ध राणा सांगा का साथ दिया था। खानवा युद्ध में बाबर को विजय प्राप्त हुई। बाबर बहुत ही दूरदर्शी शासक था। वह उत्तर भारत तथा दक्षिण के कटिबंधक्षेत्र विन्ध्यांचल के महत्त्व को समझता था। बाबर ने पराजय के बावजूद वीरसिंह के राज्य को वापस कर दिया और उसे अपने राजनीतिक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। मुगलों एवं बघेलों के संबंध अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा शाहआलम द्वितीय तक प्रगाढ़ बने रहे। रीवा में ही मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय की पत्नी लालबाई से अकबर सानी पैदा हुआ था। यह अकबर सानी आगे चलकर मुगल गद्दी पर बैठा। मुगलों तथा बघेलों के संबंध कई सदियों तक बने रहे। बघेलों ने मुगलों की विषम परिस्थितियों में भी हरसंभव मदद की। मुगलों का सूर्य जब डूबने वाला रहा था, वे भारत के नाममात्र के बादशाह रह गये थे, तब भी बघेलों ने मुगलों को धोखा नहीं दिया और उनका साथ हमेशा निभाते रहे।

परिचय : बघेलों का शासन विंध्याचल में बघेलखंड में स्थापित था। समय-समय पर इनकी राजधानी बदलती रही, पहले इनकी राजधानी गहोरा, बांधवगढ़, फिर रीवा बनी। बघेलों का मुगलों से संबंध राजा वीरसिंह से शुरू होता है। राजा वीरसिंह गहोरा राज्य के शासक थे। खानवा के युद्ध से 'मुगल-बघेल' संबंधों की शुरुआत होती है। 1527 ई॰ में खानवा का युद्ध हुआ। इस युद्ध में बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के साथ अनेक राजपूत राजाओं ने भाग लिया था। इन्हीं राजपूतों में वीरसिंह भी था। बाबरनामा में इस बात का उल्लेख है कि उत्तर भारत की दस शक्तियों ने भी बाबर के विरोध में खानवा के मैदान में युद्ध किया था।[1] खानवा में राणा सांगा एवं अन्य राजपूतों के साथ गहोरा का बघेल राजा वीरसिंह भी पराजित हुआ था।[2] खानवा की विजय के बाद बाबर ने बघेल राजा वीरसिंह की स्थिति एवं महत्ता को देखते हुए उसका राज्य उसे नानकार में सहर्ष लौटा दिया था।[3] नानकार जागीर का आशय है कि 'नान' का अर्थ है, 'रोटी'[4] अर्थात वह जमीन जो सेवक को उसके गुजारे के लिए पुरस्कार के तौर पर दी जाय। यहीं से बघेलों और मुगलों में प्रगाढ़ मैत्री शुरू हुई। अफगान सरदार शेरशाह (शेरखान) से पराजित बाबर के बेटे हुमायूँ की वीरसिंह के बेटे राजा वीरभानु ने बड़ी सहायता की, जिससे शेरशाह वीरभानु से नाराज हो उसे कालिंजर दुर्ग में घेर लिया। यहीं कालिंजर में शेरशाह की मृत्यु हो गई और वीरभानु वहाँ से पलायन कर गया। हुमायूँ के बाद राजनीतिक स्थितियाँ बदलीं तो बघेलों की नीति भी बदली। वीरभानु के बाद उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजा रामचंद्र ने मुगलों की अपेक्षा अफगानों का साथ दिया, जिससे मुगल

बादशाह अकबर नाखुश हुए और उसने बघेल राजा रामचंद्र के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की। गहोरा के वघेल राजा रामचंद्र पराजित होकर बांधवगढ़ चले गए। रामचंद्र ने अकबर से संधि कर ली तथा कालिंजर का दुर्ग अकबर को सौंप दिया। अपने दरबारी संगीतकार तानसेन को बादशाह अकबर के माफ करने पर दे दिया। अकबर व रामचंद्र के संबंध उनके काल में मुधर बने रहे, लेकिन अकबर की नियति साफ नहीं थी। राजा रामचंद्र के मरते ही अकबर ने बांधवगढ़ को अपने अधिकार में लेने का प्रयास किया। रामचंद्र के उत्तराधिकारी पुत्र वीरभद्र के आकस्मिक निधन के बाद अकबर ने वीरभद्र के सौतेले पुत्र दुर्योधन को उत्तराधिकारी बनाना चाहा, जिससे बघेल मुगल संबंधों में खटास पैदा हो गई।

वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य ने केमोर के उत्तर में स्थित रीवा को अपनी राजधानी बनाया। यहीं से बांधवगढ़ के स्थान पर रीवा बघेलों की राजधानी बन गई।[5] विक्रमादित्य तथा मुगल बादशाह जहाँगीर के बिगड़ते संबंधों को सुधारने में शहजादे खुर्रम ने विशेष भूमिका निभाई। बघेल राजा अमरसिंह मुगल बादशाह शाहजहाँ समकालिक शासक हुए। राजा अमरसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र अनूपसिंह रीवा राज्य की गद्दी पर बैठे। इसी समय ओरछा राजा पहाड़सिंह ने रीवा राज्य पर आक्रमण किया तथा रीवा को लूटा। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने राजा अनूपसिंह को उनका राज्य वापस लौटा दिया। बघेलनरेश भावसिंह, मुगल बादशाह औरंगजेब के समय गद्दी पर बैठे, उनके बाद उनका गोद लिया हुआ पुत्र अनिरुद्धसिंह गद्दी पर बैठा। अनिरुद्धसिंह के मरणोपरांत उनका पुत्र अवधूतसिंह रीवा राज्य की गद्दी पर बैठा। वे मुगल बादशाह बहादुरशाह के समकालिक शासक थे। इन बघेलों और मुगलों के बीच सत्ताप्राप्ति की भावना होते हुए भी आत्मिक संबंध बने रहे। मुगल बादशाहों की गिरती स्थिति में भी बघेल शासक उनका सम्मान करते रहे और उनके मधुर संबंध बने रहे।

राजा अजीतसिंह और मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय

बघेल राजा अजीतसिंह ने अपने शासनकाल में मुगलों से सद्भावनापूर्ण व्यवहार बनाए रखा। मुगल बादशाह आलमगीर द्वितीय (1754-59ई॰) के बड़े पुत्र शाह आलम द्वितीय (1759-1806 ई॰) की सहायता करते रहे। राजा अजीतसिंह एवं शाह आलम द्वितीय लगभग एक ही उम्र के थे। उत्तरकालीन मुगल बादशाह अकबर द्वितीय का जन्म बघेलखंड के मुकुंदपुर की गढ़ी में राजा अजीतसिंह के आश्रय एवं संरक्षण में हुआ था। इससे मुगल-बघेल संबंधों की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी इतिहास में जुड़ती है। एक मुगल बादशाह की गर्भवती बेगम का रीवा राज्य शरणस्थल क्यों बना? ऐसी कौनसी राजनीतिक परिस्थिति थी? इससे दिल्ली के सत्तासंघर्ष का पता चलता है। जब अकबर द्वितीय का जन्म रीवा राज्य के मुकुंदपुर में हुआ, उस समय उसका पितामह आलमगीर द्वितीय दिल्ली का शासक था। वह बहुत ही कमजोर एवं वृद्ध हो गया था। उसका वजीर उसकी हत्या करना चाहता था। मराठे भी दिल्ली दरबार में षड्यंत्र रचते थे। इस समय शहजादा शाह आलम ने अपने अस्तित्व एवं हितों की रक्षा के लिए अवध के नबाव की सहायता से सेना की एक टुकड़ी लेकर सन् 1758 ई॰ में पटना पर चढ़ाई कर दी। अँग्रेज सेनापति लार्ड क्लाइव ने उसका सामना किया। शाह आलम पराजित हो गया। इसी समय उसकी बेगम मुबारक महल उर्फ लालबाई गर्भवती थी। अँग्रेजों का खतरा उस पर मँडरा रहा था। इस संकटकालीन विषम परिस्थिति

 ISSN 0975-735X

में शाह आलम द्वितीय को उस घटना की याद आई, जब उसके पूर्वज हुमायूँ को बांधवगढ़ के बघेल राजा वीरभानु ने सहायता प्रदान की थी।

शाह आलम द्वितीय ने रीवा राजा अजीतसिंह के पास आश्रय के लिए पत्र भेजा।[6] रीवा राजा अजीतसिंह ने अपने दीवान को शहजादा को लाने के लिए भेजा। राजा अजीतसिंह ने शाह आलम द्वितीय एवं उनकी गर्भवती पत्नी मुबारक महल को मुकुंदपुर की गढ़ी में रुकवाया।[7] शाह आलम द्वितीय ने रीवा के बिछिया नदी के तट पर नमाज अदा की, जिसे आज भी बादशाही मस्जिद के नाम से जाना जाता है। शाह आलम द्वितीय अपनी गर्भवती बेगम को रीवा राजा अजीत सिंह के संरक्षण में छोड़कर अक्टूबर 1759 ई॰ के अंत में रीवा से बिहार आ गए। 20 दिसंबर 1759 ई॰ को अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुना। उसी दिन उसने अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया। राजा अजीतसिंह ने बेगम मुबारक महल उर्फ लालबाई को मुकुंदपुर की गढ़ी में सुरक्षा व्यवस्था के साथ ठहरा दिया। 1759 ई॰ (6 रमजान 1173 ई॰) बेगम लालबाई से अकबर सानी पैदा हुआ।[8] बघेलखंड में अकबर सानी के जन्म होने के कारण उसकी छठी का संस्कार मुकुंदपुर की गढ़ी में किया गया था।

जब शाह आलम द्वितीय बिहार से वापस इलाहाबाद लौटे, तब उन्होंने अपनी बेगम लालबाई और बच्चे को रीवा से बुलवाया।[9] राजा अजीतसिंह स्वयं बेगम लालबाई और अकबर सानी को लेकर इलाहाबाद गए। मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय राजा अजीतसिंह के उपकारों से अत्यधिक खुश हुए। रीवा राजा अजीतसिंह के उपकारों से खुश होकर शाह आलम द्वितीय ने चौखंडी का परगना रीवा राज्य को दे दिया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि वघेल राजा अजीतसिंह ने अपनी विषम परिस्थितियों में भी कई सदियों से चली आ रही मित्रता को निभाते हुए मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय की हर संभव सहायता करने की कोशिश की, जबकि मुगलसत्ता का सूर्य डूबनेवाला था और वे भारत के नाममात्र के बादशाह रह गए थे। इन संबंधों के परिणामस्वरूप ही शाह आलम द्वितीय का विश्वास रीवा राज्य के बघेल राजा अजीतसिंह के प्रति अधिक झलकता है, जिसके कारण शाह आलम द्वितीय अपनी गर्भवती बेगम के साथ अन्यत्र कहीं जाने की अपेक्षा रीवा राजा अजीतसिंह के संरक्षण में आना अधिक उपयुक्त समझा। रीवा राजा अजीतसिंह के संरक्षण में जन्मा अकबर सानी आगे चलकर मुगल बादशाह बना। बघेलों एवं मुगलों के संबंध लंबे समय तक प्रगाढ़ बने रहे।

संदर्भ

1. रिजवी, बाबरनामा (अनु॰) मुगलकालीन भारत बाबर, पृ॰ 239
2. वही, पृ॰ 239
3. जीतनसिंह, रीवाराज्य दर्पण, पृ॰ 54
4. मुहम्मद मुस्तफा खाँ, उर्दू हिन्दी शब्दकोज़-1992, पृ॰ 347
5. मथुरालाल शर्मा, (अनु॰) तुजुक-ए-जहाँगीरी, पृ॰ 87
6. यादवेंदसिंह, रीवा राज्य का इतिहास, पृ॰ 82, अग्निहोत्री गुरु रामप्यारे, रीवा राज्य का इतिहास, पृ॰ 68
7. ए॰एल॰ श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ॰ 447
8. मौलवी रहमान अली, तवारीख-ए-बघेलखंड, पृ॰ 54, जीतनसिंह, रीवाराज्य दर्पण, पृ॰ 64
9. यादवेंदसिंह, रीवा राज्य का इतिहास, पृ॰ 83

कृषि विपणन-व्यवस्था : छतरपुर जिले के विशेष संदर्भ में

डॉ॰ बलराम चौरसिया
अतिथि विद्वान अर्थशास्त्र
शासकीय नवीन महाविद्यालय नौगाँव, छतरपुर (म॰प्र॰)

प्राचीनकाल में कृषि को लोग जीवनयापन का साधन मानते थे, वस्तुओं का लेन देन प्राय: वस्तुविनिमय प्रणाली के माध्यम से हुआ करता था। कृषि विपणन का कार्य उतना विकसित नहीं था जितना कि वर्तमान में है। सभ्यता के विकास से व्यक्तियों की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्यान्न पदार्थों की माँग दिनों दिन बढ़ने लगी तथा खाद्यान्न के क्रय की समस्या ने कृषि विपणन-व्यवस्था को जन्म दिया।

छतरपुर जिले में कृषि विपणन-व्यवस्था

छतरपुर जिले में विपणन-व्यवस्था नियमित मंडियों की स्थापना के पूर्व आढ़तियों, व्यापारियों, दलालों तथा घूमते, फिरते छोटे व्यापारियों के द्वारा संचालित होती रही है। पूर्व की व्यवस्था में किसानों का शोषण अधिक होता था तथा किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य मिलने का कोई विकल्प नहीं था। इन लोगों द्वारा ही विपणन-संबंधी कार्य किए जाते थे। जबसे राज्य शासन द्वारा नियमित कृषि उपज मंडियों का गठन किया गया है कृषकों को शोषण से मुक्ति मिली है तथा उनको अपने कृषि उत्पादनों का अच्छा मूल्य मिला है और उनके जीवन स्तर में सुधार भी हुआ है। वर्तमान में छतरपुर जिले में पाँच कृषि उपज मंडियाँ तथा इनकी कुछ उपमंडियाँ हैं जो जिले के विपणन-व्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

विपणन के प्रकार

विपणन दो प्रकारों में विभाजित किया किया जा सकता है।

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष।

प्रत्यक्ष विपणन में मध्यस्थों की अनुपस्थिति में विक्रय होता है यद्यपि विक्रेता कृषक, सौदा करवा देने वाले, यातायात, संग्रहण तथा विपणि सूचना देने वाले माध्यमों का प्रयोग करता है फिर भी वास्तविक विक्रय उत्पादक से उपभोक्ता को होता है। ऐसा विक्रय सीधे घर में सड़क के किनारे या फुटकर बाजारों में होता है प्रत्यक्ष विपणन होने के लिये कुछ तत्त्व उत्तरदायी हैं जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत हाट/बाजार होना मंडी या बाजारों की दूरी, उपज की थोड़ी मात्रा यातायात सुविधा की कमी और कठिनाई, साहूकारों का अस्तित्व आदि । ऐसा विक्रय अधिकांशत: मूल्य को ध्यान में रखे बिना किया जाता है 'अखिल भारतीय साख सर्वेक्षण 1951-52 के अनुसार

 ISSN 0975-735X

समय के साथ-साथ यह प्रतिशत तेजी से गिर रहा है फिर भी आज प्रत्यक्ष विपणन होता है छतरपुर जिले में गेहूं विपणेय अतिरेक का लगभग 20 प्रतिशत आज भी प्रत्यक्ष विधि से विक्रय होता है। मंडियों के विकास से प्रत्यक्ष विपणन की उपयुक्त स्थिति प्रभावित हुई है। मंडियों में उपज का एकत्रीकरण आसानी से हो जाता है जैसा कि छतरपुर जिले की जो प्रमुख फसलें गेहूँ, चना, आदि का एकत्रीकरण किया जाता है।

दूसरे प्रकार का विपणन अप्रत्यक्ष रूप से मध्यस्थों, दलाल, आड़तिया के माध्यम से होता है। अप्रत्यक्ष विपणन में मध्यस्थ एकत्रीकरण का कार्य सम्पादित करते हैं प्राथमिक स्थिति में गैर कृषकों में ग्रामीण व्यापारी तथा घुमक्कड़ व्यापारी उपज को एकत्रित करते हैं। छतरपुर जिले में यह व्यवस्था नाममात्र की है अत: इसका महत्त्व जिले के लिये नहीं है। अन्य रूप में प्राथमिक एकत्रीकरण देखने में आता है वह है ग्रामीण साहूकारों द्वारा जो व्यापारी भी होते हैं कृषकों की उपज पूर्व निर्धारित शर्तों पर क्रय कर लेते हैं ऐसे एकत्रीकरण की यह विशेषता है कि यह उत्पादन क्षेत्रों में ही होता है। 'देश के कुल विक्रय योग्य उपज के आधिक्य का 56 प्रतिशत कृषक एकत्रित करते हैं गाँव के व्यापारी व घुमक्कड़ व्यापारी क्रमश: 21 प्रतिशत तथा 18 प्रतिशत योगदान देते हैं शेष 5 प्रतिशत का एकत्रीकरण थोक व्यापारी, सरकारी समितियां मिलों के प्रतिनिधि आदि करते हैं।'[2]

द्वितीयक, स्तर का एकत्रीकरण बड़े उपभोग या वितरण केंद्रों में होता है मंडी भी इस वर्ग में सम्मिलित है यहां मध्यस्थों तथा अन्य कृत्यकारियों की क्रियाएँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। आड़तिया इस शृंखला की वितरण से पूर्व की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। छतरपुर जिले में 60प्रतिशत से अधिक विपणेय अतिरेक का पक्का आड़तिया व्यापार करता है।

जिले में कृषि विपणन के माध्यम

भारत में कृषि उपज विपणन के माध्यम को स्थान के आधार पर दो भागों में बाँटा जाता है एक गाँवों में विक्रय दो विपणियों में विक्रय। यही वर्गीकरण छतरपुर जिले में भी लागू होता है।

अ. ग्रामस्तर पर विक्रय

छतरपुर जिले में किसानों के पास छोटी-छोटी जोतों का बाहुल्य है और उनका विपणेय अतिरेक अपेक्षाकश्त कम होता है। एक ओर विक्रयार्थ उपज की मात्रा का छोटा आकार और दूसरी ओर यातायात न होने से दूरस्थ मंडी में पहुँचना और खर्चीला है। अत: ऐसे कृषक अपनी उपज ग्राम स्तर पर ही निम्नलिखित व्यक्तियों या संस्थाओं को बेच देते हैं–

1. **गाँव का साहूकार महाजन**

गाँव के साहूकार महाजन साहूकारी व्यवसाय करने के साथ-साथ कृषक की उपज के एकत्रीकरण करने का कार्य भी करते हैं गाँव के जो कृषक इनके ऋणी होते हैं उनमें पूर्व में ही फसल क्रय करने का सौदा कर लेते हैं कृषक वित्तीय सुविधा प्राप्त होने की लालच में ऐसा विवश होकर करता है चूँकि ऐसा विक्रय बलात् विक्रय होता है अत: कृषक को अपनी उपज का सही मूल्य नहीं मिलता यह वर्ग एकत्रित उपज को शहर के थोक व्यापारी को बेंच देता है या मण्डी में विक्रय हेतु प्रस्तुत कर देता है।

2. **गाँव के बड़े कृषक**

ऐसे कृषक उपज का व्यवसाय करने के दृष्टिकोण से गाँवों में उपज क्रय करते हैं। ये कृषक छोटे कृषकों को नकद या उपज के रूप में ऋण देते हैं, जिनसे वे पूर्व निर्धारित शर्तों पर पुनर्भुगतान में उपज ही लेते हैं। सामान्यत: दी हुई फसल का डेढ़ गुना तक ये वसूल करते हैं। यहाँ भी कृषकों को उपज का उचित मूल्य नहीं मिलता। ये बड़े कृषक भी एकत्रित उपज व अपनी उत्पादित फसल को मंडी में लाकर बेचते हैं।

3. **घुमंतु व्यापारी**

कुछ घूमते-फिरते व्यापारी कृषकों से संपर्क कर उनकी उपज क्रय कर लेते हैं और किसी मध्यस्थ को या प्रत्यक्षत: मंडी में विक्रय करते हैं। ये व्यापारी कुछ निश्चित गाँवों में भ्रमण करते हैं, जिसके कारण कृषकों से इनका परिचय हो जाता है। इस दशक के पूर्व ये व्यापारी उपज को कम मूल्य पर क्रय करने में सफल हो जाते थे, लेकिन इनमें प्रतिस्पर्धा बढ़ने से कृषकों को उनकी उपज का लगभग उचित मूल्य मिलने लगता है।

4. **आड़तिया या प्रतिनिधि**

आड़तिया या प्रतिनिधि कृषकों से नकद फसल को कारखानों के लिए या निर्माताओं के लिए कमीशन पर ग्रामस्तर पर ही क्रय कर लेते हैं। छतरपुर जिले में नकदी फसलों का उत्पादन उतना नहीं होता। मूँगफली या सोयाबीन का विक्रय अधिकांश मंडी में ही करते हैं।

5. **सहकारी समितियाँ**

ग्रामस्तर पर सहकारी समितियाँ भी उपज एकत्रित करती हैं। इस प्रकार के एकत्रीकरण से छोटे किसानों को परिवहन व्यय, मजदूरी तथा संग्रहण व्ययों की बचत तो होती ही है, वे विपणन की कठिनाइयों से भी बच जाते हैं उन्हें भुगतान भी तुरंत मिल जाता है। उपज एकत्रित करने वाली एजेंसी कृषक की परिचित होती है। अत: जहाँ तक संभव होता है वह अपनी ओर से शर्तें रखने में स्वतंत्र होती हैं।

उपर्युक्त एजेंसियाँ क्रय किए गए माल को वर्गीकृत स्वयं करती हैं। इनके द्वारा एकत्रीकरण पहला ग्रामस्तर पर और दूसरा मंडीस्तर पर होता है। ग्रामस्तर पर एकत्रित उपज मंडी में विक्रयार्थ प्रस्तुत की जाती है।

विपणियों में विक्रय

कृषक जब अपनी उपज गाँव में नहीं बेचता तो वह उसे विपणि में विक्रय करने हेतु प्रयत्न करता है या सरकार द्वारा स्थापित खरीदी केंद्रों पर उपज दे देता है। विपणियाँ बेकार पड़ी भूमि या सड़क के किनारे अव्यवस्थित होती हैं या कभी-कभी व्यवस्थित ढंग की स्वतंत्र चबूतरों वाली होती हैं। विपणियों को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। विपणन प्रतिवेदन में विपणियों को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया गया है–

1. प्राथमिक ग्रामीण विपणियाँ / सामयिक विपणियाँ।
2. द्वितीयक विपणियाँ / दैनिक विपणियाँ।
3. सीमांत विपणियाँ/ तत्काल व भावी विपणियाँ।

 ISSN 0975-735X

प्राथमिक ग्रामीण विपणियाँ

प्राथमिक ग्रामीण विपणि में हाट या ग्रामीण बाजार सामयिक होते हैं। दो सप्ताह में एक या दो बार लगते हैं। ये हाट न केवल विक्रयकेंद्र होते हैं बल्कि उस क्षेत्र की संस्कृति को भी व्यक्त करते हैं। जहाँ सड़कें होती हैं वहाँ हाट का क्षेत्र बड़ा हो जाता है। औसत 1 बाजार 15-16 किमी के घेरे को सम्मिलित करता है। सामान्यत: छोटे कृषक अपनी थोड़ी उपज विक्रय हेतु लाते हैं, कृषक भी अपनी एकत्रित उपज यहाँ लाकर बेचते हैं, जिन्होंने उसे अपने पारिश्रमिक के बदले में प्राप्त किया था और उपज को बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

छतरपुर जिले में हरपालपुर, नौगाँव, महाराजपुर, गढ़ी मलहरा, बिजावर, बड़ा मलहरा आदि में बाजार लगते हैं, जहाँ कृषक अपनी उपजों को ले जाकर बेचते हैं। तथा इसी प्रकार अन्य छोटे कस्बों में भी लगने वाले बाजार जैसे–मांतगुवाँ, मनकारी, आलीपुरा, संजयनगर, टटम, लुगासी, निवारी आदि की व्यवस्था भी इसी प्रकार हैं। ये सब मिश्रित बाजार हैं। इन विपणियों में विपणी प्रभार लगभग समान हैं।

द्वितीय विपणियाँ

ये विपणियाँ मंडी, दैनिक और थोक विक्रय के केंद्र होते हैं। यह संगठित या असंगठित होती हैं। इनका संचालन भी स्थानीय सत्ता द्वारा या नियमित मंडी होने पर राज्य शासन द्वारा बनाए गए अधिनियम के अंतर्गत मंडी समिति द्वारा होता है। ये बाजार संगठित होते हैं और इनकी स्थापना जिला या तहसील स्तर पर या बड़े कस्बों में होती है। म०प्र० के चावल के थोक बाजार रेलवे स्टेशन के क्षेत्र में हैं तथा पक्की सड़कों से जुड़े हैं। इन विपणियों में बड़ी मात्रा में उपज आती है अत: ये संग्रहण सुविधाओं तथा अन्य सुविधाओं से युक्त होती हैं। आड़तिया व कमीशन ऐजेंटों की दुकानें भी होती हैं। इन दुकानों के सामने खुला स्थान/प्रांगण होता है जहाँ उपज विक्रयार्थ प्रस्तुत की जाती है।

छतरपुर जिले की मंडियों में द्वितीय विपणि कृषि उपज के विपणन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहाँ के आड़तियों से कृषकों के व्यक्तिगत संबंध स्थापित हो गए हैं। अत: कृषक अपनी वित्तीय आवश्यकताएँ इनसे प्राप्त कर पूरी करते हैं। आड़तिया कृषकों को उपज, भंडारण की सुविधा भी देते हैं। इस दृष्टि से भी उन्हें ऋण प्राप्त करने में सुविधा होती है।

सीमांत विपणि

ये वे थोक विपणियाँ होती हैं, जहाँ कृषक द्वारा अपनी उपज अंतिम उपभोक्ता या विधायन कारखाने या निर्यात करने हेतु प्रस्तुत की जाती है। इनमें संग्रहण की क्षमता अधिक होती है अत: गोदाम रसीदों पर बैंकों से वित्तीय सुविधा प्राप्त हो जाती है।

नियमित मंडियों द्वारा विपणनकार्य

छतरपुर जिले में पाँच कृषि उपज मंडियाँ हैं। छतरपुर मंडी, हरपालपुर मंडी, बडामलहरा मंडी, राजनगर मंडी, लौडी मंडी कृषि विपणन-व्यवस्था में अपना सराहनीय योगदान दे रही हैं। इससे किसानों को उपज का उचित मूल्य मिल रहा हैं। मंडियों का गठन वर्ष, श्रेणी नीचे तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका

छतरपुर जिले की कृषि उपज मंडियों की जानकारी

क्र॰	मंडी	श्रेणी	स्थापना वर्ष	प्रांगण का क्षेत्रफल (एकड़ में)	अधीनस्थ उपमण्डी
1	छतरपुर	स	22.02.1969	30	ईशानगर
2	हरपालपुर	स	29.11.1978	8.15	नौगाँव, आलीपुरा
3	बडा मलहरा	स	13.01.1977	11	घुवारा
4	राजनगर	द	01.11.1975	9.67	
5	लौडी	स	11.02.1969	11.01	चंदला, सरवई

स्त्रोत : म॰प्र॰ कृषि उपज मंडी अधिनियम डॉ॰ राधेश्याम द्विवेदी 2007 पृष्ठ 58

जिले की कृषि विपणन-व्यवस्था में हाट, बाजारों, साहूकार, महाजन, घुमंतु व्यापारी, आड़तियों, दलालों के अलावा म॰प्र॰ शासन द्वारा स्थापित नियमित कृषि उपज मंडियों की भूमिका भी अत्यधिक सराहनीय हैं। जिले में पाँच कृषि उपज मंडियाँ हैं, जहाँ पर जिले के समस्त क्षेत्रों से कृषक अपनी उपजें मंडियों में लाकर बेचते है। मंडियों की स्थापना से कृषकों को उचित मूल्य भी मिलने लगा है। तथा उनका शोषण भी कम हुआ है। दलालों, साहूकार, महाजन तथा गैर अनुज्ञप्ति धारी व्यापारियों पर अंकुश लगाकर विपणन-व्यवस्था को और भी सुधारा जा सकता है, जिससे दोहरा लाभ होगा। एक तो किसानों को शोषण से मुक्ति मिलेगी तथा मंडियों की आय में वृद्धि होगी।

संदर्भ

1. ग्रामीण साख समिति रिपोर्ट, भारत सरकार 1951-52 खंड-2, पृ॰ 101
2. डॉ॰ तुलसीदास शर्मा एवं सुमनचंद जैन, बाजार व्यवस्था 1986 साहित्य भवन, आगरा, पृ॰ 22
3. म॰प्र॰ कृषि उपज मंडी अधिनियम डॉ॰ राधेश्याम द्विवेदी 2007, पृ॰ 58
4. Govil K.L. Marketing in india, Gautam Brokar's & Comp. Ltd. Kanpur 1977, P. 128
5. Govt. of India Report of the Royal Commission on Agriculture in India 1948, P. 388
6. Govt. of India Report of the Royal Commission on Agriculture in India 1988 P. 196
7. Govt. of India Report of Rural Marketing & Finance National Planning Committee 1957, P. 78

 ISSN 0975-735X

CONCERN FOR HUMAN RELATIONSHIPS IN THE POETRY OF A.K. RAMANUJAN

Randhir Singh
M.Phil.

A.K. Ramanujan is one of the poets of new gust. Apart from being a major Indian poet in English, Ramanujan has been a sought after teacher of Dravidian studies and Linguistics, South Asian Languages and Civilization and Anthropology in the United States. Expatriation is often thought of as a breach or rift : as a break between the self and its home that is beyond repair. Prof. M.K. Naik in his article "A.K. Ramanujan and the search for Roots observes:

> It is perhaps his long sojourn abroad that explains Ramanujan's persistent obsession with his Indian past both familial and racial, and it is this obsession that constitutes a major theme in all his poetry.

Memory becomes a vital factor in keeping alive his relationship with India, within and without. Every poem bears testimony to the presence of the past, the vital relationship with people, with family, culture, language and country.

Many of the poems in the volume Relations, focus on his individual relationships and their effect on his poetic consciousness. The mental image of the old mother picking up a grain of rice from the kitchen floor turns on his memory of his mother in different stages-the silk and white petal of her youth, her running back from rain to the crying cradles, and then her wrinkled hands in old age like a wet eagle's. These poetic images reveal his controlled grief and deep love for the mother :

> My cold parchment tongue licks dark
> In the mouth when I see her four
> 'still' sensible fingers slowly flex
> to pick a grain of rice from the kitchen floor.

In "Obituary" from Relations, the father's death does not seem to come as a traumatic experience, however, it has certainly left the family

context changed in a perceptible way. The legacy is "rich" :

dust
on a table full of papers
left debts and daughters
a bed-wetting grandson
named by the toss
of a coin after him…

The details of the fathers legacy are instance of the typical wry humour of Ramanujan. The ordinariness of the father is amply exposed: he was obscure like a million others, hence, unlikely to claim or command and public honour and popularity. Even so, lo and behold :

he got two lines
in an inside column
of a madras newspaper
sold by the kilo.

The incident makes only a little difference to the poet but the true recipient of the indelible world is the mother now. The linear progression of the detail directly down to the changed mother leaves a powerful impact on the reader's mind especially in view of the miserable, solitary and sad life of a Hindu widow in the mother's image.

Memory plays a special creative role in the poem, "Looking for a cousin on a swing". It is a childhood experience viewed, analysed and assessed from an adult perspective. The cousin's initiation from innocence to awareness of the libidinous self is presented with deliberate dubiousness:

Now she looks for the swing
in cities with fifteen suburbs
and tries to innocent about it
not only on the crotch of a tree
that looked as if it would burst
under every leaf
into a brood of scarlet figs.

"Love poem for a wife – I" tries to analyze the cause of the emotional rift between the persona and his wife, and attributes the lack of a feeling of emotional oneness to an unshared childhood. The poem records nostalgic recollections of both his and his wife's past. The images in a wedding picture of his father wearing a turban and his mother wearing silver rings on her second toe are as important as the image of the wife's father pacing to and

fro awaiting the daughter's late return after she thought "was an innocent date with a nice Muslim friend! Who only hinted at touches". The persona realizes that total emotional understanding between husband and wife is impossible to achieve.

Or we should do as well-meaning
Hindus did,
betroth us before birth,
forestalling separate horoscopes
and mother's first periods,
and wed us in the oral cradle
and carry marriage into
the namelessness of childhoods.

The tone shows a longing for the impossible, for the presence of absent people and places, and a desire to replenish emotional springs with new relationships.

Family as an institution is glorified in "Small scale reflections on a Great House". The carefully worked out imprecision of the poem, images extended, crowded yet telling details and some even unnecessary and deft repetitions suggest the ever enlarging family, the composition of which is as vague as the relationships. The relationships, however, vague and distant they may be, are important, and therefore each is sure of his or her respective slot in the family institution.

Every component/person could lose his or her individual identity or make up for the lack of it and take on the familial identity, Ramanujan's poem gives a long catalogue of such possibilities :

Sometimes I think that nothing
that ever comes into this house goes out. Things come
in everyday
to lose themselves among other things
lost long ago among
other things lost long ago;

The poem is also a tribute to the grate tradition of large joint family. But it is, more than anything else, concerned with the crowded memories that will never leave the poet, relationships that he would never let go, the ones that makes up a family and sustain him wherever he may be.

Finally, it is the rootedness in one's own culture and the relatedness to one's family and people that offer emotional stability to Ramanujan. The

assurance of this basic relationship has enabled him to successfully connect himself to the outside world. The values of acceptance and accommodation inherited from the culture of the Great House helped him to open his doors and himself to others and other cultures.

Even the relationship with those who are dead is not irrelevant, with the help of an active memory, the past is activised, and interaction between the past and the present continues. Real events of the past come processed, bearing new meaning for the present. Memory helps to retrieve details, reinterpret them, re-arrange them for the better understanding of the present. There is no lack or fear of a loss of connection as long as there is memory. The poet thus lives in both the worlds – inner and outer-both equally vivid and vital. Memory makes the coexistence and integration of both worlds possible, provides impetus for work and progress, and in these ways enables the artist to see life steadily' and to 'see it whole'.

WORKS CITED AND CONSULTED

1. Bhatnagar, M.K., ed. The Poetry of A.K. Ramanujan. New Delhi: Atlantic Pub., 2002
2. Dharwadker, Viney, ed. The Collected Essay of A.K. Ramanujan. New Delhi, 1999
3. Dharwadka, V. and A.K. Ramanujan, ed. The Oxford Anthology of Modern Indian Poetry. Delhi: Oxford University Press, 1994
4. Naik, M.K. the Critical Musings in Indian English Poetry. New Delhi: Prestige Books, 2000
5. Parthasarathy, R., ed. Ten Twentieth-century Indian Poets. New Delhi: Oxford University Press, 1976
6. Rukhaiyar, U.S. and Amar Nath Prasad eds. Studies in Indian Poetry in English. New Delhi: Sarup and Sons Pub., 2002

Teh. Matanhail
Distt. Jhajjar
Haryana124146
E-Mail: rjakhar98@gmail.com
Ph. 08901007201

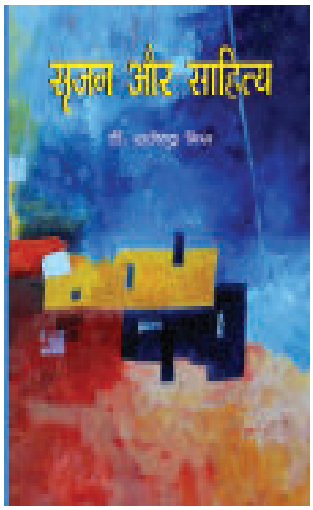

'सृजन और साहित्य' के बीच खड़ा एक आलोचक

डॉ॰ रमेश तिवारी

साहित्य का मार्ग संवेदनशीलता से होकर गुजरता है। एक लेखक के लिए संवेदनशीलता उसका अनिवार्य गुण है। बिना संवेदना के सृजन असंभव है। सृजन जब लोक से, जन से जुड़ जाता है तो वह साहित्य की श्रेणी में आ जाता है। 'सृजन और साहित्य' डॉ॰ राजेंद्र मिश्र की सद्यः प्रकाशित आलोचनात्मक कृति है। इस कृति का प्रकाशन हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, उ॰प्र॰ ने किया है। डॉ॰ राजेंद्र मिश्र हिंदी भाषा-साहित्य के क्षेत्र में एक जाना-पहचाना नाम है। इनकी सिर्फ इसी कृति की बात करें तो भी यह रचना लेखक की विद्वता को प्रमाणित करने में पूरी तरह सक्षम है। 'सृजन से साहित्य तक' शीर्षक से प्रस्तुत अपने आत्मकथ्य में लेखक ने लिखा है "सृजन और साहित्य का गहरा संबंध है। सृजन की भाषा संवेदना की भाषा होती है। हमारे विचार हमारी अनुभूति से ही संचालित होते हैं। 'सृजन और साहित्य' पुस्तक में मेरे 17 निबंध, आलेख और भाषण संकलित है।' (पृष्ठ 8) डॉ॰ मिश्र आज के ग्लोबल समाज और साहित्य के समसामयिक संदर्भों से जुड़कर एक रचनाकार और आलोचक की तीसरी आँख का इस्तेमाल करते हुए गतिविधियों पर बारीकी से निगाह रखते हैं। इन्हीं बारीक निगाहों से देखे गए सच का रचनात्मक विश्लेषण करती है यह पुस्तक। एक तरफ हमारी परंपरागत मान्यतायें हैं तो दूसरी तरफ हमारे साथ-साथ पूरी दुनिया में हो रही हलचलें भी हैं जो हमें चाहे-अनचाहे प्रभावित करती हैं। साहित्य, संस्कृति, भाषा, विज्ञान, तकनीकी, सूचना प्रौद्योगिकी, प्रबंधन आदि के क्षेत्र में हो रहे तमाम नए घटनाक्रमों से जो परिदृश्य निर्मित होता है वह रचनाकार और आलोचकीय दृष्टि से डॉ॰ मिश्र को भी बहुत गहराई से प्रभावित करता है। एक बात है जो इस कृति को अपने आप में विशिष्ट बनाती है, दूसरों से अलग और महत्वपूर्ण बनाती है। वह गुण है इसकी चिंतन-संबंधी गहराई और व्यापक अनुभवफलक का असीम विस्तार। कहना चाहिए कि इस कृति को पढने के बाद पाठकों को यह सहज ही विश्वास हो जायेगा कि इस कृति के लेखक में ज्ञान और अनुभवों की जितनी गहराई है उतना ही उनकी दृष्टि का क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। हमें एक साथ ये दोनों गुण बहुत कम आलोचकों या रचनाकारों में मिलते हैं। जिनके पास ज्ञान की गहराई होती है, उनके पास अनुभव का विशाल परिप्रेक्ष्य नहीं होता और जिनके पास वह विशाल परिप्रेक्ष्य है उनके पास ज्ञान की गहराई नहीं होती। और जब तक ये दोनों एक नहीं होते आप की अभिव्यंजना शक्ति का प्रभाव भला कैसे दिखाई दे सकता है। आपकी कही- लिखी बातों में दम उत्पन्न ही नहीं हो सकता। हमें एक

पाठक के रूप में इस बात का बेहद संतोष है कि यह रचना अपने पाठकों के साथ पूरा-पूरा न्याय करती है।

साहित्य और भाषा का गहरा संबंध बताते हुए लेखक कहता है कि हिंदी ही वह भाषा है जिसे हम भारतवासी संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। उसके द्वारा कहा गया यह कथन न्यायोचित है कि राजनेताओं की क्षुद्र राजनीतियों के कारण ही हिंदी को संपर्क भाषा का वास्तविक पद नहीं दिया गया है जिसकी वह अधिकारी है। अनेक हिंदीतर विद्वानों ने भी इस बात पर अपनी राय प्रकट करते हुए कहा है कि हिंदी ही इस देश की संपर्क भाषा हो सकती है। लेखक का कथन है कि बाजारवाद ने भी भूमंडलीकरण के इस युग में साहित्य को प्रभावित किया है। हिंदी संपर्कभाषा के रूप में हमारी राजनीति के कारण भले ही स्वीकृति न पा रही हो, किन्तु वह संपर्क भाषा बन चुकी है। दक्षिण भारत की हिंदी पत्रकारिता और भारतीय संस्कृति ने दक्षिण को जो योगदान दिया है उससे यह प्रमाणित होता है।' (पृष्ठ 9) इस संग्रह के पहले ही आलेख में 'सृजन और साहित्य' के रिश्तों पर विचार किया गया है। जब हम विचार करते हैं तो सबसे पहले दिमाग में जो बात आती है वह यह कि वास्तव में सृजन है क्या? यह सवाल हमारे सामने बार-बार आता रहता है। इसके उत्तर में मैं तो इतना ही कहूँगा कि जिसकी कमी किसी संवेदनशील व्यक्तित्व द्वारा संवेदनात्मक आधार पर महसूस की जाती रही हो और परिणामस्वरूप संवेदना के धरातल पर ही उस कमी को दूर करने की कोशिश करते हुए जो रचना तैयार अथवा निर्मित होकर हमारे सम्मुख आती है वह सृजन है। फिलहाल हम साहित्य के संदर्भ में ही सृजन की बात कर रहे हैं। हालाँकि यदि इस परिभाषा को साहित्य से इतर भी कसौटी पर कसने की कोशिश की जाये तो भी यह परिभाषा तार्किकता की श्रेणी में ही रखी जायेगी। 'सृजन भी तो संवेदना ही है। सृजन की आंतरिक भाषा संवेदना के शब्दों से बनती है। ...सृजन सौंदर्य है और सौंदर्य ही सृजन।...सौंदर्य में रूप है और रूप में सौंदर्य है।' (पृष्ठ 11) इसे और स्पष्ट करते हुए लेखक आगे कहता है–'सृजन का विचार सृजन की संवेदना से उपजता है। मूल में तो संवेदना है। इसी को क्रोचे ने सहज अनुभूति कह दिया है। कला सौंदर्य है। यह सुंदरता एक ओर अपरूप होती है तो दूसरी ओर विरूप होती है। विरूप भी तो सुंदर होता है। कोई काली लड़की अपना चेहरा आईने में देखती है, वह अपनी सुन्दरता को लगातार निहारती है। सुन्दरता रंग में नहीं होती। वह तो अपने आप में एक आकृति होती है। सर्जना साहित्य बन जाती है। तब हर कोई एक सुंदर आकाश की तरह कई रंगों से भर जाता है।' (पृष्ठ 12) सृजन हमें समृद्ध करता है, हमें मुक्त करता है। आप चाहें तो सुविधा के लिए कह सकते हैं कि सृजन हमें रिलैक्स करता है। ठीक उसी तरह जैसे एक प्रसूता स्त्री प्रसव के बाद रिलैक्स महसूस करती है। वस्तुतः सृजन हमारी स्वतंत्रता का एक लक्षण भी है। हमारी स्वतंत्रता की पहचान है। अनुभूति और रूप के बीच भी अन्योन्याश्रित रिश्ता होता है। अनुभूति के बिना रूप और रूप के बिना अनुभूति बेमानी है। सुन्दरता के बिना सृजन नहीं, सृजन के बिना सुन्दरता नहीं। यही सृजन का साहित्य से और साहित्य का सृजन से संबंध है। साहित्य सृजन है और सृजन ही साहित्य है।' (पृष्ठ 14) बड़ी ही अद्‌भुत बात है यह, किंतु यही सच है।

दीगर है कि आज का युग सूचना-प्रौद्योगिकी का है, प्रबंधन का है, विज्ञापन का है,

 ISSN 0975-735X

मीडिया का है, जनसंचार का है, प्रदर्शनप्रियता और दिखावे का है, बाजार का है। तभी तो आज 'जो दिखता है वही बिकता है' तथा 'और दिखाओ, और दिखाओ' के विज्ञापन की लहर चल पड़ी है। आज का समय ऐसा है कि अस्पताल भी विज्ञापन के भरोसे अपना व्यवसाय कर रहे हैं। मीडिया और जनसंचार के माध्यमों को कभी लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा गया था आज वह चौराहे पर खड़ा हो अपनी बोली ऊँचे दामों में लगता सुनकर फूला नहीं समा रहा। बड़ी ही शोचनीय और चिंता करनेवाली बात है यह। किन्तु इसका आप क्या करेंगे कि यही सच है आज के जमाने का, हमारे-आपके जमाने का सच। और आँखें बंद कर लेने से सच्चाई नहीं बदलने वाली। इसलिए सच्चाई का तो सामना करना ही पड़ेगा। इस बात के लिए हम और आप संतोष कर सकते हैं कि इस संग्रह का लेखक इन खतरों से अपरिचित नहीं है, बेसबब नहीं है, सावधान है। वह कहता है–'जनसंचार माध्यमों ने साहित्य की चेतना को बदल दिया है। साहित्य और कला आधुनिक दबावों से जूझ रहे हैं। ...साहित्य का अब नींद लाने के लिए, बेचौनी दूर करने के लिए, सुंदर सपने बुनने के लिए भी इस्तेमाल किया जा रहा है।' (पृष्ठ 21) आज के जनसंचार के साधनों की हकीकत बड़ी ही शोचनीय है। आज 'जनसंचार माध्यम मनुष्य को यथार्थ से दूर एक सपनों के संसार में ले जाते हैं।' (पृष्ठ 25)

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र हिंदी भाषा और साहित्य के अध्येता और अध्यापक हैं। यही कारण है कि वे पढ़ने-पढ़ाने के क्रम में हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की चुनौतियों से भी जूझते दिखाई पड़ते हैं। 'इतिहास-लेखन' आलेख इनके सारगर्भित चिंतन का ही परिणाम है। इस आलेख में वे कहते हैं कि साहित्य मनुष्य के समाज की संस्कृति की अभिव्यक्ति है।...साहित्य मनुष्य के अंतर्जीवन का इतिहास है।...साहित्य का इतिहास कुछ रचनाओं और रचनाकारों का ही इतिहास नहीं है। उस संस्कृति और समाज का भी इतिहास है, जिससे रचना और रचनाकार जुड़ता है।' (पृष्ठ 29) इस आलेख में लेखक ने बड़े ही विस्तार से यह समझाने का प्रयास किया है कि भाषा साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण करते हुए हमें इतिहास की जरूरत कब और क्यों पड़ती है। कहा जाता है कि यदि हम इतिहास को जानकर उससे सबक नहीं लेते तो इतिहास अपने आप को दुहराता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अतीत में जो गलतियाँ जाने-अनजाने में हो गयी हैं, या की गयी हैं उनके दुष्परिणामों से भविष्य में बचने के लिए इतिहास एक अनिवार्य सबक की तरह है। डॉ॰ मिश्र इस आलेख में भाषा का भी जिक्र करते हैं। वे लिखते हैं 'भाषा ही मनुष्य का भी इतिहास लिखती है। हर भाषा का भी अपना इतिहास होता है। वह अचानक आरंभ नहीं होती। उसकी अपनी एक परंपरा और विकास की प्रक्रिया होती है। आधुनिकता बिना परंपरा के संभव नहीं है। परंपरा और आधुनिकता का गहरा संबंध है।' (पृष्ठ 30)

हिंदीभाषा के बारे में विचार करते हुए उसके इतिहास लेखन का सटीक ब्यौरा लेखक ने प्रस्तुत किया है। गार्सां द तासी से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी तक के द्वारा इतिहास का काल विभाजन और नामकरण का चित्रण करते हुए उन्होंने इन सबके बावजूद जिस अपर्याप्तता का उल्लेख किया है उससे जूझे बिना हिंदी भाषा-साहित्य के इतिहास में कालविभाजन और नामकरण की समस्या को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता है। प्राचीन और मध्यकाल की तो एक बड़ी समस्या मुद्रण व्यवस्था का न होना है जिससे कालक्रम निर्धारण की समस्या समाप्त ही नहीं होती और सारा इतिहास लेखन तथ्यों के बजाय अनुमान पर होने

लगता है जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। इसका परिणाम यह होता है कि जितने लोग उतने मत हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में किस मत को माना जाये, किसे छोड़ा जाये यह संकट खड़ा हो जाता है। अनेक भारतीय-पाश्चात्य विद्वानों का हवाला देते हुए डॉ॰ मिश्र यह स्पष्ट करना नहीं भूलते कि 'इतिहास लेखन केवल आकलन या लेखांकन नहीं है। इतिहास लेखक में साहित्य के सृजन और विकास की समझ होनी चाहिए। सृजन और सौंदर्य के समन्वय से ही साहित्य रचा जाता है। इस रचना का विकास अंकित करना ही साहित्य का इतिहास लेखन है।' (पृष्ठ 34) डॉ॰ मिश्र का सारा जोर इतिहास लेखन के वैज्ञानिक आधार पर है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा जाये, यह आवश्यक है। इसी कारण उसके पुनर्लेखन की आवश्यकता है। उसके मानकों का स्थापन किया जाना चाहिए। साहित्य के इतिहास में एकरूपता की दृष्टि से उस का लविभाजन और नामकरण भी आवश्यक है।....इसी आलेख के अंत में वे यह कहना नहीं भूलते 'साहित्य का इतिहास-लेखन मनुष्य के व्यापक सांस्कृतिक आधार के संज्ञान के बिना संभव नहीं है।' (पृष्ठ 36-37) इसके साथ- साथ 'भाषा और साहित्य' तथा 'साहित्य और राजनीति' शीर्षक से भी लेखक ने भाषा, साहित्य, राजनीति के अंतर्संबंधों को खंगालने का श्रमसाध्य कार्य किया है। यदि हम सूक्ष्मतापूर्वक विचार करें तो यह समझ आयेगा कि भाषा जिसे हम मानव-व्यवहार का माध्यम मानते हैं वह साहित्य सृजन का भी माध्यम है। भाषा के सहारे हम साहित्य रचते हैं। अत: भाषा और साहित्य का रिश्ता पारस्परिक है, अन्योन्याश्रित है। 'यह कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य अलग-अलग नहीं हैं साहित्य अगर सृजन है, तो भाषा उसका माध्यम है।' (पृष्ठ 54)

ऐसे ही साहित्य और राजनीति की बातें होती हैं। कुछ लोगों के मतानुसार साहित्यकार को राजनीति से मुक्त रहना चाहिए तो कुछ का मत है कि राजनीति से साहित्यकार और साहित्य को मुक्त रखने की माँग भी एक तरह की राजनीति है। वास्तव में साहित्य समाज को जोड़कर उसे उसका हक दिलाते हुए गतिशीलता में यकीन रखता है जबकि राजनीति लोगों में भेद डालकर, उन्हें एक-दूसरे से अलग करके, अपनी सत्ता व्यवस्था का मोहरा बनाकर येंन-केन-प्रकारेण सत्तासीन होने का नाम है। साहित्य के केंद्र में समाज होता है राजनीति के केंद्र में अपने दल, संगठन, पार्टी का हित ही सर्वोपरि होता है। अब चूँकि राजनीति के मार्ग में कभी-कभी साहित्य ही बाधक बनकर खड़ा हो जाता है इसलिए अपने मार्ग को बाधाओं से मुक्त रखने के लिए कुछ चालबाज, शातिर दिमाग लोगों की यह माँग या अपेक्षा है कि साहित्य और साहित्यकार को राजनीति से दूर रहना चाहिए। एक तो यह पक्ष है। एक दूसरा पक्ष भी है। वह यह कि समाज में राजनीति हमें सीमित करती है। दूसरों से अलग करती है। ऐसे में यदि हम किसी राजनीतिक दल से संबद्ध होते हैं तो यह समस्या हो सकती है कि हमें अपने संगठन के हित को ध्यान में रखते हुए ही अपनी साहित्यिक गतिविधियों को भी दिशानिर्देशित करनी पड़े। ऐसे में दृष्टि के सीमित होने तथा रचनाकार की स्वतंत्रता बाधित होने का जोखिम भी बढ़ जाता है। लेखक ने इन समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। कई बार जिन देशों में अधिनायकवादी शासन है, वहाँ के साहित्यकारों को अपने देश से निर्वासन का भी सामना करना पड़ा है। जहाँ लोकतंत्र है, वहाँ की बात अलग है। यहाँ का रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति में स्वतंत्र होता है।

आज के युग में जब मीडिया और लोकतंत्र असलियत बन चुके हैं, तब साहित्य का

 ISSN 0975-735X

राजनीति से अलग रहना संभव नहीं है। सत्तातंत्र जब जनता की आवाज नहीं सुनता तो साहित्य को जनजागरण और जनमाध्यम का आधार बनना पड़ता है।' यहाँ लेखक कहता है कि यदि साहित्य वास्तव में राजनीति से अलग हो जाये तो उसकी प्रासंगिकता ही खत्म हो जाती है। साहित्य की राजनीति दलबंदी से जुड़ी नहीं रहती। राजनीति के दो स्वरुप होते हैं। एक तो वह राजनीति, जो पार्टियों से जुड़कर चुनाव में भाग लेती है और सत्ता पर कब्जा करती है। इसमें गुटवाद पनपता है। दूसरी राजनीति वह होती है, जो जनता की आवाज के सहारे सत्तातंत्र को लोककल्याण की ओर प्रेरित करती है। इस अर्थ में साहित्य और राजनीति का अपना संबंध होता है।' (पृष्ठ 56) लेखक का यह कथन गौरतलब है कि जनता का दमन राजनीति करती है और उसके खिलाफ विचार के स्तर पर और कभी-कभी जमीन के स्तर पर भी साहित्य विद्रोह करता है।' (पृष्ठ 56) लेखक अपने पाठकों को यह बताना चाहता है कि 'साहित्य मनुष्य के जीवन की अंतर्गाथा है। इस अर्थ में हमेशा साहित्य किसी-न-किसी रूप में जनमानस से जुड़कर व्यवस्था का सामना करता रहा है।' (पृष्ठ 57) जब भी हम साहित्य पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि साहित्य करता क्या है? लेखक ने ठीक ही कहा है, 'साहित्य वास्तव में अपने समय की तस्वीर सामने रखता है। वह तस्वीर ही सामने नहीं रखता, उसे बदलने का भी काम करता है। ...आज साहित्य हर स्तर पर एक नयी चेतना के साथ रचा जा रहा है। दलित चेतना दमित लोगों की यातनाओं को रच रही है। मराठी साहित्य से यह दलित आंदोलन भारत की सारी भाषाओं में फैल गया है।' (पृष्ठ 60) और इस तरह हम देखते हैं कि साहित्य 'समाज के जरिए राजनीति पर प्रहार करता है। ...इस तरह साहित्य समाज को बदलता है और समाज राजनीति को बदलने का काम करता है।' (पृष्ठ 62) कुछ विशेष अवसरों या अपवादों को छोड़ दें तो हमें यह मानना होगा कि 'साहित्य कभी भी राजनीति का सीधा सामना नहीं करता, किंतु वह समाज और संस्कृति के माध्यम से साहित्य को राजनीति से जोड़ता है।' (पृष्ठ 63) हाँ कभी-कभी कुछ ऐसे अवसर भी साहित्य में आ जाते हैं जब साहित्य और राजनीति बिलकुल आमने-सामने खड़ी नजर आती है। इसे लेखक के ही एक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहूँगा। धर्मवीर भारती ने आपातकाल का विरोध करते हुए जिस 'मुनादी' कविता की रचना की थी, उसे लेखक ने इस संदर्भ में प्रस्तुत किया है। इस ऐतिहासिक कविता का जिक्र यहाँ जरुरी है। जब आपातकाल के दिनों में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सभी देशवासियों के अधिकारों को जब्त कर लिया था तब यह कविता रची गयी थी। आपको भी स्मरण रहे, इसलिए इन पंक्तियों का उल्लेख यहाँ उल्लेख जरुरी है। 'खलक खुदा का / मुलुक बाश्शा का/ हुकुम शहर कोतवाल का..../ हर खासो आम को आगाह किया जाता है/ कि खबरदार रहें/ और अपने-अपने किवाड़ों को अंदर से/ कुंडी चढ़ाकर बंद कर लें/ गिरा लें खिडकियों के परदे/ और बच्चों को बाहर सड़क पर न भेजें/ क्योंकि एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी/ अपनी काँपती कमजोर आवाज में/ सड़कों पर सच बोलता हुआ निकल पड़ा है।' (पृष्ठ 64-65) अतीत की ऐसी अनेक प्रेरक साहित्यिक रचनाएँ आज भी हम जैसे साहित्य के अनेक अनुसंधित्सुओं को प्रेरित करती हैं और करती रहेंगी। यही साहित्य की सार्थकता है। मुझे लगता है साहित्य और राजनीति के रिश्ते को स्पष्ट करने के लिए इससे बेहतर उदाहरण शायद ही कोई और हो। प्रेमचंद ने गलत नहीं कहा था कि साहित्य समाज का दर्पण है। जो समाज में होगा साहित्य में वही तो प्रतिबिंबित होगा। यदि वह प्रतिबिंबित नहीं हो रहा तो कहीं-न-कहीं साहित्य के नाम पर

धोखाधड़ी हुई होगी। बालकृष्ण भट्ट ने भी कहा है कि 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है।'

मुझे आज भी अच्छी तरह याद है, जब मैं एनसीईआरटी, नई दिल्ली के श्यामला हिल्स, भोपाल स्थित क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान के बी॰ए॰, बी॰एड॰, बी॰एससी॰, बी॰एड॰ में अध्ययनरत अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए उन्हें शांत और एकाग्र करने के लिए किसी साहित्यिक प्रसंग की भावपूर्ण प्रस्तुति करता तो वे स्वत: शांत हो जाते। इस पर मैं उन सबसे थोड़ी नाटकीयता के साथ अचानक पूछता–'इतना सन्नाटा क्यों है भाई?' जवाब में विद्यार्थी कहते–'सर! हमलोग थोड़े 'सेंटी' हो गए।' इस पर मैं कहता–'साहित्य हमें संवेदनशील ही तो बनाता है।' मैं कहना यह चाहता हूँ कि हमारी संवेदना का धरातल ऐसा होना चाहिए जो व्यष्टि से आगे बढ़ते हुए समष्टि की ओर अग्रसर हो। आज के संदर्भ की जहाँ तक बात है तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि चूँकि समाज की नियामक शक्ति आज राजनीति है। अब इसे विडम्बना कहें या हमारे समाज की हकीकत, किंतु आज की सच्चाई यह है कि राजनीति समाज पर शासन करना चाहती है। और दूसरी ओर साहित्य समाज (मुख्य रूप से कमजोर को) को ताकत देना चाहता है। ऐसी स्थिति में यह संभव ही नहीं है कि दोनों एक-दूसरे के प्रति निरंतर सहयोगात्मक रुख बरकरार रख सकें। बहुत देर तक साहित्य और राजनीति एक दूसरे के समांतर या साथ-साथ नहीं चल सकते। दोनों को एक दूसरे के रास्ते में आना ही होगा। दोनों की प्रकृति ही ऐसी है, ठीक वैसी ही जैसी समझ लीजिए कि आग और पानी की प्रकृति। इसलिए आप चाहे दुनिया के किसी भी भाषा-भाषी समाज के साहित्य को उठाकर देखें, आपको सत्य ज्ञात हो ही जाएगा। आपको पता चल जायेगा कि असली साहित्य कहाँ है और असली साहित्य के मायने क्या हैं ? कौन दरबारी साहित्यकार है और कौन जनता का।

एक बात और! साहित्य देश का होता है, सरकार का होता है, दरबार का होता है या विभिन्न भाषाभाषी समाज का, जिसे हम जनता कहते हैं? मैं मानता हूँ कि साहित्य समाज का होता है। और समाज में हम सब रहते हैं, इसलिए मेरी दृष्टि में साहित्य तो जनता का ही हुआ। ये और बात है कि हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और परिवेश को पढ़ते हुए इससे इतर लिखित साहित्य को भी साहित्य के इतिहास में अध्ययन-अध्यापन की सुविधा और समग्रता के लिए सम्मिलित करते हैं। किंतु आप देखेंगे कि जो भी जनता का साहित्यकार होगा उसका साहित्य शासन-व्यवस्था के सामने निश्चय ही सीना ताने चुनौतीपूर्ण अंदाज में खड़ा होगा। उसकी तरफदारी हमेशा जनता के प्रति होगी न कि शासन-व्यवस्था के प्रति। यही लोकतंत्र का भी तकाजा है ख्र जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा। साहित्य भी इसी रास्ते का अनुसरण करता है। जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा। यह निश्चय है कि समाज की वास्तविक तस्वीर दिखाते समय चाहे-अनचाहे साहित्य को राजनीति की बखिया उधेड़नी होगी। इस सच्चाई के बावजूद जो बीच के रास्तों की तलाश करते हुए अपने बचाव के सुविधाजनक स्थल ढूंढते हैं और साहित्य रचते हैं वो वास्तव में साहित्य, साहित्यकार और समाज के साथ छल करते हैं। एक सच्चे साहित्यकार के लिए बीच का कोई रास्ता नहीं है जो दोनों से बचकर निकल जाने दे। कबीर, सूर, तुलसी, गुरु गोविन्द सिंह से लेकर आधुनिक काल के भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, दिनकर, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रघुबीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि जितने भी नाम

 ISSN 0975-735X

आप देखेंगे सबके साथ यही शर्त लागू है। सबके लिए यही एक कसौटी है। विद्रोह और प्रखर चेतना के कवि धूमिल ने बीच का रास्ता तलाश रहे साहित्यकारों पर व्यंग्य करते हुए बहुत ठीक कहा था–'वो इस कदर पस्त हैं / कि तटस्थ हैं।' डॉ॰ मिश्र ने भी परंपरा में व्याप्त साहित्य के इन उच्च मूल्यों को छोड़ा नहीं है बल्कि उसी गौरवशाली परंपरा को आगे बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली कार्य किया है। वस्तुस्थिति को स्वीकार करते हुए उन्होंने बिलकुल ठीक कहा है 'साहित्य राजनीति के सामने खड़ा हो जाता है और उसकी व्यवस्था को चुनौती देता है। राजनीति यदि दमन करती है तो साहित्य इस दमन के खिलाफ खड़ा होकर मनुष्य की स्वतंत्रता को नया अर्थ देता है।' (पृष्ठ 66) इस संग्रह को पढ़ते हुए आप पाएँगे कि ये और ऐसी अनेक पंक्तियाँ डॉ॰ मिश्र के सम्पूर्ण लेखन का निचोड़ हैं। इन पंक्तियों को पढ़ते-गुनते हुए सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि लेखक ने अपने जीवन में विविध स्तरों पर संघर्षों का सामना किया है और उन संघर्षों के बावजूद अपनी मानवीय प्रतिबद्धता से आज भी पूरी तरह संपृक्त है। आज तक बिना मानवीय सम्पृक्ति और प्रतिबद्धता के भला कौन इतनी सारगर्भित पंक्तियाँ लिखने में समर्थ हो सका है ? जीवन संघर्षों से दो-चार हुए बिना ऐसी पंक्तियों की सर्जना संभव ही नहीं है। इस संदर्भ में आप भी यह स्वीकार करेंगे कि 'सृजन और साहित्य' नामक इस कृति का प्रकाशन इन अर्थों में बेहद महत्त्वपूर्ण और सार्थक बन पड़ा है। इतने विचार-विमर्शों के उपरांत शायद ही किसी के मन में कोई दुविधा की स्थिति हो। मेरी राय में तो यही उचित है कि किसी भी दल, पक्ष, पार्टी के प्रति बंधन का भाव किसी भी साहित्यकार को नहीं रखना चाहिए अपितु उसे सीधे-सीधे समाज के वंचित, कमजोर और जरूरतमंद लोगों की आवाज बनकर साहित्य रचना में प्रवृत्त होना चाहिए। दोषी व्यवस्था अथवा कारकों पर अपनी लेखनी के द्वारा रचनात्मक प्रहार करना चाहिए। यही हम सबका लेखकीय धर्म है। हमें समाज को बाँटनेवाली शोषणकारी व्यवस्था और उनके पोषकों से रचनात्मकता के धरातल पर तो लड़ना होगा, जरूरत पड़ी तो आमने-सामने करारा जवाब देने के लिए भी तत्पर रहना होगा। यही समाज का, वक्त का और मानवता का तकाजा भी है। 'वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे'। इसमें भी किसी को राजनीति दिखती है तो किया ही क्या जा सकता है !

इस संग्रह में ऐसे कई आलेख हैं जो हमारे समस्त मानव मस्तिष्क को भली-भांति झंझोड़ने में सक्षम हैं। मैं यहाँ समय और स्थान के अभाववश कुछ आलेखों के चुनिंदा प्रसंगों का ही उल्लेख कर सका हूँ। इस संग्रह में 'जब रोबो लिखेंगे', 'उत्तर आधुनिक मनुष्य', 'भारतीय साहित्य में उत्तर आधुनिकता', 'बाजारवाद और साहित्य', 'दक्षिण की हिंदी पत्रकारिता', 'भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक एकता दक्षिण का रचनात्मक योगदान', 'लघु पत्रिकाओं का अर्थशास्त्र', 'समकालीन नाट्यलेखन और रंगमंच', 'आज कविता', 'आज कविताएँ' आदि ऐसे प्रमुख आलेख हैं जिनको पढ़ते हुए आप निश्चय ही निरंतर ज्ञान के नए धरातलों का साक्षात्कार और नयी उर्जस्विता का अनुभव करेंगे। इसीलिए मैंने इस टिप्पणी में पूर्व में कहा है कि इस संग्रह में जितनी ही गहराई भरा विश्लेषण है उतना ही विस्तृत केनवास भी। यह कृति सुधी पाठकों और भाषा-साहित्य के अध्येताओं में निश्चय ही गंभीरता से पढ़ी-समझी और स्वीकार की जाएगी।

सृजन और साहित्य (आलोचना); डॉ॰ राजेंद्र मिश्र; प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ॰प्र॰); संस्करण : 2015; पृष्ठ : 208; मूल्य : 400.00

नक्काशीदार कैबिनेट : नारी-संघर्ष की एक सजीव गाथा

डॉ॰ अमिता

'नक्काशीदार कैबिनेट' सुधा ओम ढींगरा का 2016 में प्रकाशित नवीन उपन्यास है। सुधा ओम ढींगरा का विदेश (अमेरिका) में रहते हुए अपने देश भारतवर्ष और प्रांत (पंजाब) से गहराई से जुड़े रहना इस बात को सिद्ध करता है कि उनके भीतर भारत की मिट्टी की महक ज़िंदा है। उसका दर्द, पीड़ा और संवेदनाएँ जीवंत हैं। उनका उपन्यास 'नक्काशीदार कैबिनेट' मूल रूप में पंजाब प्रांत के एक परिवार और उसके साथ उसके परिवेश के बनते-बिगड़ते रिश्तों की कथा है, जिसमें नारी-संघर्ष बड़े प्रभावशाली रूप में उभरा है। नारी-संघर्ष में सोनल और मीनल की कहानी बड़े मर्मस्पर्शी रूप में उपन्यास के पृष्ठों पर रूपायित है। इस संघर्ष में सोनल जैसी लड़की का साहस और धैर्य पाठक के हृदय को छू लेता है। इसके साथ ही पंजाब से विदेश की ओर आकर्षण जाल में फँसी नारियों के विवाह के चक्रव्यूह को सूधा जी ने बड़ी सच्चाई से उतारा है। नशाखोरी, आतंकवाद और खालिस्तान जैसी समस्याओं में और संवेदनाओं के मध्य गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंदसिंह जैसे महान गुरुओं के हिंदूधर्म की रक्षा के लिए बलिदान की कहानी रोचक ढंग से लेखिका ने सुनाई है। लेखिका की मानवतावादी दृष्टि सर्वत्र सजग है।

उपन्यास में डॉ॰ संपदा और सार्थक पति-पत्नी हैं। विदेश (अमेरिका) में रहते हुए अपने देश और पंजाब से गहरे जुड़े प्रतीत होते हैं। अमेरिका में 'हरीकेन' और 'टॉरनेडो' तूफान पूरी शक्ति के साथ उनके प्रांत में आ जाते हैं, जिसके कारण बारिश और चक्रवात उनके निवास के स्थान पर जबरदस्त क्षति पहुँचाते हैं। उनके घर में पानी घुस आता है और पेड़ टूटकर उनका घर तोड़ देते हैं। इसी प्रकार जहाँ अनेक नुकसान होते हैं, वहीं नक्काशीदार कैबिनेट रोजवुड से बना हुआ (जो मध्ययुगीन कला का सुंदर नमूना) क्षतिग्रस्त हो जाता है। वह पानी में औंधा पड़ा होता है। उसमें वर्षों की यादें थीं। इसमें एक काले रंग वाली डायरी भी थी जिसे फुर्सत में लेखिका पढ़ती जाती है और स्मृतियों में बसी कहानी डायरीशैली में उपन्यास पर उतरती जाती है। कहानी वर्तमान से अतीत की ओर, फिर अतीत से वर्तमान में आ जाती है।

डॉ॰ संपदा एक समाजसेवी संस्था से वर्षों से जुड़ी है। वहाँ उसकी मुलाकात सोनल से होती है। उसकी चाल-ढाल और लहजे से डॉ॰ संपदा समझ जाती हैं कि वह एक शिक्षित लड़की है और ग्रामीण पंजाब से संबंधित है। उपन्यास में प्रारंभ में ही यह संदर्भ स्पष्ट हो जाता है, 'पहली

 ISSN 0975-735X

मुलाकात में वह मेरे इतने करीब आ गई कि हम बड़ी देर तक बैठे बातें करते रहे...जब तक वह शारीरिक और मानसिक रूप में सशक्त नहीं हुई। इस देश में उसने अपने अस्तित्व को तलाशा और अपने पाँव पर खड़ी होकर, उन सबसे अपने हिस्से की खुशियाँ वापिस लीं, जिन्होंने जवानी और बचपन में उससे वे छीन ली थीं। मेरे लिए वह नारी सशक्तिकरण का जीवंत उदाहरण थी। उसने जीवन में घटनाओं, दुर्घनाओं, विश्वासघात, धोखा और फरेब के जिस दौर को देखा था, उन सबसे निकलकर उसने जो कर दिखाया वह खास था।' इस प्रकार वास्तव में यह उपन्यास सोनल के विकट व भयावह संघर्ष की रोचक कथा है, जो अनेक संघर्षों से लड़कर भी हारती नहीं है, टूटती नहीं है। अनेक लड़कियों के लिए उसका संघर्ष एक प्रेरणा के रूप में सामने आता है, जो विषम स्थितियों में डटकर लड़ती है।

उपन्यास में सोनल के दादा जी का नाम सोहनचंद मनचंदा था। उन्हें सब बाऊजी कहते थे। वे जमींदार थे। विरासत में दादा जी से जमींदारी पिताजी को मिली थी। पिताजी का नाम त्रिलोकचंद था, जो मिलिट्री से रिटायर होकर घर आ गए थे। मीनल और सोनल त्रिलोकचंद की दो पुत्रियाँ थीं। सोनल का चाचा मंगल आलसी, शराबी और जुआरी था। उसने चाचा जैसे रिश्ते को कलंकित किया था। मंगल की ऐयाश प्रवृत्ति की वजह से कोई माँ-बाप उसे अपनी लड़की देने को तैयार नहीं था। लेकिन पड़ोस के एक गाँव से रिश्ता आया तो दादा-दादी ने इंकार नहीं किया, उन्होंने सोचा कि लड़का सुधर जाएगा तो सोहनचंद मनचंदा ने मंगल का विवाह कर दिया। लेकिन मंगल में कोई सुधार नहीं आया। मंगल की पत्नी मंगला के साथ उसका भाई भी उनके साथ रहने लगा। मंगला जिस घर से आई थी उस घर का माहौल भी अच्छा नहीं था। उनकी पुश्तैनी जायदाद को बाप और भाई उड़ा चुके थे। मंगल और उसका साला शराब, ताश, जुए में व्यस्त रहते और गाँव की बहू-बेटियों पर फब्तियाँ कसते। सोनल की माँ बी॰ए॰ पास थीं इसीलिए मीनल और सोनल को पढ़ाना चाहती थीं। उपन्यासकार द्वारा नारी-उत्कर्ष मीनल और सोनल के परिप्रेक्ष्य में साकार हुआ है।

बाऊ जी ने मंगल-मंगला और उसके भाई को खेतों में बने घर में पहुँचवा दिया। मीनल ने इस कार्य में दादा-दादी, पिताजी-माँ के लिए सहयोग दिया था। मीनल के व्यवहार पर मंगला कह गई, 'मीनल तुझे तो मैं देख लूँगी'...यह वह समय था, जब पंजाब में अधिकतर युवक दुबई, कनाड़ा और खाड़ी के देशों में जाने शुरू हो गए थे। कई घरों के लोग पहले से इंग्लैंड में थे। विदेश से पैसा आ रहा था। पढ़ने-लिखने की तरफ किसी का रुझान नहीं था। परिणाम यह हो रहा था कि खाली दिमाग, पैसे की अधिकता और नशा के वे आदी लोग निकम्मे बनते जा रहे थे।'

इस वातावरण के चित्रण में लेखिका ने कौशल से काम लिया है। कथा में रोचकता, जिज्ञासा, कौतूहल बना रहता है। कथा के प्रवाह में पाठक पृष्ठ पर पृष्ठ पढ़ता जाता है और कथा के प्रवाह के साथ बहता जाता है। मीनल और सोनल के साथ पम्मी (परमिंदर) और सुक्खी (सुखवंत) सुखविंदर का भी उल्लेख मिलता है। ये शिक्षित वातावरण के लड़के हैं और इनके परिवार को कामरेडों का परिवार भी कहा जाता है। मीनल को पम्मी प्यार करता है। किंतु मीनल मंगला चाची के दुष्कर्मों का शिकार होकर मारी जाती है। मंगल और दिलगीर पकड़े जाते हैं। उन्होंने गुनाह कबूल किए। दिलबाग और दिलशाद भी पकड़े जाते हैं। मंगला के साथ उनके माँ-

बाप और दो भाई भी रहने लगते हैं। मीनल की हत्या के केस में जो फैसला आया, उसमें दिलबाग और दिलशाद को फाँसी की सजा सुनाई गई और मंगल तथा दिलगीर को उम्रभर का सख्त कारावास। मंगला के बाप ने कहा, 'उसने अपनी सुंदर बेटी मंगल जैसे नालायक के पल्ले इसीलिए बाँधी थी, उसकी नजर बाऊजी की जमीनों, हवेली और इस कमरे पर थी, जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी से हीरे जवाहरात, सोना और चाँदी दबे पड़े थे। उन्हें तो वह लेकर रहेगा, चाहे उसके अपने दो और बेटे गँवाने पड़े...।' उपन्यास में सोनल महाराजा रणजीतसिंह के समय का वर्णन करती है। और तत्कालीन पंजाब की आंतरिक और बाहरी स्थिति का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट करती है कि हमारे परिवार के बुजुर्गों के पास तोशखाने का काफी धन था। वे महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल में तोशखाने थे। उपन्यास में वर्णन शैली बेजोड़ है।

उपन्यास में पम्मी के मँझले भाई सुक्खी (सुखवंत) से सोनल की दोस्ती हो जाती है। सुक्खी को पढ़ने का शौक था। सोनल बताती है कि सुक्खी की किताबों से वह भी साहित्य की अनेक पुस्तकें पढ़ जाती है। उसने यूरोप और हिंदी साहित्य के अनेक लेखकों को पड़ा था सुक्खी, पम्मी और सोनल जैसे अनेक युवक-युवतियाँ प्रगतिशीलता की नई सोच से जुड़ने लगे। ये लोग किसानों और दलितों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने लगे। सोनल डी॰ए॰वी॰ कॉलेज में पढ़ी। उसने बी॰ए॰ ऑनर्स करने के बाद साइक्लोजी में एम॰ए॰ किया। लेखिका ने ग्रामीण परिवेश को प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर करके नई सोच को प्रश्रय दिया है, जो समयानुकूल आवश्यकता थी। लेखिका ने इस दौर में खालिस्तान की लहर का उल्लेख भी किया है, जिसमें अधिकांश युवा भटक गए थे, लेकिन कुछ युवा इस हिंसा का विरोध कर रहे थे जिसमें निर्दोष लोगों की हत्या हो रही थी। पम्मी जैसे युवा की भी खालिस्तानी हत्या कर देते थे, क्योंकि वह निर्दोष लोगों की हिंसा के विरोध में होता है। परिवेश के वस्तुगत सत्य को सच्चाई के साथ लेखिका ने जीवंत बनाया है। आपरेशन ब्लू स्टार, इंदिरा की हत्या और तदनंतर फैली हिंसा का उपन्यासकार ने सजीव चित्रण किया है 'इस दौर में पंजाब, दिल्ली और देश के अन्य भागों में हिंसा भड़क उठी थी। और इस हिंसा ने वीभत्स रूप धारण कर लिया था। इसकी आड़ में, आतंकवाद के नाम पर कई लोगों ने तो आतंकवादी रूप घर निजी रंजिशें निकालनी शुरू कर दी थीं।' लेखिका ने 1980 के आस-पास के परिवेश की सच्चाई के साथ उपन्यास में चित्रित किया है जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज बनकर उभरता है।

सुक्खी (सुखवंत) जो सोनल का दोस्त होता है, वह आई॰पी॰एस॰ में उत्तीर्ण होकर पुलिस अफसर हो जाता है। एक हादसे में बाऊजी, पिताजी और बीजी को गोलियों से भून दिया जाता है। केवल सोनल और उसकी माँ घर में बच जाते थे। यह मर्मस्पर्शी कथा यहीं खत्म नहीं होती। सोनल के मामा, नाना परिवार सहित सोनल के घर पर आकर रहने लगते हैं। वे आए थे दुख में शामिल होने के लिए, लेकिन उन्होंने सोनल के घर पर डेरा जमा लिया। झाई कहती थी 'उनके मायके वाले भी कम स्वार्थी नहीं' यह सारा खेल, धन-संपत्ति को हथियाने के लिए होता है, जिसमें भावानात्मक रिश्तों की कोई जगह नहीं होती, केवल खोखलापन दिखाई देता है। सोनल के चाचा, चाची, मामा, नाना के सभी रिश्तों में कहीं आत्मीयता न थी।

इस कथा में सबसे पीड़ादायी स्थिति तब आती है, जब डॉ॰ बलदेवसिंह की शादी सोनल से करवाई जाती है। यह डॉ॰ बलदेव झूठ फरेब का पुतला होता है, जिसका वास्तव में सुलेमान

 ISSN 0975-735X

नाम होता है। ननिहाल की ओर से रचे गए नाटक में सोनल फँस जाती है। उसे समझाया जाता है कि बलदेव उसे अमेरिका में पीएच॰डी॰ करने देगा–'बलदेव ने मुझे बताया था कि वह अमेरिका में डॉक्टर है और वह मेरी इच्छा से वाकिफ हो गया है। वह मुझे वहाँ साइक्लोजी में पीएच॰डी॰ जरूर करवाएगा।' सोनल को सुक्खी बहुत अच्छा लगता था। वह वास्तव में उसे बहुत प्यार करती थी। पर माँ ने समझाया, 'दिल को सँभाल ले मेरी बच्ची, मास्टरजी का एक बेटा जा चुका है। दूसरे की जिंदगी खतरे में डालने का तुझे कोई हक नहीं। बंदूक की गोलियाँ किसी की सगी नहीं होती। तुमसे अधिक इसे कौन समझ सकता है? मन को मार ले और आगे होने वाले विनाश को रोक। जान है तो जहान है। तुम्हारी और मेरी जान को खतरा है।'

सोनल सोचती है मेरे सामने माँ के अतिरिक्त कौन था। माँ ने ठीक ही समझाया कि सुक्खी का भाई पम्मी पहले ही गोलियों का शिकार हो गया था। इस स्तर पर आकर सोनल बहुत अचेत हो जाती है, सुक्खी को लेकर उसका हृदय टूटता है' माँ ने बाऊजी और पिताजी की कसम दे दी थी। मुझे शादी तो अब अमेरिका के डॉक्टर से करनी ही पड़ेगी। मेरे पास जो विकल्प था, वह छूट गया था। समुद्र के किनारे खड़ी एक खूबसूरत जहाज को देख रही थी जिस पर सवारी की मौन इच्छा मेरे भीतर पता नहीं कबसे पल रही थी, उस आकांक्षा को अब दबाना पड़ा था।'

उपन्यास में सोनल का यह दर्द अपने समूचे आवेग में फैला हुआ है, जो पाठक के मर्म को छू लेता है। और फिर वही होता है, जिसकी सोनल को आशंका थी। डॉ॰ बलदेव का झूठ सामने आता है। वह केवल उसकी हीरे, जवाहरात जैसी दौलत को हड़पने के लिए वह नाटक रचता है। उपन्यास में बलदेव अपने पारिवारिक लोगों को कहता है–'...पहले इसका विश्वास जीतो। उसके नाने को वादा किया है, कागजों पर उसके साइन करवा कर दूँगा और बदले में उसके घर में पड़े हीरे मेरे होंगे। मुझे हीरे चाहिए। फिर हम सब इकट्ठे उसे नोच खाएँगे।' सोनल को जब यह ज्ञात हो जाता है तो वह इस नरक से भागने का प्रयत्न करती है, 'मुझे लगा, मैं धरती में धँसी जा रही हूँ, दीवार का सहारा लेकर मैंने अपने आपको सँभाला। घबराने और बेचैन होने का समय नहीं था। पता नहीं कहाँ से मुझमें इतनी फुर्ती आ गई, मैंने चारों ओर नजर दौड़ाई। कमरे में खिड़की थी, पर शीशा लकड़ी के फ्रेम में फिट था, वह खिड़की थी। जल्दी से जाकर देखा। वह बाहर को खुल सकती थी। दो पाटों की खिड़की थी। ज्यादा ऊँची भी नहीं थी। मैं उस तक पहुँच सकती थी। मुझे पता भी नहीं चला, कब से उस खिड़की से बाहर आ गई और उसके साथ लगे वृक्ष पर झूलने लगी। वृक्षों पर चढ़ना-उतराना तो बचपन में सीखा था। खूब कूदी हूँ वृक्षों पर। आसानी से उतर गई।' लेखिका की कलम से सोनल के साहस का यह चित्रण बहुत प्रभावशाली बनकर उपन्यास के सौंदर्य को बढ़ा रहा है।

लेखिका यह बताना चाहती है कि उपन्यास में डनीस और रॉबर्ट सोनल को शरण देते हैं। डनीस और रॉबर्ट जैसे लोग भी दुनिया में हैं, जो बेसहारा को सहारा देकर उसके संरक्षण में जीवन की सार्थकता ढूँढ़ते हैं। सोनल हिम्मत जुटाती है। सोनल उपन्यास में एक स्थान पर कहती है, 'बाऊजी, बीजी और पिताजी की मौत के बाद मैं एक रात भी चैन से नहीं सोई थी। यही डर लगा रहता था, पता नहीं कौन कहाँ से आकर, कब मुझे मार डालें।'

लेकिन सोनल की कथा यहीं खत्म नहीं होती। सोनल बलदेव जैसे दुष्ट लोगों को पुलिस के हाथों पकड़वाने के लिए कृतसंकल्प हो जाती है। रॉबर्ट और डनीस के साथ के बाद वह

एक संस्था में डॉ॰ संपदा को मिलती है। सोनल सुक्खी को फोन करती है। सुक्खी अमेरिका आता है और तदनंतर बलदेव जैसे दुष्ट लोग और उनका गिरोह पकड़ा जाता है। सोनल को अमेरिका छोड़ एस॰पी॰ सुखवंत भारत नहीं लौटता अपितु वहीं अमेरिका में ही बस जाता है। अन्याय का अंत करवाकर लेखिका ने आशावादिता और आस्था का संकेत दिया है, जो प्रेमचंद की आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी शैली से मेल खाता है।

लेखिका ने वर्णनात्मक शैली में बेजोड़ कथा कही है, जो नारीसंघर्ष की सच्ची गाथा है। कथा में कहीं भी अस्वाभाविकता या असहजता नहीं प्रतीत होती। इसमें कल्पना का मिश्रण अंश मात्र किया भी हो तथापि कथा बड़ी जीवंत लगती है।

लेखिका ने पाश कवि के द्वारा भारत की आजादी के बाद की तस्वीर को भी चित्रित किया है 'सुक्खी ने उत्तर दिया भारतीय जनता के गौरवशाली संघर्ष और विश्व पूँजीवाद के आंतरिक संकट के परिणामस्वरूप जो राजनीतिक आजादी 1947 में मिली, उसका लाभ केवल पूँजीपतियों, सामंतों और उनसे जुड़े मुट्ठीभर विशेषाधिकार प्राप्त लोगों ने ही उठाया। हालत और भी बदतर हो गए। पहले जो राजनीति, त्याग व सेवा का कार्य था, आज मुनाफे का धंधा है। देश गुलामी के जाल में फँस चुका है। सातवाँ दशक आते-आते आजादी से मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। भारत के शासकवर्ग के खिलाफ जनअसंतोष तेज हो गया था, जिसकी अभिव्यक्ति राजनीति में ही नहीं, संस्कृति और साहित्य में भी हुई। इस दौर में पंजाबी साहित्य के क्षेत्र में नई पीढ़ी के कवियों ने पंजाबी कविता को नया रंग-रूप प्रदान किया। अवतारसिंह पाश इन्हीं की अगली पंक्ति में था।'

अवतारसिंह धर्मिक कट्टरता के खिलाफ और हिंसा के खिलाफ था, इसीलिए खालिस्तानियों ने उसे गोली से भून दिया।

मानवीय मूल्यों के प्रेरक सिंह गुरुओं की महान गाथाओं के साथ उपन्यासकार ने धार्मिक कट्टरता और हिंसा के खिलाफ अपनी चिंताओं को व्यक्त किया है। 'औरंगजेब के शासनकाल में जब कश्मीरी पंडित आनंदपुर साहिब गुरुतेग बहादुर के दरबार में पहुँचे...गुरु तेगबहादुर का जीवन कार्य ही अपने हिंदूधर्म की रक्षा करने का भगीरथ प्रयत्न था। सारी बातें सुनकर वे सोच में पड़ गए। कुछ समय के मनोमंथन के बाद वे बोल उठे इस समय देश और धर्म की रक्षा का एकमात्र उपाय किसी महापुरुष का बलिदान है।....उनका नौ वर्ष का पुत्र गोविंदराय पास ही खड़ा था। उसने तुरंत कहा पिताजी इस पवित्र कार्य के लिए आपसे बढ़कर कौन महापुरुष है।'

उपन्यासकार ने उपन्यास में स्पष्ट किया है कि गुरु गोविंदसिंह ने भी धर्मरक्षा के लिए अपने चार पुत्र अजीतसिंह, जुझारसिंह, जोरावरसिंह और फतेहसिंह का बलिदान कर दिया था। उनकी आगे की पीढ़ी खालिस्तानी सोच में पड़कर कैसे भटक गई है? यह चिंता लेखिका उपन्यास में उभारती है।

उपन्यास में एस॰पी॰ सुक्खी, डॉ॰ संपदा को कहता है, 'दीदी मैं पंजाब में अपनी तब्दीली करवाना चाहता था, अब नहीं। पंजाब के हिंदू-सिक्खों में रोटी-बेटी के संबंध थे। भारतीय शासनवर्ग द्वारा पैदा किए गए खालिस्तानी पृथकतावादियों शरारती तत्त्वों और पड़ोसी देश की अलगाववादी ताकतों ने सब गड़बड़ कर दिया।' पंजाब के बदलते परिवेश की वास्तविकता लेखिका ने चित्रित की है।

आतंकवाद के कारण एक दूसरा दर्द भी लेखिका ने व्यक्त किया है, 'पीढ़ी दर पीढ़ी जो हिंदू परिवार सिक्खधर्म के अनुयायी थे और गुरुद्वारों में जाते थे, वे गुरुद्वारों में असहज होने लगे। दोनों में परोक्ष-अपरोक्ष दरार आ गई थी।' लेखिका द्वारा हिंदू-सिक्ख संस्कृति के सद्भाव का प्रयास सराहनीय है।

यह सुक्खी आई॰पी॰एस॰ की नौकरी के त्यागपत्र भेजकर अमेरिका में इंटरनेशनल लॉ की पढ़ाई करने लग जाता है, जहाँ से सोनल पीएच॰डी॰ का कार्य करना चाहती है। इस प्रकार उपन्यास अपने चरमोत्कर्ष पर समाप्त हो जाता है। रिश्ते-नातों के संसार में जहाँ परिभाषित संबंध (चाचा, चाची, मामा, नाना) अर्थहीनता को प्राप्त हो रहे हैं। वही मास्टर जी के लड़के पम्मी और सुक्खी इस परिवार के लिए (मीनल और सोनल के लिए) मूल्यवान और अर्थवान हो उठे हैं। यह लेखिका की नई सोच को व्यक्त करता है और प्रेमसंबंधों के सार्थक स्वरूप का उदाहरण प्रस्तुत करके परंपरागत सोच से बाहर निकालने का लेखिका का यह प्रयास भी स्तुत्य है।

लेखिका ने आदर्शात्मक समाधान भी दिए हैं। सोनल और सुखवंत विदेश में रहते हुए (पेरिस में पढ़ाते हुए) एक संस्था बनाते हैं, जिसमें विदेशों में देहव्यापार में झोंकी गई भारतीय लड़कियों को खोजना और उन्हें मुक्त करवाने के लिए कार्य करना, पंजाब के गाँवों के प्रतिभाशाली बच्चों को उच्चशिक्षा दिलवाना और चिकित्सा-सुविधाएँ प्रदान करना उनका लक्ष्य है। उपन्यासकार ने कुछ जीवनानुभवों और मूल्यगत सत्यों को विचारों में व्यक्त किया है–

'भविष्य की चिंताओं में मनुष्य वर्तमान को जीना मूल जाता है और स्वयं का जीवन दूभर कर लेता है।'

'जिस दिन मानव वर्तमान में जीना सीख लेगा, बहुत सी परेशानियों और चिंताओं से मुक्त हो जाएगा।'

उपन्यास की लेखिका विदेश में रहती हैं और अपने देश भारतवर्ष भी आती जाती रहती हैं। इसीलिए देश-विदेश के रहन-सहन, आचार-विचार और जीवनमूल्यों का भी तुलनात्मक चित्रण करती हैं–'सार्थक इस देश के अनुशासन, यहाँ की व्यवस्था, और लोगों के सेवाभाव से बहुत प्रभावित है। इस देश का अच्छा-बुरा सब समझते हैं। हालाँकि यह बात नहीं कि यहाँ बुरे लोग नहीं हैं। जो बुरे हैं, बहुत बुरे हैं। पर वे भी सड़कों पर लघुशंका का निवारण नहीं कर सकते। सड़कों पर थूक नहीं सकते। कत्ल, बलात्कार करके छूट नहीं सकते। यहाँ रंगभेद है, पर देश को रँगने का किसी को अधिकार नहीं। गंदी सोच के लोग हैं, पर उन्हें देश को गंदा करने का हक नहीं। देश सबका है और इसे साफ रखना सबकी जिम्मेदारी है।' लेखिका चाहती है कि उसके भारतवर्ष की तस्वीर भी अच्छी बने। देश-विदेश के नियम-कायदों और जीवन-पद्धतियों की तुलना करते हुए लेखिका ने परोक्ष रूप में भारतवर्ष की धार्मिक विसंगतियों और कानून के ढीले-ढाले रवैयों का चित्रण भी किया है। और विदेश (अमेरिका) की व्यवस्था की प्रशंसा भी की है, 'आप किसी भी सोच के हैं, किसी भी विचारधारा के, किसी भी धर्म में विश्वास रखते हैं, कट्टरपंथी हैं या उदारवादी आपको कोई कुछ नहीं कहेगा। आप धड़ल्ले से यहाँ रह सकते हैं, जहाँ आपने पर्यावरण को बिगाड़ने की कोशिश की, वातावरण को अशुद्ध किया और कानून का उल्लंघन करने या उसे हाथ में लेने की कोशिश की, तो समझिए आप गए। कानून सजा देगा। यहाँ का कानून किसी का लिहाज नहीं करता।'

लेखिका अपने इस वक्तव्य से अपने देश में जो असुंदर है, उसे सुंदर बनाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देती है। विदेश में बसी उपन्यासकार वहाँ की व्यवस्था और मूल्यों से प्रभावित हैं। सरकारी, गैरसरकारी संस्थाओं के साथ लोग भी अपने दायित्व को समझते हैं, 'तकनीकी प्रगति से यह लाभ अवश्य हुआ कि किसी भी तरह के संकट के समाचार विभिन्न संचार माध्यमों के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य तक पहुँच जाते हैं और हरेक को कठिन घड़ी के लिए तैयार होने का समय मिल जाता है। इस देश की व्यवस्था बड़ी मुस्तैद है और यहाँ के जीवन की सबसे बड़ी खूबी है मनुष्य के जीवन की महत्ता को समझा और आने वाले खतरों को गंभीरता से लेना। सरकारी तंत्र अप्रत्याशित घटनाओं के जूझने के लिए सर्तकता से तैनात हो जाता है। स्थानीय लोग और गैरसरकारी संस्थाएँ भी सचेत हो जाती हैं। हर कार्य को 'सरकार का काम है' नहीं समझा जाता। लोग स्वयं भी अपने लिए खड़े होते हैं।'

उपन्यास में सोनल, रॉबर्ट और डनीस के यहाँ शरण लेती है। वह उनसे प्रभावित होती है। 80 वर्ष के आस-पास की उम्र में भी दंपती बच्चों पर आश्रित नहीं रहते, 'जब तक हाथ-पाँव काम कर रहे हैं, हम किसी पर भी यहाँ तक कि बच्चों पर भी निर्भर नहीं रहना चाहते। जब शरीर साथ छोड़ेगा तो उन्होंने ही हमारी देखभाल करनी है। अभी से उन्हें क्यों परेशान करें।'

सोनल, रॉबर्ट अंकल को डनीस आंटी के साथ घर के काम में हाथ बँटाते देखती है और सोचती है कि हमारे देश में तो सारे काम पत्नी को ही करने होते हैं। यह समझ रॉबर्ट और डनीस जैसे लोगों से लेनी चाहिए।

तूफान की आशंकाओं का चित्रण स्वाभाविक जान पड़ता है। परिवेश का प्रामाणिक चित्र उपन्यास में उभरता है, 'उस दिन वातावरण में घबराहट थी। तनाव था। बेचैनी थी। सड़कों पर कारें तेजी से भाग रही थीं। शहर के सारे ग्रोसरी स्टोर खाली हो चुके थे। लोगों ने खाने-पीने की वस्तुओं से घर भर लिए थे। एक अनजाना भय सबके भीतर बैठ चुका था। किसी को पता नहीं था, क्या होनेवाला है और क्या-क्या उन्हें भुगतना पड़ेगा? सोचकर ही लोग परेशान थे।'

विदेशी परिवेश की अभिव्यंजना में लेखिका को पर्याप्त सफलता मिली है। उपन्यासकार अपने वतन के रिश्ते-नातों की पीड़ा से जुड़ती है और मैत्रीभावना के मूल्य को समझाती है, 'यहाँ तो मित्र ही परिवार हैं। दु:ख-सुख के भागीदार। अपने परिवार तो देश में छूट गए और हाथ ही छूट गए ढेरों पल, सुखद यादें, रिश्ते और नाते। उनके लिए हम परदेसी हो गए और साथ ही बन गए मेहमान।'

उपन्यास में चित्रात्मकता जगह-जगह अपना वैशिष्ट्य बनाए हुए है, 'सड़क पर लोग दौड़ रहे थे। जागिंग कर रहे थे। मैं उन्हीं के साथ दौड़ने लगी। नाक की सीध में कई ब्लाक पार कर गई।...हल्का-हल्का घुसपुसा हो रहा था। समझ नहीं आ रहा था किस तरफ जाऊँ।'

लेखिका ने सरल, सहज भाषा का प्रयोग किया है। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ पंजाबी, अँग्रेजी शब्दों का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है-'भारतीय मूल के लोगों के पास दालें, चावल, और आटा तो काफी मात्रा में होता है फिर भी बहुतों ने डिब्बाबंद फूड अपने स्टोर में समेट लिया था। घर-घर में टार्च लाइट्स, फ्लैश लाइट्स, बैटरियाँ, मोमबत्तियाँ इत्यादि कुछ इकट्ठा किया जा रहा था। अगर बिजली आनी बंद हो जाए तो वे काम आएँगी। जिन घरों में बिजली के चूल्हे थे, उन्होंने गैस के सिलेंडर खरीद लिए और साथ ही गैस का चूल्हा भी।'

 ISSN 0975-735X

लेखिका ने अँग्रेजी भाषा का प्रयोग भी किया है, 'वॉलन्टियर्ज आर कमिंग फ्राम अदर स्टेट्स एंड अदर सोसयटीज टू हेल्प दा विकटम्ज...।' लेखिका ने पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है। बाऊजी की भाषा है 'एथे दी पुलिस वि इनहाँ हरामियाँ ने खरीद लई ऐ, सारे एनहाँ दे अड्डे ते आंदे ने तो कोई मेरा साथ देन लई तियार नई।'

उपन्यासकार ने पंजाबी के सरल अनुवाद भी साथ में दिए हैं, ताकि उपन्यास की भाषा दुरूहता प्राप्त न कर सके।

उपन्यास में लेखिका की काव्यात्मक भाषा द्रष्टव्य है–

भगत सिंह ने पहली बार पंजाब को, जंगलीपन, पहलवानी व जहालत से
बुद्धिवाद की ओर मोड़ा था, जिस दिन फाँसी दी गई
उनकी कोठरी में लेनिन की किताब मिली
जिसका एक पन्ना मुड़ा हुआ था
पंजाब की जवानी को, उसके आखिरी दिन से
इस मुड़े पन्ने से बढ़ाना है आगे, चलना है आगे।
(पाश की एक कविता)

संवादों को उपन्यासकार जरा और तराशती तो अच्छा होता। छोटे और संक्षिप्त संवाद कथा के विकास और पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में सार्थक भूमिका निभाते हैं। लेखिका को स्वयं अधिक न बोलना पड़ता। उपन्यास में लेखिका की स्वयं ज्यादा बोलना पड़ रहा है। डायरी शैली का यह गुण भी है। मुख्य कथा सोनल के परिवार की है, जो आद्यंत कसावट लिए हुए है, कहीं बिखराव नहीं है। इसके साथ ही वर्तमान जीवन की कथा डॉ॰ संपदा और सार्थक की है, दोनों को उपन्यासकार ने कौशल से सुगुंफित किया है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता है। कहीं कोई अस्वाभाविकता दिखाई नहीं देती। ऐसा नहीं लगता कि उपन्याकार ने केवल कल्पना के सहारे इन पात्रों को उपन्यास में उतारा है। ये पात्र जीते-जागते पात्र हैं, जो जीवन की सच्चाई को अभिव्यक्त करते हैं और जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने की प्रेरणा देते हैं। सोनल और सुखवंत इसी आदर्शवाद की ओर अन्मुख हैं। सद् पात्रों को जहाँ ऊँचाई दी है, वहीं असद्पात्र भी अस्वाभाविक नहीं लगते हैं। लेखिका ने पात्रों की भीड़ नहीं इकट्ठी की है। पात्र लेखिका के हाथों की कठपुतली नहीं बने हैं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि यह उपन्यास हिंदी उपन्यास-जगत की एक अमूल्य निधि है, जो प्रासंगिकता एवं उपादेयता जैसी विशेषताओं से युक्त है।

नक्काशीदार कैबिनेट (उपन्यास) सुधा ओम ढींगरा; प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर (म॰प्र॰), दूरभाष 07562405545; मूल्य : 150.00 रुपए, पृष्ठ 120, वर्ष 2016

डॉ॰ अमिता
तदर्थ प्राध्यापक
मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकृति, जीवन और सरोकारों के ग़ज़लगो लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'

डॉ॰ रमेश तिवारी

21 वीं सदी के इस सर्वग्रासी दौर में जब गाँवों की जगह निरंतर सूनी और सिकुड़ती जा रही है, कोई व्यक्ति यह लिखे कि वह पहले अध्यापन करता था और आज खेती (कृषि) तो सहज ही उसकी ओर ध्यान जाएगा। ऐसा ही सुखद अहसास लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' के ग़ज़ल-संग्रह 'झरनों का तराना देखकर हुआ। जब मैंने इस संग्रह की ग़ज़लों को पढ़ना शुरू किया तो इसमें झरनों की तरह एक निर्लिप्त प्रवाह और प्रकृति-सुषमा के साथ-साथ शहर-गाँव, रिश्ते आदि भी अपनी मौजूदगी का एहसास कराते गए। देवभूमि उत्तराखंड के नैनीताल में बसे सुमन जी की ग़ज़लें निर्झर की तरह ही मधुर आकर्षण का केंद्र हैं, जिनमें ताजगी है, खूबसूरती भी, गतिमयता है, रवानगी भी, कसक है, कशिश भी, सबके पास हैं, दूर भी, सबके साथ हैं, अलग भी, सबमें खास हैं, आम भी। ऐसी अनेक खूबसूरती मुझे इन ग़ज़लों में दिखाई देती रही हैं, जिनको देखते-पढ़ते हुए आप मुस्कुराए बिना नहीं रह सकेंगे। पहाड़ की ज़िंदगी से इन्होंने जीवन में जीवटता हासिल की है वरना आप अन्य ग़ज़लकारों को पढ़िए तो उनकी ग़ज़लों में या तो पीड़ा की अभिव्यक्ति होगी या पाठकों के लिए उपदेश। मैं यह संग्रह पढ़ने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उपर्युक्त दोनों किनारों से सुमन जी खुद को बचाते हुए जीवन जीने में यकीन करते हैं। इन अर्थों में इनके संग्रह का शीर्षक पुनः ध्यान आता है–'झरनों का तराना है'। यह नदिया की धारा या नदिया का पानी नहीं है यह तो झरने की धारा है और झरने का पानी यानी मस्ती की रागिनी।

विद्यालयी जीवन में मैंने आरसीप्रसाद सिंह की एक कविता पढ़ी थी, जिसका शीर्षक है– जीवन और झरना। उसकी पंक्ति आज भी भुलाये नहीं भूलती–

यह जीवन क्या है निर्झर है मस्ती ही इसका पानी है
सुख-दुःख के दोनों तीरों से चल रहा राह मनमानी है।

इस कविता की विशेषता यह है कि इसे मैदानी इलाके के कवि ने लिखा है। दूसरी बार जब झरने की कविता पढ़ने को मिली तो वो सुमन जी की ग़ज़लों के संग्रह रूप में मेरे सामने है। सुमनजी की ग़ज़लें अपने लोगों से बातचीत करने का बहाना-मात्र हैं। इन आसपास के लोगों को आप चाहें तो उनके पाठक कह सकते हैं। इन ग़ज़लों में ज़िंदगी की अलग-अलग कई धाराएँ आपको मिलेंगी। आप अपनी रुचि के अनुरूप उसका चयन कर सकते हैं। सुमनजी संग्रह की भूमिका में संकेत देते हैं–'सीधी-सादी राह पर चलने के बजाय किसी चुनौती की चाहत होती

 ISSN 0975-735X

है कि ज़िंदगी को कोई मकसद मिल सके।' (पृष्ठ 6) यह समझना ठीक होगा कि सुमन जी को सीधे-सादे रास्तों से अधिक टेढ़े-मेढ़े रास्ते पसंद हैं। बेमकसद नहीं बामकसद जीवन पसंद है, जिसमें चुनौतियों का सामना करने का जोखिम हो। उनकी नजर में डर का कारण कयामत नहीं बल्कि इंसान ही हैं–

लोग डरते नहीं कयामत से
लोग पर आदमी से डरते हैं। (पृष्ठ 7)

जो कुदरत के बहावों में नुक्स देख सकता है, आपकी कमियों में अपने को तौल सकता है और सबके आखिर में कह दे कि सच बात तो यही है, मैं झूठ बोलता हूँ। (पृष्ठ 111) वह लक्ष्मी खन्ना सुमन ही होगा, जो अपनी ग़ज़लों में ऐसे अनेक विषयों पर लिख सकता है।

फूलों की ज़िंदगी बस एक या दो दिनों की ही होती है। इंसानों की ज़िंदगी को चार दिन की कहा जाता रहा है। सुमन जी इस क्षणभंगुर जीवन को भूलते नहीं हैं–

ऐ सुमन महका ले अपने रूप को
सोच मत कल सुर्खियाँ उड़ जाएँगी। (पृष्ठ 10)

इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए कमलेश्वर ने इनकी ग़ज़लों को आह-कराह और टीस के साथ-साथ बदलते रिश्तों के बदलते मायने और जीवन जीने के नए सलीकों की ग़ज़लें कहा होगा। बकौल चंद्रकांता इनमें नए प्रत्यय और बिंबों के माध्यम से अपनी बात कहने का कौशल है तो डॉ॰ निर्मला जैन के मुताबिक इन्हें ज़िंदगी से प्यार है और शायरी इनकी लगन है। इन सभी विद्वानों के निष्कर्ष का आधार सुमन जी की ग़ज़लें ही हैं।

सुमनजी भले ही पहाड़ों की वादियों में रहते हैं, किंतु अपने भीतर गाँव की ऊष्मा को जीवित रखते हैं। उन्हें इस बात की चिंता नहीं सताती कि लोग क्या कहेंगे, या जमाना क्या कहेगा? वो तो खुलेआम कहते हैं–

इस जमाने को तिलमिलाने दो
उसके हर तौर को उड़ा के चलो
आँधियो, तोड़कर ये सन्नाटा
बन के बौछार दनदना के चलो
चीरकर बादलों की छाती को
बिजलियो, खूब तड़तड़ा के चलो। (पृष्ठ 102)

उन्हें अपनी राहगीरी मालूम है। यह आजकल की दिल्ली-गुड़गाँव वाली तथाकथित राहगीरी नहीं है। यह एक प्रकृतिप्रेमी ग़ज़लगो की राहगीरी है। सुमनजी जानते हैं कि उनके साथ चल पाना मुश्किल है। इसीलिए पहले ही वह अपने कदमों को भी सावधान करते हुए लिख देते हैं–

साथ क्या दूर तक निभाओगे
मेरे कदमो, जो लड़खड़ाओगे
ज़िंदगी तुम पे मुस्कुराएगी
तुम अगर उस पे मुस्कुराओगे।

सुमनजी इस दुनिया की असलियत को जानते हैं। इसी ग़ज़ल के आखिर में वह ये भी कहते हैं–

किसको आवाज दे रहे हो तुम
सबको मतलब में मस्त पाओगे। (पृष्ठ 98)

इस दुनिया में कई तरह के लोग हैं। कुछ तो ऐसे भी हैं जिनको अपने हुनर की खबर ही नहीं है। ऐसे लोगों का जिक्र करते हुए सुमन जी लिखते हैं–

खबर जिनको अपने हुनर की नहीं
हमें वे कलाकार न्यारे लगे।
किसी बात पर जो अड़े रह गए
वे दुनिया के दंगल में हारे लगे। (पृष्ठ 96)

सुमन जी जानते हैं कि जीवन-संघर्षों को सदा अड़कर नहीं जीता जा सकता है इसमें कहीं अड़ना होता है तो कहीं समझौते भी करने पड़ते हैं। कई बार मर-मरकर जीना भी पड़ता है। जीवन इतना आसान भी नहीं है। इसलिए व्यक्ति को उदारमना होना चाहिए, वरना उसे ज़िंदगी के दंगल में पराजय ही मिलेगी। यह सच ही मनुष्य को जीवन जीने की एक वजह देता है। कवि को चमक-दमक और आडंबरयुक्त जीवन नहीं भाता। वह सदा जमीनी जीवन जीते हुए उसका पूरा मजा लेना चाहता है–

हमें तो जमीनी खुशी चाहिए
कोई शख्सियत आसमानी नहीं।

कवि की दृष्टि में ऐसे ही क्षण सफल हैं और सार्थक भी। इन क्षणों को ही कवि शाश्वत समझते हुए लिखता है–

सुमन ये महक है जमीं से जुड़ी
ये होगी कभी भी पुरानी नहीं। (पृष्ठ 94)

कवि को सामान्य मनुष्यों की तरह जीवन जीना पसंद है। उसमें विशेष बनने का अहम् नहीं है और न कोशिश ही। वह जैसा है वैसा ही रहना चाहता है। कुछ और बनने की लालसा में न जाने क्या-क्या कुकर्म करना पड़े, इसलिए सामान्य बने रहने को ही वह उपलब्धि की तरह स्वीकार करता है–

दोस्तो, दोस्ती नहीं आती
दोस्तो, दुश्मनी नहीं आती
कोई शिकवा, गिला न हो लब पर
हमको वो सादगी नहीं आती

इतनी उदारता का लबादा कवि नहीं ओढ़ना चाहता, जिसमें मन को मारकर अपने शिकवे-गिले को भी छिपाने की नौटंकी करते हुए जीना हो। उसे तो सहज जीवन ही पसंद है और वह सहजता के साथ ही जीवन जीने की बात करता है।

मानव-जीवन भी अद्‌भुत है। इस जीवन की विडंबना यह है कि हमें सब-कुछ अपने अनुरूप नहीं मिलता। हालाँकि ये सवाल आज का नहीं बल्कि अनादिकाल से चला आ रहा है। छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा है–'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की। एक-दूसरे से न मिल सके, यह बिडंबना है जीवन की।' ऐसे सवालों से सुमन जी भी टकराते हैं और उसे ग़ज़ल में कुछ यूँ लिखते हैं–

 ISSN 0975-735X

चाह की ज़िंदगी नहीं मिलती
चाह की मौत भी नहीं आती। (पृष्ठ 65)

'यहाँ किसी को मुकम्मल जहाँ नहीं मिलता। कभी जमीं तो कभी आसमाँ नहीं मिलता' वाला मामला है यह।

कवि पहाड़ों में रहते हुए भी अपने भीतर गाँव को जीता है। शहर के मुकाबले में उसे गाँव अधिक प्रभावित करता है। इसका कारण शहरों की बेरुखी और अपने आपमें सीमित रहने की प्रवृत्ति ही है–

कब तलक गाँव को मेरे देखें
बेरुखी शहर की नहीं आती।
मेरे कस्बे की बंद गलियों में
रात-दिन रोशनी नहीं आती। (पृष्ठ 65)

शहरों ने हमें सुविधाएँ, संपन्नता और गति तो दी है, किंतु हमें भीड़ में अकेला भी तो किया है। इससे जीवन जीने की जिजीविषा का बड़ा ह्रास हुआ है और यह संपूर्ण मानव-जाति का नुकसान है। शहरी जीवन-शैली के प्रति सुमन जी की शंकाएँ इन पंक्तियों में भी देखी जा सकती है–

हाथ मिला, पर जरा सँभलकर
महानगर है, चलो सँभलकर। (पृष्ठ 44)

हालाँकि यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि कवि अपनी दृष्टि किसी पर थोपने की कोशिश कभी नहीं करता। इसीलिए वह विशेष रूप से अपनी ही एक ग़ज़ल में लिखता है–

अपनी-अपनी नजर सभी की, सबके रहे झरोखे अपने।
अपने मन के विश्वासों से देखें सभी नजारे अपने।
अपनी-अपनी ताल-तलैया, अपनी हिम्मत, अपनी किस्मत।
अपनी इच्छाओं की मछली, औ सबके हैं काँटे अपने। (पृष्ठ 53)

सबकी अपनी डफली और अपना राग है। सबको स्वतंत्रता देना और सबके साथ निभाना भी एक दुनियादारी है। इस दुनियादारी के पारंगत हों न हों पर थोड़ी-बहुत जानकारी तो सुमन जी भी रखते ही हैं–

जहाँ के चलन भी निभाने पड़े
सलीके दिलों को सिखाने पड़े
जिसे हम भी, तुम भी निभा न सके
उसी राह पर डग बढ़ाने पड़े। (पृष्ठ 30)

बावजूद इन प्रतिकूलताओं के सुमन जी की खासियत यह है कि वे निराश नहीं होते हैं। झरने का उद्दाम प्रवाह उनकी ग़ज़लों में मौजूद रहता है–

झरनों का तराना है
औ' जोश में गाना है
अपनी महक का पौधा
तुझमें भी लगाना है। (पृष्ठ 37)

सुमन जी की एक और खासियत है। वह दूसरों को अपना बनाने से पहले दूसरों का अपना बनने में यकीन रखते हैं–

अच्छा, न मैं बुरा हूँ, जो भी हूँ आपका हूँ।
मतलब की कहो तो मैं, हर बात को सुनता हूँ।
अपने यकीन को ही, सच्चा मैं मानता हूँ।
डुबो के आज को मैं, वर्षों में तैरता हूँ।
खुद्दार हूँ बहुत पर, नफा भी तौलता हूँ। (पृष्ठ 111)

निष्कर्षत: मुझे यह कहना अनिवार्य और उल्लेखनीय जान पड़ता है कि इन ग़ज़लों के बहाने सुमन जी ने अपने आपको और अधिक खोलने की कोशिश की है। वह अपने पाठकों के और करीब गए हैं। पाठकों के करीब जाकर उनके हृदय में अपने लिए पर्याप्त जगह घेरने की एक सफल-सार्थक कोशिश की है। इन्होंने अपनी ग़ज़लों की माला को शेरों से इस तरह पिरोया है, जिनमें पहाड़ों के उन्मुक्त जीवन की ऊँचाई तो है ही साथ है अनुभव की गहराई भी। मुझे उम्मीद है पाठकगण इस ग़ज़ल-संग्रह का गर्मजोशी के साथ स्वागत करेंगे। इस सुंदर और महत्वपूर्ण रचनाकर्म के लिए लक्ष्मी खन्ना 'सुमन' जी को अनेकानेक साधुवाद।

झरनों का तराना है (ग़ज़ल-संग्रह): लक्ष्मी खन्ना 'सुमन', प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०); संस्करण : 2014, मूल्य : 200.00; पृ० 112

64 **बी, फेस** 2, **डीडीए फ्लैट**
कटवारिया सराय
नई दिल्ली 110016
मो० 09868722444
ईमेल : vyangyarth@gmail.com

 ISSN 0975-735X

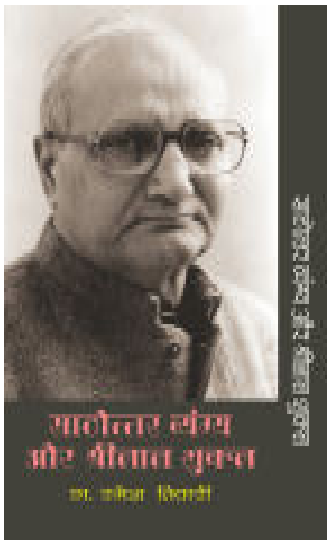

साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल के साहित्य पर एक दृष्टि

डॉ॰ मीना अग्रवाल

डॉ॰ रमेश तिवारी व्यंग्य के एक गंभीर अध्येता हैं। इनकी प्रतिभा और श्रम के समन्वय की संयुक्त परिणति के रूप में प्रस्तुत कृति का प्रकाशन हुआ है। शीर्षक है–साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल। सन साठ के बाद के व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल पर लेखक ने गंभीर रूप से अध्ययन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। सर्वविदित कि आज के जटिल और विसंगत जीवन की मुश्किलों के बीच व्यंग्य-लेखन की चुनौतियाँ निरंतर बढ़ती गई हैं। सन 1960 के आसपास और प्रमुखत: भारत-चीन युद्ध के पश्चात इन चुनौतियों में बेतहाशा वृद्धि देखी गई। संतोष की बात है कि इन्हीं चुनौतियों के बीच आधुनिक युग का श्रेष्ठ व्यंग्य भी रचा जा रहा था। हरिशंकर परसाई व्यंग्य के जिस शिखर पर हैं, वहाँ दूर-दूर तक आज भी कोई पहुँचता हुआ दिखाई ही नहीं देता। साठोत्तर परिदृश्य में परसाई के करीब ही श्रीलाल शुक्ल का लेखन भी है। परसाई के मुकाबले श्रीलाल शुक्ल के साहित्य-कर्म पर बहुत कम लिखा-पढ़ा गया है। इस दृष्टि से डॉ॰ रमेश तिवारी की नई आलोचनात्मक कृति 'साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल' का प्रकाशन निश्चय ही स्वागत-योग्य है।

चार अध्यायों में साठोत्तर परिदृश्य, साठोत्तर समाज, साठोत्तर राजनीति और अंतत: साठोत्तर व्यंग्य की रोचक प्रस्तुति इसमें हुई है। लेखक ने सधी हुई विवेकदृष्टि का सकारात्मक प्रयोग किया है। पहले अध्याय में सन साठ के बाद की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमों को उनके संदर्भ के साथ प्रस्तुत किया गया है। साठोत्तर परिदृश्य को लेखक ने बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वीकार किया है और उनका अध्ययन-विश्लेषण कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत भी किया है। ध्यातव्य है कि लेखक ने बिना किसी का पक्ष लिए पाठकों के समक्ष संपूर्ण सत्य का उद्‌घाटन करने की कोशिश की है, जिससे उसकी विश्वसनीयता बढ़ती है। समाज के सामने संपूर्ण सत्य का प्रकटीकरण ही लेखक-आलोचक का दायित्व होता है। संपूर्ण सत्य को जानकर पाठक अपने विवेक के अनुसार निर्णय लेने में सक्षम हो सके, यही हमारे लेखन का उद्देश्य भी होना चाहिए। संतोष की बात है कि डॉ॰ तिवारी की यह आलोचनात्मक कृति इस कसौटी पर खरी उतरती है।

साठोत्तर परिदृश्य-विधान को रचनात्मक कौशल के साथ प्रस्तुत करते हुए डॉ॰ तिवारी को अपनी बात को पठनीयता के गुण से समन्वित रखना बखूबी आता है। यही कारण है कि वह अपने पाठकों को कहीं भी ऊबने का अवसर नहीं देते हैं। साठोत्तर समाज और श्रीलाल शुक्ल शीर्षक अध्याय के अंतर्गत हमारे समाज में व्याप्त घटनाओं, समस्याओं, संस्थाओं, संबंधों की परत दर परत

विवेचना करते हुए डॉ॰ तिवारी उन कारणों की भी तलाश करते हैं, जो इनके लिए प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से जिम्मेदार हैं। तत्कालीन समाज में व्याप्त परंपराओं, कर्मकांड और गुटबंदी, किसान जीवन, पारिवारिक स्थितियाँ, विधानपालिका, कार्यपालिका, नौकरशाही, न्यायपालिका, सामाजिक संदर्भ, सरकारी कार्यप्रणाली, आवासीय परियोजनाएँ, परिवहन व्यवस्था, शिक्षा-जगत, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक वैषम्य, परियोजनाओं का क्रियान्वयन, नौकरीपेशा मध्यमवर्गीय समाज, पश्चिमी संस्कृति के प्रति मोह, ईर्ष्या-द्वेष की मानसिकता इत्यादि ऐसे पहलू हैं, जिनके माध्यम से समग्र कालखंड एवं घटनाक्रमों को विस्तार और गहराई के साथ देखने का कार्य डॉ॰ तिवारी ने किया है।

हमारे समाज में अंधविश्वास की जड़ें कितनी गहरी हैं, रचनाओं के उदाहरण से इसे दिखाने का बेहतरीन प्रयास किया गया है : 'रंगनाथ ने कहा, मैं कुछ नहीं जानता, मुझको तो मामा जी ने कहा था कि उधर आना तो एक गाँठ काँस की फुनगी पर लगा देना। मैंने लगा दी। यह हनुमान जी की गाँठ है, मामा बताते हैं। सुनते ही सनीचर की अक्ल पर हनुमान जी चढ़ गए। बिना दुम के बंदर की तरह छलाँग लगाकर वह कांस के एक ऊँचे झाड़ के पास पहुँचा और उसमें गाँठ बाँधने लगा।'(पृष्ठ 58) यह प्रसंग श्रीलाल जी के सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'रागदरबारी' से लिया गया है। इस संदर्भ में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि रंगनाथ शोध का छात्र है और स्वास्थ्य-लाभ के लिए अपने मामा वैद्य जी के यहाँ आया है। यानी जब हमारे देश का पढ़ा-लिखा समाज ही इस प्रकार अंधविश्वास फैलानेवाले अविवेकपूर्ण कृत्य करेगा तो किसी और से क्या उम्मीद की जा सकती है। ऐसे एक नहीं अनेक सवालों को उठाने का काम लेखक ने इस पुस्तक में बखूबी किया है।

'साठोत्तर राजनीति और श्रीलाल शुक्ल' शीर्षक अध्याय के अंतर्गत तत्कालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के साथ-साथ श्रीलाल शुक्ल के रचनाकर्म को भी प्रस्तुत किया गया है। राजनीति आधुनिक युग के केंद्र में है। आज लगभग सभी फैसले राजनीति के द्वारा ही निर्देशित-नियंत्रित होते हैं। ऐसे में मुझे प्रतीत होता है कि राजनीति से निरपेक्ष होना बेमानी है, धोखा है, गलतबयानी है। परसाई जी भी इसीलिए कहते थे कि 'राजनीति को नकारना भी एक प्रकार की राजनीति है।' श्रीलाल अपने लेखन में परसाई जी की तरह मुखर तो नहीं हैं, किंतु वे तद्भव पत्रिका के प्रवेशांक में कहानीकार और पत्रिका के संपादक अखिलेश से बातचीत में स्वीकार करते हैं कि 'मैं सड़क के बायीं ओर खड़ा हूँ।' प्रेमचंद ने भी प्रलेस के अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा था कि रचनाकार स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील होता ही है। पूँजीवादी समाज-व्यवस्था से असहमत होते हुए वर्तमान व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की माँग ही प्रगतिशीलता का लक्षण है। श्रीलाल एक मार्क्सवादी की तरह सारी ज़िंदगी में कभी मुखर नहीं दीखते हैं, किंतु उनकी संलग्नता पीड़ित, वंचित, उपेक्षित, शोषित के प्रति है, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता। इस दृष्टि से उनकी इस आत्मस्वीकृति को एक ईमानदार प्रयास के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

पुस्तक के आखिरी अध्याय 'साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल' में साठोत्तर परिदृश्य में व्यंग्यकारों का रचनात्मक हस्तक्षेप दिखाया गया है। श्रीलाल राजनीतिक प्रतिबद्धता को एक रचनाकार के लिए अवांछित मानते हैं। उनकी मान्यता है कि रचनाकार को स्वतंत्र होना चाहिए, तभी वह तटस्थ और समग्र दृष्टि के द्वारा रचनात्मक हो सकता है। राजनीतिक मान्यता से बँधने

 ISSN 0975-735X

के कारण रचनाकार को अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता की विसंगतियों को दिखाने की आजादी नहीं होती, इसलिए यह संबद्धता उसके व्यक्तित्व को सीमित करती है और इसी कारण अवांछनीय और अस्वीकार्य है।

अध्याय के अंतिम भाग में डॉ॰ तिवारी ने साठोत्तर व्यंग्य के प्रमुख हस्ताक्षरों की चर्चा उनकी प्रमुख कृतियों के साथ की है। इन सबकी चर्चा करते हुए लेखक ने आज के व्यंग्यकारों की भी चर्चा करते हुए नामोल्लेख भी किया है। इस विश्लेषण से पाठकों को आज के सक्रिय व्यंग्यकारों और प्रमुख व्यंग्यकृतियों की भी जानकारी मिलती है। परसाई, श्रीलाल, त्यागी, शरद जोशी, नरेंद्र कोहली से लेकर हरीश नवल, प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, गिरिराजशरण अग्रवाल, सूर्यबाला, सुभाष चंदर, सुशील सिद्धार्थ, गुरमीत बेदी, लालित्य ललित, अलंकार रस्तोगी, अर्चना चतुर्वेदी, इंद्रजीत कौर, संतोष त्रिवेदी तक की रचनाओं को अपने अध्ययन-विश्लेषण में समेटना इतना सरल और सीधा नहीं है बल्कि यह बहुत श्रमसाध्य और दुष्कर कार्य है। डॉ॰ तिवारी ने यह कार्य बड़ी ही सफलता से पूरा किया है।

विविध कोणों से भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों, परिस्थितियों, गतिविधियों आदि का अध्ययन-विश्लेषण करते हुए लेखक ने अंत में पुनः श्रीलाल शुक्ल के समग्र साहित्य को उस दौर की कसौटियों पर परखने की कोशिश की है। अध्ययन-विश्लेषण में तथ्यपरकता और वैज्ञानिक दृष्टि का समावेश किया गया है। तथ्यों का संदर्भ के साथ प्रयोग और दृष्टि की वैज्ञानिकता इस पुस्तक की अन्यतम विशेषता है। पुस्तक की छपाई प्रभावशाली है। प्रूफ की अशुद्धियों की बात करें तो बहुत सावधानी से पढ़ने के बावजूद मुझे कोई अशुद्धि अब तक नहीं दिखाई दी है। फ्लैप पर पूर्ववर्ती पीढ़ी के दो दिग्गज व्यंग्यकारों की टिप्पणियों ने पुस्तक के महत्त्व को बढ़ाने का कार्य किया है। उम्मीद है पाठक जगत इस महत्त्वपूर्ण कृति का गर्मजोशी से स्वागत करेगा।

साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल; लेखक : डॉ॰ रमेश तिवारी; प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०), संस्करण 2016, पृष्ठ 208, मूल्य : 400.00

बी 203, **पार्क व्यू सिटी**-2
सोहना रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)
मो॰ 07838090237

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

• **निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
ग़ज़ल और उसका व्याकरण	250.00
• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
बृहत् हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश	1500.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
शोधसंदर्भ-भाग-6	1500.00
हिंदी तुकांत कोश	300.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध • **डॉ॰ चंद्रकांत मिसाल**	200.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • **नवलकिशोर शर्मा**	150.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेंद्र उपाध्याय**	300.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • **डॉ॰ अंजु भटनागर**	500.00
अमरकांत का कथासाहित्य • **डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल**	400.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • **डॉ॰ अनुभूति**	450.00
राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य • **डॉ॰ सुषमा सिंह**	250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला • **डॉ॰ सुषमा सिंह**	250.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • **डॉ॰ ज्योति सिंह**	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • **डॉ॰ ज्योति सिंह**	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • **डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी**	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ मनोजकुमार**	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • **डॉ॰ दीपा के॰**	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)• **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	450.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह**	350.00
लोकरंगमंच के विविध आयाम • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा**	200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • **डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी**	450.00

 ISSN 0975-735X

देवबंद की स्वांग-परंपरा • **डॉ॰ सुरेंद्र शर्मा** 200.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • **डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा** 350.00
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ • **डॉ॰ शंकर क्षेम** 150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • **अनिरुद्ध सिन्हा** 150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • **डॉ॰ ज्योति व्यास** 150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • **डॉ॰ लालबहादुर रावल** 300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • **डॉ॰ अशोककुमार** 350.00
बिजनौर क्षेत्रा की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य** 500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00
साहित्य और संस्कृति • **डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित** 300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • **डॉ॰ आशा रावत** 350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • **डॉ॰ प्रेम जनमेजय** 500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • **विनोदचंद्र पांडेय** 300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान • **डॉ॰ स्वाति शर्मा** 450.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • **डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन** 300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • **अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात** 495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • **रवींद्र प्रभात** 300.00
सूरदास का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु** 250.00
हरिऔध का सौंदर्य-चित्रण • **डॉ॰ विजय इंदु** 500.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • **डॉ॰ मीनल रश्मि** 250.00
समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक चेतना • डॉ॰ शीला गहलौत 500.00
हरिवंशराय बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ •डॉ॰ राजकुमार जमदग्नि 500.00
नाटककार पंडित राधेश्याम कथावाचक • डॉ॰ अशोक उपाध्याय 200.00
साहित्य और संस्कृति का अंत:संबंध • **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया** 400.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल** 200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • **डॉ॰ शुचि गुप्ता** 300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • **डॉ॰ शिवशंकर लधवे** 200.00
यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना • **डॉ॰ अनीता रानी** 400.00
सृजन और साहित्य • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र** 400.00
ललित निबंध : परंपरा और चिंतन • **डॉ॰ शिवाजी एन॰ देवरे** 300.00
शिक्षा की समस्याएँ और हिंदी कथासाहित्य • **डॉ॰ शशिप्रभा** 450.00
लोकनाट्य सांग : कल और आज • **डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा** 165.00
समालोचना के फलक • **डॉ॰ बागेश्री चक्रधर** 300.00
रुहेलखंड के परंपरागत लोकगीत • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी** 200.00
एक इंद्रधनुषी व्यक्तित्व • **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 600.00

राजेन्द्र मिश्र रचनावली (एक) ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**		1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (दो) ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**		1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (तीन) ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**		1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (चार) ● **सं॰ डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**		1000.00
साठोत्तर व्यंग्य और श्रीलाल शुक्ल ● **डॉ॰ रमेश तिवारी**		400.00
हिंदी ग़ज़ल और डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल ● **डॉ॰ पूनम अग्रवाल**		595.00

रचनावली

डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (एक) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दो) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (तीन) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (चार) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (पाँच) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (छह) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
डॉ॰ महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (सात) ● **डॉ॰ आदित्य प्रचण्डिया**	700.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (एक) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (दो) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (तीन) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (चार) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (पाँच) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (छह) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (सात) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (आठ) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (नौ) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
राजेन्द्र मिश्र रचनावली (दस) ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	1000.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (एक) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दो) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (तीन) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (चार) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (पाँच) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (छह) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (सात) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (आठ) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (नौ) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (दस) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	950.00
गिरिराजशरण अग्रवाल रचनावली (ग्यारह) ● **डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	500.00

हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
बाबू झोलानाथ • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र • **गोपाल चतुर्वेदी**	150.00
आधुनिक बेताल कथाएँ • **गिरीश पंकज**	200.00
भज्जी का जूता • **महेशचंद्र द्विवेदी**	150.00
क्लियर फंडा • **महेशचंद्र द्विवेदी**	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
वीरप्पन की मूँछें • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
वसीयतनामा • **पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास**	150.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के • **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी • **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट • **काका हाथरसी**	200.00
पैसे कहाँ से दें • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • **डॉ॰ आशा रावत**	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • **महेश राजा**	150.00
ए जी सुनिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए • **अशोक चक्रधर**	100.00
चुटपुटकुले • **अशोक चक्रधर**	60.00
तमाशा • **अशोक चक्रधर**	60.00
सो तो है • **अशोक चक्रधर**	60.00
हँसो और मर जाओ • **अशोक चक्रधर**	60.00
नमस्ते जी • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
अब हँसने की बारी है • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00

शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य • **डॉ॰ शिव शर्मा** 200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा** 300.00
अपने-अपने भस्मासुर • **डॉ॰ शिव शर्मा** 250.00
प्रतिनिधि व्यंग्य • **दामोदरदत्त दीक्षित** 200.00
धमकीबाज़ी के युग में • **निश्तर ख़ानक़ाही** 200.00
नो टेंशन • **डॉ॰ सुरेश अवस्थी** 200.00
ला ख़र्चा निकाल • **गजेंद्र तिवारी** 200.00
जलनेवाले जला करें • **गजेंद्र तिवारी** 200.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • **सूर्यकुमार पांडेय** 100.00
ये है इंडिया • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 220.00
आँखों देखा हाल • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 250.00
सच का सामना • **हरीशकुमार सिंह** 150.00
लिफ़्ट करा दे • **डॉ॰ हरीशकुमार सिंह** 200.00
देवेंद्र के कार्टून • **देवेंद्र शर्मा** 200.00
कार्टून कौतुक • **देवेंद्र शर्मा** 120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्रा • **डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा** 200.00
अजगर करे न चाकरी • **बाबूसिंह चौहान** 200.00
हँसते-हँसते कट जाएँ रस्ते • **मधुप पांडेय** 200.00
ज़िंदगी तेरे नाम डार्लिंग • **डॉ॰ लालित्य ललित** 200.00
नो कमेंट • **सुमित प्रताप सिंह** 200.00
सावधान पुलिस मंच पर है • **सुमित प्रताप सिंह** 200.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • **डॉ॰ आशा रावत** 200.00
एक थी माया • **विजयकुमार** 200.00
सरहदों के पार • **सुरेशचंद्र शुक्ल** 200.00
छोटे-छोटे सुख • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
कथा जारी है • **बाबूसिंह चौहान** 250.00
इक्कीस कहानियाँ • **सत्यराज** 200.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल** 250.00
कुत्तेवाले पापा • **मीना अग्रवाल** 150.00
क्या अच्छा क्या बुरा • **मीना अग्रवाल** 200.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • **डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी** 200.00
एक बौना मानव • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
लव जिहाद • **महेशचंद्र द्विवेदी** 200.00
इमराना हाज़िर हो • **महेशचंद्र द्विवेदी** 150.00

हैं आस्माँ कई और भी • **नीरजा द्विवेदी**	200.00
कौन कितना निकट • **रेणु 'राजवंशी' गुप्ता**	120.00
लघु कथाएँ • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	150.00
कमरा नंबर 103 • **सुधा ओम ढींगरा**	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • **सं॰ इला प्रसाद**	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • **सं॰ डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका**	150.00
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की • **सं॰ सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'**	150.00
पंद्रह सिंधी कहानियाँ • **सं॰ देवी नागरानी**	200.00
अंतराल • **संगीता**	200.00
भाँति-भाँति की मानुसी • **अंशु त्रिपाठी**	250.00
लड़की हँस रही है • **डॉ॰ राजेंद्र मिश्र**	300.00
आत्मकथा का कोलाज • **नीलम चतुर्वेदी**	200.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • **राजेन्द्र मिश्र**	450.00
अनोखा उपहार • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
आसरा • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	100.00
तीन बीघा ज़मीन • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
मन के जीते जीत • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कुल का चिराग • **श्रीमती सुषमा अग्रवाल**	200.00
कालचक्र से परे • **श्रीमती नीरजा द्विवेदी**	200.00
भीगे पंख • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
मानिला की योगिनी • **महेशचंद्र द्विवेदी**	200.00
और लहरें उफनती रहीं • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ शिव शर्मा**	300.00
अराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त**	200.00
सुराज-राज • **डॉ॰ मोहन गुप्त**	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी • **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
एक चेहरे की कहानी • **डॉ॰ आशा रावत**	250.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) • **डॉ॰ आशा रावत**	200.00
एक फरिश्ता ऐसा देखा • **प्रेमसागर तिवारी**	250.00
रोशनी का पहरा • **डॉ॰ आरती लोकेश**	300.00

एकांकी-नाटक

• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00

बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला • **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
दमन • **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00
औरत की जंग • **राजेन्द्र मिश्र**	200.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले • **निश्तर ख़ानक़ाही**	125.00
यादों का मधुबन • **कृष्ण राघव**	150.00
समय के चाक पर • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	125.00
समय एक नाटक • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	160.00
दर्पण झूठ बोलता है • **बाबूसिंह चौहान**	60.00
मकड़जाल में आदमी • **बाबूसिंह चौहान**	80.00
उफनती नदियों के सामने • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
पीठ पर नील गगन • **बाबूसिंह चौहान**	100.00
अनुभव के पंख • **चंद्रवीरसिंह गहलौत**	250.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी**	250.00
आधी हकीकत आधा फसाना • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
फूलों की महक • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
संवाद साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त बरसैंया**	200.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	500.000
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	80.00

 ISSN 0975-735X

ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ **निश्तर ख़ानक़ाही**	150.00
कोई आवाज़ देता है • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
दिन दिवंगत हुए • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	250.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • **डॉ॰ कुँअर बेचैन**	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
बूँद के अंदर समंदर (मुक्तक) • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
मान भी जा छुटकी • **गीतिका गोयल**	150.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) • **रामगोपाल भारतीय**	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • **रमेश कौशिक**	150.00
मातृभूमि के लिए • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	200.00
संघर्ष जारी है • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	170.00
जीवन-पथ में • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
देश हम जलने न देंगे • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • **रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	150.00
समय के भूगोल में • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
असाबिया • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
आठवाँ राग • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
हवाएँ खामोश हैं • **राजेंद्र मिश्र**	200.00
सदियाँ गुजर रही हैं • **राजेंद्र मिश्र**	300.00
उजियारा आशाओं का • **तारा प्रकाश**	150.00
बुलंदी इरादों की • **तारा प्रकाश**	150.00
चलने से मंज़िल मिलती है • **तारा प्रकाश**	200.00
इंद्रधनुष • **तारा प्रकाश**	200.00
संवेदनाओं के रंग • **तारा प्रकाश**	200.00
तारा प्रकाश समग्र • **तारा प्रकाश**	600.00

शमा हर रंग में जलती है • **रामेश्वरप्रसाद**	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • **आर्यभूषण गर्ग**	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
असितचंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ आकुल**	120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **किशनस्वरूप**	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) • **कर्नल तिलकराज**	200.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	250.00
कुछ भी सहज नहीं (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
त्रिवर्णी (नवगीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • **शचींद्र भटनागर**	200.00
सुरों के ख़त • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	100.00
सुनते हुए ऋतुगीत • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सुबह की अंगूठी • **अश्विनीकुमार 'विष्णु'**	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • **डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) • **मनोज अबोध**	150.00
अग्निसुता • **राजेंद्र शर्मा**	150.00
सीतायनी • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
गंगापुत्र भीष्म : शर-शैया से • **डॉ॰ शंकर क्षेम**	150.00
एक मुट्ठी धूप • **नीरजा सिंह**	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • **डॉ॰ कमल मुसद्दी**	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00

ISSN 0975-735X

हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
मानव तू जग में सुंदरतम • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
रिश्ते नए अब जोड़िए (ग़ज़लें) • **डॉ॰ बलजीत सिंह**	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) • **डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'**	200.00
अनजाने आकाश में • **महेशचंद्र द्विवेदी**	170.00
बातें कुछ अनकही • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
मैंने देखा है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
हौसला तो है • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
ज़िंदगी रुकती नहीं • **सत्येंद्र गुप्ता**	200.00
जज़्बात की धूप • **धूप धौलपुरी**	250.00
मैं एक समुद्र • **डॉ॰ तारादत्त 'निर्विरोध**	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ • **नवलकिशोर शर्मा**	180.00
जब चाँद डूब रहा था • **नवलकिशोर शर्मा**	200.00
एड्स शतक • **पूरणसिंह सैनी**	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	300.00
श्रीकृष्णचरित (महाकाव्य) • **पूरणसिंह सैनी**	800.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) • **डॉ॰ ओमदत्त आर्य**	200.00
राष्ट्र-शक्ति • **सलेकचंद संगल**	150.00
माँ तुझे प्रणाम • **सलेकचंद संगल**	150.00
लहरों के विरुद्ध • **डॉ॰ रामप्रकाश**	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता • **महेंद्र कुमार**	200.00
पीड़ा का राजमहल • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	200.00
उड़ान जारी है • **विनोद भृंग**	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी • **रामेश्वर वैष्णव**	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
जो जिया वो रचा (मुक्तक-संग्रह) • **हरिराम पथिक**	200.00
धनुषभंजक राम • **चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'**	200.00
कविताएँ फेसबुक से • **लालित्य ललित**	200.00
दुनिया इतनी भी बुरी नहीं • **लालित्य ललित**	200.00
बचे रहेंगे केवल शब्द • **लालित्य ललित**	200.00
एक कुल्हड़ चाय • **स्वर्ण ज्योति**	200.00

रात • **दामोदर खड़से** 200.00
झरनों का तराना है • **लक्ष्मी खन्ना सुमन** 200.00
अहसासों के ताने-बाने • **लक्ष्मी खन्ना सुमन** 200.00
विरमाल गीत समग्र • **सं॰ डॉ॰ पंकज विरमाल** 500.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • **काका हाथरसी** 300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • **धर्मेन्द्र उपाध्याय** 250.00
आत्मसरोवर • **ओम्प्रकाश अग्रवाल** 125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • **नीरजा द्विवेदी** 200.00
स्विट्ज़रलैंड के वे 21 दिन • **नीरजा द्विवेदी** 200.00
कुछ अपनी कुछ जगबीती • **नीरजा द्विवेदी** 250.00
सफ़र साठ साल का • **डॉ॰ अजय जनमेजय (सं)** 400.00
यादों की गुल्लक • **गीतिका गोयल, डॉ॰ अनुभूति (संपादक)** 300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 150.00
मेरे साक्षात्कार • **डॉ॰ बालशौरि रेड्डी** 250.00
संवाद : साहित्यकारों से • **डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'** 200.00
उत्तरोत्तर • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)** 250.00
श्रद्धांजलि • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)** 250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी** 200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह** 200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग** 200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग** 200.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल** 200.00
बातूनी कहानियाँ • **गीतिका गोयल** 200.00
किशोर मन की कहानियाँ • **डॉ॰ सरला अग्रवाल** 200.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध** 200.00
मानव-विकास की कहानी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल** 200.00
पार्टी गेम्स • **चाँदनी कक्कड़** 125.00
कागज की नाव • **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ** 200.00
गधा बत्तीसी • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 200.00

 ISSN 0975-735X

कविताओं में पंचतंत्र • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
चिड़ियों की दुनिया रंगीन • **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
Tiny -Tots in Forest • **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
Adventures of the Laughing Donkey • **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ • **डॉ॰ अशोक कुमार**	200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत • **बालकृष्ण गर्ग**	500.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन • **डॉ॰ सरिता शाह**	200.00
• **निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
नारी : कल और आज	300.00
• **रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन • **डॉ॰ गिरिराज शाह**	200.00
गुरु नानकदेव • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
अमृतवाणी • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	300.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं • **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	250.00
वेद-वेदांत दर्शन • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	300.00
कन्हैया गीता • **डॉ॰ मूलचन्द दालभ**	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स • **डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर**	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी • **मनोज भारद्वाज**	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी • **डॉ॰ लालबहादुर रावल**	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas • **Dr.Vikram Singh IPS**	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 09557746346, 07838090732

गुड़गाँव कार्यालय

बी-203, पार्क व्यू सिटी 2, सोहना रोड, गुड़गाँव 122018

0124-4076565

केंद्रीय हिंदी संस्थान

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005, फोन : 0562-2530684,
वेबसाइट : www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई॰ में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र– दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में है।

संस्था के प्रमुख उद्‌देश्य

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी-शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्‌देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्‌देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्‌देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रावृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य

शिक्षणपरक कार्यक्रम :

(1) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (2) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (3) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (4) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (5) जनसंचार एवं पत्राकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

अनुसंधानपरक कार्यक्रम :

(1) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (2) हिंदीभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (3) हिंदीभाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (4) हिंदीभाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्‌देश्य से अनुसंधान, (5) हिंदी का समाज भाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (6) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास :

(1) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्रा के विद्यालयों के लिए हिंदी-शिक्षण सामग्री निर्माण, (2) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (3) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (4) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (5) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (6) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/ त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन :

हिंदीभाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रौमासिक पत्रिका-'गवेषणा', 'मीडिया', और 'समन्वय पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय :

भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाशिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्रा-पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय :

हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ :

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत, ■ अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी॰ए॰ का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ, ■ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू॰एस॰ए॰, यू॰के॰, मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी ■ हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोकसाहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य

डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, के॰हिं॰शि॰मं॰
ई-मेल : kkgoyanka@gmail.com

प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय
निदेशक

हिंदीसेवियों को राष्ट्रपति भवन में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के सम्मान से अलंकृत किया गया

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के उच्चतर शिक्षा विभाग (भाषा प्रभाग) के अंतर्गत द्वितीय और विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के शिक्षण-प्रशिक्षण, अनुसंधान और बहुआयामी विकास के लिए कार्यरत एक शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है।

राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास, प्रचार-प्रसार और प्रोत्साहन में संस्थान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी राष्ट्रीय एकता और समन्वय की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। राजभाषा, राष्ट्रभाषा और संपर्कभाषा के रूप में इस पर विभिन्न भारतीय भाषाओं में आपसी संवाद को बढ़ाते हुए भारत की समावेशी संस्कृति के विकास की भी जिम्मेदारी है। यही तथ्य केंद्रीय हिंदी संस्थान की स्थापना और इसके हर कार्यक्रम के मूल में विद्यमान रहा है। संस्थान विदेशों में हिंदीभाषा और उसके माध्यम से आधुनिक भारत की चेतना और उसके लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रसारित करने के लिए भी संकल्पित है।

इसी दायित्व को निभाते हुए संस्थान द्वारा हिंदीसेवी सम्मान-योजना के अंतर्गत सात अलग-अलग पुरस्कार श्रेणियों के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य करने वाले 14 हिंदीसेवी विद्वानों को प्रति वर्ष सम्मानित किया जाता है। इस सम्मान योजना की शुरुआत सन् 1989 में हुई थी। पुरस्कृत विद्वानों को संस्थान की ओर से भारत के माननीय राष्ट्रपति महोदय द्वारा एक लाख रुपए, शॉल तथा प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर सम्मानित किया जाता है। तबसे आज तक विभिन्न पुरस्कार श्रेणियों में कुल 332 विद्वानों को सम्मानित किया जा चुका है।

इसी क्रम में हिंदीसेवी सम्मान (वर्ष 2012, 2013 और 2014) के अंतर्गत कुल 39 विद्वानों को राष्ट्रपति भवन के दरबार हॉल में आयोजित एक भव्य समारोह में भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मानव संसाधन विकास मंत्री एवं केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल की अध्यक्ष श्रीमती स्मृति जूबिन इरानी, मंडल के उपाध्यक्ष डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, संस्थान के निदेशक प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय सहित हिंदी के वरिष्ठ विद्वानों और मीडियाकर्मियों, मानव संसाध्न विकास मंत्रालय एवं विदेश मंत्रालय के अधिकारियों, विभिन्न दूतावासों के प्रतिनिधियों और केंद्रीय हिंदी संस्थान के क्षेत्रीय केंद्रों के क्षेत्रीय निदेशकों, विभागाध्यक्षों, कुलसचिव डॉ॰ चंद्रकांत त्रिपाठी और विभिन्न शैक्षणिक एवं प्रशासनिक सदस्यों ने सहभागिता की।

 ISSN 0975-735X

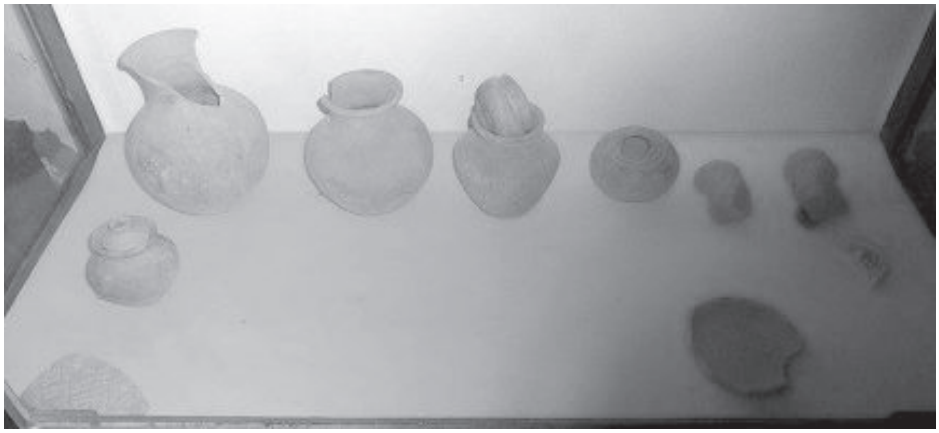

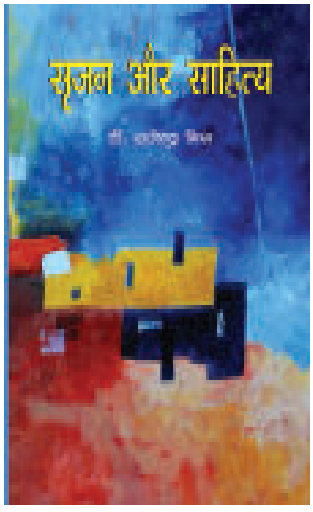

ISSN 0975-735X

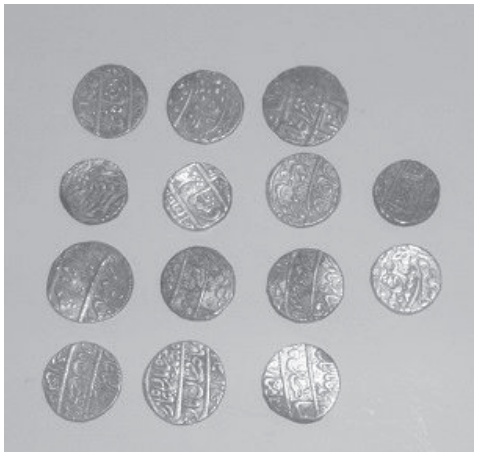

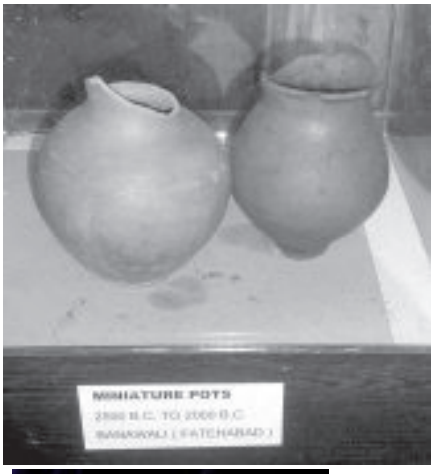

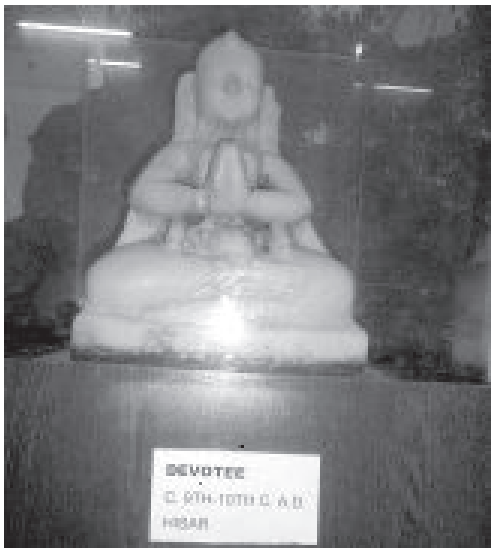

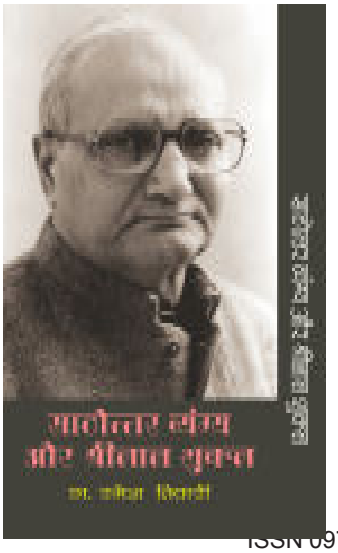

ISSN 0975-735X

एकांकी-नाटक

• **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**

मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल-नाटक • **प्रकाश मनु**	200.00
संसार : एक नाट्यशाला • **बाबूसिंह चौहान**	250.00
ग्यारह एकांकी • **डॉ॰ हरिशरण वर्मा**	200.00
दमन • **रामाश्रय दीक्षित**	100.00
स्वप्न पुरुष • **डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल**	250.00
अफलातून की अकादमी • **डॉ॰ शिव शर्मा**	150.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • **शंभूनाथ तिवारी**	200.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • **डॉ॰ बलजीतसिंह**	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • **विनोद भृंग**	200.00
आटे-बाटे दही चटा के (शिशुगीत) • **बालकृष्ण गर्ग**	200.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • **गीतिका गोयल**	200.00
बातूनी कहानियाँ • **गीतिका गोयल**	200.00
चलो आकाश को छू लें • **डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध**	200.00

मानव-विकास की कहानी ● **डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल**	200.00
पार्टी गेम्स ● **चाँदनी कक्कड़**	125.00
कागज की नाव ● **डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ**	200.00
गधा बत्तीसी ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
ईनी-मीनी की मजेदार दुनिया ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
कविताओं में पंचतंत्र ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	250.00
छुटके-मुटके जंगल में ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
नन्हे-मुन्ने गीत सुहाने ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
चिड़ियों की दुनिया रंगीन ● **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'**	200.00
Tiny -Tots in Forest ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
Adventures of the Laughing Donkey ● **Laxmi Khanna 'Suman'**	200.00
शिक्षाप्रद बालकहानियाँ ● **डॉ॰ अशोक कुमार**	200.00
बालकृष्ण गर्ग के बालगीत ● **बालकृष्ण गर्ग**	500.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष ● **डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल**	200.00
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ ● **काका हाथरसी**	300.00
काका के व्यंग्य-बाण ● **काका हाथरसी**	200.00
कक्के के छक्के ● **काका हाथरसी**	200.00
लूटनीति मंथन करी ● **काका हाथरसी**	200.00
खिलखिलाहट ● **काका हाथरसी**	200.00

 ISSN 0975-735X